श्री

समता विलास

श्री मुख वाक् अमृत

पूजनीय श्री सत्गुरु देव महात्मा मंगतरामजी महाराज
जन्मभूमि शुभ स्थान गंगोठियां ब्राह्मणां
ज़िला रावलपिण्डी (पञ्जाब)

प्रकाशक:—

संगत समतावाद,
समतायोग आश्रम,
जगाधरी (ईस्ट पंजाब)

प्रथम संस्करण १९४९......१०००

दूसरा ,, १९५६......१०००

संगत समताबाद की ओर से पी० बी० आई (इण्डिया) प्रेस नई दिल्ली से मुद्रत

निवेदन

यह समता विलास शास्त्र जीवन का सार सिद्धान्त श्री सत्गुरु महाराज जी ने सरल भाषा में भिन्न २ भावों सहित उच्चारण फरमा कर समस्त जिज्ञासु सज्जनों के वास्ते अति कृपा की है। और दास ने श्री सत्गुरु महाराज जी की आज्ञा और कृपादृष्टि से सारे वचनों को एकत्रित करके समता विलास पुस्तक में पूर्ण किया है। समस्त प्रेमी सज्जन जीवन उन्नति के प्रत्येक भाव को विचार करके निध्यासन में अपने आपको दृढ़ करें जिससे मनुष्य जीवन सफल होवे।

समाप्तम्

लेखक,

श्री सत्गुरुचरण निवासी दास

बनारसीदास

समय श्रावण मास सम्वत् २००५ विक्रमी

सिद्ध खड़ मंसूरी ज़िला देहरादून (यू० पी०)

दूसरे संस्करण का निवेदन

जिज्ञासु प्रेमी भक्तों की प्रार्थना पर यह दूसरा संस्करण समता विलास (पहला भाग) निकाला जा रहा है। आशा है कि प्रेमी पाठक इससे जीवन के सार सिद्धान्त के विषय विचार प्राप्त करके अपना जीवन सफल बनायेंगे।

(संगत समतावाद)

विषय सूची

न०	विषय		पृष्ठ
(१) प्रथम अनुभव			
(क) समता निधान ।	...	...	४
(ख) परम निधान ।	...	...	१७
(२) दूसरा अनुभव,			
(१) समता धाम			
(क) समता आनन्द की अलोप अवस्था !	...	...	२४
(ख) ईश्वर भक्ति की प्राप्ति !	...	...	३३
(३) तीसरा अनभव,			
(१) समता नीति,			
(क) समता ज्ञान का पूर्ण साधन	...	...	६१
(ख) समता साधन सार,	...	...	६३
(ग) आस्तिक व नास्तिक -पन का विचार	...	...	६५
(घ) आत्मिक उन्नति धर्म का यथार्थ स्वरुप			

पहला साधन—"सादगी" ६९
दूसरा साधन—"सत्य" ७६
तीसरा साधन—"सेवा" ८१
चौथा साधन—"सत्संग" ८८
पांचवां साधन—"सतसिमरण" ... ९२
(ड) तीर्थ यात्रा का सिद्धांत ९७
(च) दान का सिद्धान्त १००
(छ) मूर्ति पूजा का सिद्धान्त १०३
(ज) देवी देवताओं और ग्रहों की पूजा का सिद्धान्त १०७
(झ) भूत प्रेत व पितर का सिद्धान्त ११५
(ञ) धर्म उपदेशकों के वास्ते हिदायात १२१

(४) चौथा अनुभव.

(१) समता धार

(क) समता धर्म १३१
(ख) समता मार्ग सन्देश. १४६
(ग) बुद्धि की पूर्ण व अपूर्ण अवस्था का निर्णय १५१
(घ) समदर्शी और समवृत्ति मार्ग का उपदेश १५५
(ङ) समता योग सिद्धि ... ...
पहला अंग—"सिमरण" १५८
दूसरा अंग—"भजन" १६३

तीसरा अंग—"ध्यान" १६५

चौथा अंग—"समाधी १६७

(च) गुरू पद का सिद्धान्त १७६

(छ) गुरु स्वरूप लखना। १८५

(ज) समतावाद १८६

(झ) उत्तरायण व दक्षिणायण मार्ग के सम्बन्ध में विचार १८७

(ञ) पवित्र जीवन १६१

(५) पाँचवाँ अनुभव

(१) समता बोध

(क) वासना विवेक २१८

(ख) वासना छेदन विवेक २२५

(ग) वासना अभाव विवेक २४०

(घ) शुद्ध आचरण विवेक २५१

(ङ) समता सत नियम ... ...

पहला नियम—"सतसंग" २६२

दूसरा नियम—"अभ्यास" २६३

तीसरा नियम—"सेवा" २६५

चौथा नियम—"व्रत" २६६

पाँचवाँ नियम—"तप" २६७

(६) छटा अनुभव

(१) समता विवेक

(क) समता विवेक २७३

(ख) सतगुरु गुह्य उपदेश २६०

(ग) निर्मल जीवन कर्तव्य २६२

(i) देह प्रायणता का पूर्ण निर्णय २६३
(ii) ईश्वर प्रायणता का निर्णय २६४

(घ) आत्मिक व सामाजिक
उन्नति के निर्मल नियम २६६

(ङ) शक्ति तत्व का निर्णय ३०३

(च) समता परम स्वराज ३०७

(७) अनमोल सत संदेश अनुभवी वाक

(क) नित का जीवन
नित की शान्ति ३११

(ख) निर्मल जीवन रक्षा ३१६

(ग) निर्णय निःकर्म सिद्धि
अहिंसावाद ३२१

(घ) सत संग निर्णय और सत
जीवन नियम निर्णय ३२७
(i) सतसंग निर्णय ३२७
(ii) सत जीवन नियम निर्णय ३२६

(ङ) जिज्ञासु का निर्मल प्रश्न ३३१

प्रकाशक की ओर से :—

विचारशील मनुष्य के अन्दर ऐसे प्रश्न पैदा होते हैं कि यह जीवन क्या है ? यह संसार क्या है ? यह दिन रात की हलचल, दौड़, धूप, सुख दुख की झाँकियाँ, परिवर्तन और जन्ममरण का चक्कर क्या मानि रखते हैं ? मनुष्य की मानसिक इच्छा क्या है ? और इस की तृप्ती किस तरह हो सकती है ? ईश्वर किस को कहते हैं ? उस का स्वरूप क्या है ? और उसके जानने के क्या साधन हैं, जीवन के इन प्रारम्भिक प्रश्नों पर समय समय पर आने वाले महापुरुषों ने अपने अपने ढंग से अधिक से अधिक प्रकाश डाला है। इन महापुरुषों के पवित्र जीवन और अनमोल वचन कई सदियों तक करोड़ों मनुष्यों को ठंडक पहुँचाते रहे हैं। सत्य एक है, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों (दीनों) के बानियों, अवतारों और महापुरुषों ने उसी सत्य को ब्रह्म, निर्वान, आसमानी बाप, अल्लाह, एक ओंकार और समता तत आदि शब्दों से पुकारा है, और उस सत को अनुभव करने के लिये जीवन की पवित्रता पर जोर दिया है लेकिन हर सुधारक महापुरुष ने सत की ठीक व्याख्या के अतिरिक्त अपने समय की सामाजिक कुरीतियों और उस समय की बिगड़ी हुई अवस्था को सुधारने के नाना प्रकार के यत्न बतलाए हैं। परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता है क्रयात्मक जीवन से हीन और स्वारथी लोगों के हाथों तालीम विकरत हो जाती है। जीवन के बाहरी या दिखावटी ढंग के आधार पर पक्षपात आ जाता है। और सामाजिक ढांचा कमजोर हो जाता है। स्वार्थ सिद्धी और क्रियात्मिक जीवन न होने के कारण सत शिक्षा को गलत रूप दे दिया जाता है। धर्म तथा महापुरुषों के नाम की आड़ में राक्षस वृत्ति लोग भोली भाली जनता को धोखा देते हैं, और अपनी नीच वासनाओं को पूरन करने के लिए जनता का शोषण करते हैं। इससे बहुत अनर्थ गिरावट और उपद्रव पैदा होते हैं और संसार को अति क्लेश मिलता है। जब जब इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होती है और जनता को कोई रास्ता इस से बचने का दिखलाई नहीं

पड़ता है । तब तब महापुरुष इस संसार में आकर जनता को मार्ग दिखलाते हैं । जैसा कि महापुरुषों का कथन है ।

"जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ ।" (गीता)

"जब समता धर्म का प्रकाश अलोप हो जाता है उस वक्त फिर सत पुरुष आकर अमली जिन्दगी द्वारा प्रकाश दिखलाते हैं ।" (समता विलास)

वर्तमान काल के परम पूज्य आदरणीय श्री सतगुरु देव मंगतराम जी महाराज ने भी इन्हीं परिस्थितियों में रावलपिण्डी जिला के गंगोठियां नामक गांव में किसान ब्राह्मण परिवार में ९ मघर सम्वत् १९६० तदानुसार २४ नवम्बर १९०३ मंगलवार को अवतार धारण किया ।

बचपन में ही इस होनहार महापुरुष के पुरातन परम उज्ज्वल संस्कारों की झलक उस के जीवन की घटनाओं में दीखती थी । देखते ही देखते कुछ काल में ही इस महापुरुष ने आत्म साक्षात्कार की परम उच्च अवस्था को प्राप्त कर लिया । आम सन्तों में और सुधारक सन्तों में यह भिन्नता सदा से देखी गई है, कि आम सन्त तो अपने कल्याण के हेतु ही उद्योग करके यह अवस्था प्राप्त कर लेते हैं, और उसी में सदैव लवलीन रह कर प्रारब्धवश शरीर छूटने के उपरान्त उस ब्रह्म तत्व में तल्लीन हो जाते हैं परन्तु सुधारक सन्त एक दूसरा मिशन; ध्येय: सिद्धान्त लेकर इस संसार में आते हैं । अपने आप को उस परम अवस्था के साथ तद्रूप किये हुये संसार की दीनय अवस्था के लिये दर्द और कल्याण के हेतु पाखण्ड खण्डन की भावना को लेकर इस मानव जगत में प्रवेश करते हैं । पूज्य सतगुरु देव मंगतराम जी महाराज भी इन्हीं सुधारक सन्तों की परमपरा में से एक रहे हैं । आप ने भिन्न-भिन्न स्थानों में जाकर जैसी जैसी जीवों की गति देखी उसके अनुकूल ही मानव जीवन की हर बात ध्यान में रखते हुए अपने मुखारबिन्द से अनमोल वचन उच्चारण किए और सत उपदेश दिये । इन सत उपदेशों में जिज्ञासुओं के कल्याण के लिये बड़े सहल सरल साधन बतलाये गये हैं । जिनको अपनाने से सर्व प्रकार के भ्रम दूर हो जाते हैं और सच्ची भक्ति व धर्म के शुद्ध रूप का ज्ञान प्राप्त होता है महाराज जी ने उस महान सत्य को "समता तत"

के नाम से कहा है और वह जीवन शैली जिस को धारण करके मनुष्य अपना तथा समाज, देश और मानव मात्र का ठीक कल्याण कर सकता है "समतावाद के मार्ग" का नाम देकर कथन किया है। समतावाद के पाँच मुख्य साधन हैं सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग और सतसिमरन इन सुनहरी नियमों तथा जीवन के दूसरे प्रारम्भिक प्रश्नों का इस पवित्र ग्रन्थ "समता विलास" में बड़ी सरल भाषा में वर्णन किया गया है।

इस अनमोल ग्रन्थ के छः अनुभव हैं। पहले अनुभव में समता निधान तथा परम निधान के प्रसंगों में समता के सार सिद्धांत का कथन किया गया है। दूसरे अनुभव समता धाम में जीव के बन्धन और क्लेश के मूल कारण और उनसे मुक्त होने का रास्ता बताया गया है। तीसरा अनुभव तो तीव्र और साधारण बुद्धि वाले दोनों तरह के लोगों के लिये एक पथ प्रदर्शक है। इस में समता मार्ग के लिये जीवन प्रणाली आस्तिकपन का असली स्वरूप, समता के पाँच सुनहरी नियमों अर्थात् सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग और सतसिमरन के असली स्वरूप की व्याख्या और उन को अपनाने के लाभ अत्यन्त सरल भाषा में वर्णन किये गये हैं। इस अनुभव के नोवें से तेरहवें उपदेशों में तीर्थ यात्रा, दान, मूर्ति पूजा, देवी देवताओं और ग्रहों की पूजा और भूत प्रेत और पित्र इत्यादि के सम्बन्ध में वर्तमान गहरे अज्ञान अन्धकार और संशे को दूर करने वाले और एक ईश्वर विश्वास को दृढ़ करने वाले अनमोल विचार दिये गये हैं। इसी के साथ चौदहवें उपदेश में धर्म उपदेशिकों के लिये हिदायात दी गयी हैं। चौथे अनुभव में धर्म के अर्थ, स्वरूप, लक्ष्य के सम्बन्ध में और समता धर्म तथा समता मार्ग पर प्रकाश डाला गया है। पाँचवें अनुभव में बुद्धि के अन्धकार और प्रकाश की अवस्थाओं का वर्णन है, तथा समता योग सिद्धि की चार गतियों–सिमरन, भजन, ध्यान और समाधी से सम्बन्धित सद्गुरु देव जी ने राज योग के अन्तर्गत अपने आप का अनुभव साधकों के लिये प्रदर्शित किया है। इसी के उप भाग में गुरुपद का सिद्धान्त, समतावाद तथा उत्तरायन व दक्षणायन मार्ग सम्बन्धी बुद्धि को उज्ज्वल करने वाले विचार वर्णन किये गये हैं। छटे अनुभव में वासना विवेक, वासना छेदन विवेक और वासना अभाव विवेक के प्रसंगों में आवागवन के चक्कर और वासना के फैलाव, वासना से मुक्त होने के उपाय तथा निर्वाण पद का अनुपम वर्णन किया गया है। निर्मल जीवन और मलीन जीवन पर विचार

गुह्य उपदेश द्वारा सत्गुरु देव जी ने जिज्ञासुओं के लिये अत्यन्त उच्च विचार अति सरल भाषा में वर्णन किये हैं।

यह ग्रन्थ समता विलास जिन अनमोल वचनों का संग्रह है वे सब एक ही महान तपीश्वर श्री मंगतराम जी महाराज जिनका परिचय ऊपर दिया जा चुका है के मुखारबिन्द से निकले हुये हैं और हज़ूर महाराज जी की आज्ञा प्राप्त होने पर ही आप के परम शिष्य भक्त बनारसीदास जी ने जो कि हर समय आप की सेवा में उपस्थित रहते थे लिख करके सब के जिज्ञासुओं के लिये यह अनमोल रत्नों का भण्डार एकत्र किया है। सब पाठक सज्जनों को विचार पूर्वक इन अनमोल रत्नों को पढ़ कर जीवन को परम उच्च और निर्मल बनाना चाहिये।

"संगत समतावाद"

समता निधान

(प्रथम अनुभव)

ओ३म् ब्रह्म सत्यम निरंकार, अजन्मा, अद्वैत पुरुषा
सर्व व्यापक, कल्याण मूरत परमेश्वराय नमस्तं

(क) समता निधान

१. समता शक्ति से कुल दुनियाँ का निज़ाम खड़ा है।

२. समता के आधार पर कुल दुनिया की राजनीति और धर्मनीति बनी है। जो समता के बग़ैर नीति होती है वह दुखदाई है और जल्द ही नाश हो जाती है।

३. समता शक्ति अनुभव करके कुल महा पुरुषों ने निजात हासिल की और लोगों को राहते अबदी (पूर्णशाँति) सिखलाई।

४. समता ही को धर्म कहते हैं जब इसका प्रकाश अलोप हो जाता है उस वक्त फिर सत्पुरुष आकर अमली ज़िन्दगी द्वारा प्रकाश दिखलाते हैं।

५. समता ही असली खुशी है जो हर एक जीव अन्तर से चाहता है।

६. समता ही जीवन है। जो चीज़ समता छोड़ती है वह नाश हो जाती है।

७. समता ही असली स्वराज है जो हर एक दुन्यावी क़ैद से निजात देती है और परमानन्द को प्राप्त करती है।

८. समता ही का ज़हूर कुल दुनियां है। सब पदार्थ एक दूसरे के प्रेम से खड़े हैं।

९. समता ही का विचार कुल दुनियां की किताबें बतलाती हैं। जिसमें समता का विचार नहीं है वह इलहामी (दैवी) किताब नहीं बल्कि मन घड़त कहानी है।

१०. समता ही कुल फकीरों का मेराज यानी परमपद है। वहाँ प्राप्त होकर ख्वाहिश के अजाब से छूट पाई है।

११. समता तत्त्व चैतन्य प्रकाश अनादि है। इस वास्ते सबको लाजमी है कि इस आनन्द को प्राप्त करें।

१२. समता से ही मानुष जूनी सब जीवों से उत्तम मानी गई है, क्योंकि इस जूनी में समता का असली स्वरूप हासिल कर सकता है और वासना से मुक्त होता है।

१३. समता ही आनन्द है, नित है, निर्वाण है, सबकी बुद्धि में इसकी चमक है। इस वास्ते इस प्रकाश की तहकीकात करना ही दिव्य कर्म और सत पुरुषार्थ है।

१४. समता की हिदायत सबको निजात देने वाली है सब मजहबी झगड़ों और दुनियां के झगड़ों से।

१५. समता की हिदायत करने वाला ही असली रहनुमा है। इसके बग़ैर जो उपदेश हैं वह वाद मुवाद हैं।

१६. समता की आनन्द हालत को प्राप्त होना ही असली भक्ति है। इसके बग़ैर नफ़्स परस्ती (स्वार्थपन) है और पाखण्ड है।

१७. समता के असली भाग को समझने से ही सब राजा प्रजा सुख पाते हैं इसके बग़ैर सब चालाकी और अन्याय है।

१८. समता का ही विचार असली सत संग है जो कि मन इन्द्रियों की ममता को नाश करता है और आनन्द अवस्था को प्राप्त करने का यत्न पैदा करता है। इसके बग़ैर सब नुमायश है और जहालत है।

१९. समता ही जीवन सब सत पुरुषों का है गहरी ग़ौर करके विचार करने से मालूम होता है।

२०. समता ही असली औषधि है जो कि जीव के सब रोग दूर करती है और प्रेमस्वरूप में लीन कर देती है।

२१. समता को निश्चल बुद्धि करके विचार करना और वृत्तिरहित मन करके विचार करना असली योग है।

२२. समता ही अनादि विद्या है जो हर वक्त एक ही भाव में स्थित है और जो हासिल करता है इसको वह ही रंग कर देती है।

२३. समता की खोज ही असली आनन्द है जिस को हासिल करके फिर कर्म चक्र में नहीं आता।

२४. समता का असली रस इन्द्रियों के भोगों से विरक्त होने से मिलता है।

२५. समता ज्ञान से ममता विकार त्रिगुण माया का अभाव हो जाता है।

२६. समता ज्ञान से कर्मों के फल से निजात मिलती है यानी नेह कर्मता और निष्कामता हासिल होती है।

२७. समता ज्ञान काल क्रम ईच्छा उत्पत्ति प्रलय आदि सब अवगुणों से परे है यानी नित आनन्द अपने आप में पूर्ण है।

२८. समता ज्ञान की उपासना के बग़ैर सब यत्न अकार्थ है यानी बन्धन दर बंधन है।

२६. समता ज्ञान ही आदि काल से सब ज्ञानियों को अनुभव हुआ। उसको पाकर इस नाशवान् जगत में आनन्द स्वरूप होकर विचरे।

३०. समता ज्ञान, सत् कर्म, सत् विचार, शुद्ध आहार, सत् विश्वास, झूठ से वैराग्य और सत् में अनुराग पैदा करने से हासिल होता है।

३१. समता ज्ञान को हासिल करने की खातिर सत पुरुषों की संगत लाज़मी है।

३२: समता ज्ञान ममता रूपी मिथ्या देह विकार को त्याग करने से हासिल होता है।

३३. समता ज्ञान को जो प्राप्त होवे उसके अन्दर यह परम गुण

प्रकाश करते हैं निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, नेहचलता, परोपकार और समभाव में यतन, यह ही परमानन्द की रोशनी की किरणें हैं।

३४. समता ज्ञानी को बार-बार नमस्कार करके असली तत्त्व समता धर्म की शिक्षा धारण करनी लाज़मी है सब मज़हबों की जान समता है। इसको असलियत न जानने से मज़हबी वाद मुबाद पैदा होता है।

३५. समता के धर्म को पूर्ण विश्वास करके धारण करना चाहिये यह ही असली भक्ति और योग है।

३६. समता ज्ञान के बग़ैर कभी बुद्धि शुद्ध नहीं होती और न ही कर्म के झगड़े से छूट सकती है। इस वास्ते मानुष ज़िन्दगी का परम धर्म समता विचार, समता साधन, समता स्थिति है।

३७. समता का असली अर्थ यह है कि हर हालत में एक रस होना, गृहस्थ और त्याग की कामना से मुक्ति हासिल करनी, यह ही ईश्वर की भक्ति और मुक्ति है।

३८. समता ज्ञान के सही उसूलों पर चलने से ही हर एक जीव स्वार्थ बुद्धि को त्याग कर परमार्थ में लीन हो जाता है फिर संसार के भ्रम चक्र में नहीं आता।

३९. समता रूपी सच्ची खुशी को हर वक्त हासिल करो। जन्म २ की सब कर्मों को पूरा करके ज़िंदगी में ही पूर्ण हो जाओ।

४०. समता प्रकाश सबके अंतर चमक रहा है मगर मनमुखता से जीव उसको अनुभव नहीं कर सकता।

४१. समता रूपी अखण्ड शब्द में तब स्थिति होती है जब मन, इन्द्रियाँ ममता को छोड़ कर एक रूप होवें।

४२. समता तत्त्व को हासिल करने के वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश करनी चाहिए क्योंकि यह ही ज्ञान कल्याण के देने वाला है।

४३. समता ज्ञान शरीर अभिमान और कर्म अभिमान के छोड़ने से प्राप्त होता है।

४४. समता ज्ञान शुद्ध उपासना से यानी ईश्वर को कर्त्ता हर्त्ता जानकर स्मरण करने से हासिल होता है।

४५. समता ज्ञान का विशेष साधन यह है कि सब जगत को एक ईश्वर का प्रकाश समझ कर तन, मन, धन से निष्काम भाव और निराभिमान हो कर सेवा करनी।

४६. समता ज्ञान के मार्ग पर जो चलता है वह नई से नई खुशी को हासिल करता है। यानी सब पाप उपाधि से छूटकर अखण्ड स्वरूप में लीन हो जाता है।

४७. समता तत्त्व का अनुभव करने वाला ही शिरोमणि और अजीत पुरुष है।

४८. समता तत्त्व के जानने वाला सर्व ज्ञाता और सर्व आधारी पुरुष माना जाता है।

४९. समता तत्त्व अन्तर्गत विषय जो पहचान करता है वह चौसठ घड़ी आनन्द में मग्न रहता है।

५०. समता तत्त्व से दुर्लभ कोई विचार और ज्ञान ध्यान नहीं है। इस वास्ते अपने अन्तर में हर घड़ी समता रूपी ब्रह्म शब्द को चिन्तन करना ही परम साधन है।

५१. समता तत्त्व को जो नित्य विचार करता है वह माया के भ्रम को हरण करके सत् स्वरूप शब्द में लीन हो जाता है, वह ही अवस्था परम धाम, निर्वास और अनाम पद है। धन्य वह पुरुष और धन्य उसकी कीर्ति है।

५२. समता ज्ञान फ़िर्क़ा परस्ती, मुल्क परस्ती, कुल ज़ात परस्ती से बालातर है। फ़िर्क़ा परस्ती में भी खुदग़र्ज़ी है। मुल्क परस्ती में भी ममता है। कुल ज़ात का अभिमान भी क़ैद है।

५३. समता ज्ञान की असली परस्तिश (पूजा) यह है कि एक ईश्वर को सर्वव्यापक देखना, किसी से वैर न करना, आचार को

शुद्ध करना, खुदगर्जी की बू को निकालना, सिर्फ एक ईश्वर का भरोसा रखना, उसकी इबादत करनी, उसके नाम पर दान करना, उसी की आज्ञा मान कर उसी के सर्व जगत की सेवा करनी। समता ज्ञान कोई फ़िर्का या मज़हब नहीं है बल्कि हर एक मज़हब की बुन्यादी रोशनी है यह ही असली ज्ञान अनानियत यानी खुदी को नाश करने वाला है और अखण्ड शान्ति यानी ईश्वर प्राप्ति देता है।

५४. जो समता ज्ञान यानी सच्चिदानन्द केवल ईश्वर की परस्तिश नहीं करता और न ही उसकी महिमा जानता है ऐसे पाखण्डी उपदेशक का उपदेश दुनिया में वैर और अशान्ति फैलाने वाला है। हर एक मनुष्य को असलियत की जुस्तजू करनी चाहिये।

५५. गुरु, पीर, अवतार, सिद्ध, नबी, पैगम्बर वह ही है जो एक अविनाशी परमेश्वर की परस्तिश करता है और लोगों को नेक अखलाक़ी और सत परमेश्वर की पूजा सिखलाता है उसकी हिदायत प्रेम और आनन्द देने वाली है।

५६. समता की खोज नित ही करो यह ही हुक्म ईश्वर का है।

५७. समता तत्त्व के पूर्ण माने एकता, समावात यानी एक भाव की तहक़ीक़ात करना समता रूपी माया विकार जो कि पल २ में ख़्यालात को या बुद्धि को भरमाता है बग़ैर समता तत्त्व के समझने के कभी नाश नहीं होता।

५८. समता ईश्वरीय शक्ति का यथार्थ स्वरूप और गुण है। समता स्वरूप ईश्वरी सत्ता सदैव काल एक रस होकर विचरती है। किसी वस्तु का विक्षेप उसको स्पर्श नहीं कर सकता यानी त्रिकाल आनन्द स्वरूप है। इसी समता भाव को जब जीव अपने अन्तर विषय अनुभव करता है तब उस के सब कर्म बन्धन नाश हो जाते हैं और अचल शान्ति को प्राप्त होता है।

५९. स्वार्थ बुद्धि यानी खुदग़र्जी हर वक्त जीव को बन्धन दर

बन्धन में डालती है। वस्तु प्राप्त होने पर भी तथा वियोग होने प भी कभी शान्ति को हासिल नहीं कर सकता जब समता ज्ञान यानं एक भाव को विचार करता है तब उसके अन्दर निष्काम कर्म आ श्रेष्ठ गुण प्राप्त होते हैं।

६०. ज्यों २ लाग़र्ज़ कम की धारना करता है त्यों २ उसवं अन्दर निष्कामता, उदारता आदि परम गुण शान्ति देने वाले प्रगट होते हैं। जिस वक्त यथार्थ समता तत्त्व को अनुभव कर लेता है उसी वक्त कर्मों की वासना जो आवागवन का स्वरूप है नाश हो जाती है औ ज़िन्दगी में ही नित्यानन्द को प्राप्त हो जाता है।

६१. ईश्वर विश्वास, ईश्वर अनुभव, ईश्वर में स्थिति समत ज्ञान से ही होती है। जब तक एक भाव चित्त में न आए तब त चक्रवर्ती राज में भी तृपा बनी रहती है। इस माया के क्लेश यानं अज्ञान को नाश करने वाला यह समता ज्ञान ही है। ज्यों २ म बुद्धि इन्द्रियों की आपस में सत् विश्वास और सत् यत्न करके एकत होती है त्यों २ अनादि शब्द समरस रूप अन्दर प्रकाश करता है अनेक वासना और त्रिगुणों की विक्षेपता से जीव छूट कर सत् शब्द स्थित होता है।

६२. जब तक ममता यानी खुदग़र्ज़ी चित्त में रहती है तब त अनेक भाव चित्त के अनेक संशय और अनेक कामनाएँ बनी रहती हैं। इ वास्ते इस ममता रूपी प्रचण्ड माया के विकार को नाश करने वाला य समता विचार है।

६३. सर्वव्यापक एक ईश्वर की सत्ता एक रस एक भाव कर सब चौरासी लाख जीवों में विचर रही है जिस वक्त उस ईश्वर व यथार्थ स्मरण और यथार्थ प्रेम प्रगट होता है तब समता ज्ञान या सर्वभाव में एक भाव का विचार करना प्रगट होता है।

६४. कर्म फल की इच्छा जो कि जीव को पलक २ में ग्रास्त

है यानी सुख दुख, लाभ हानि, सर्दी गर्मी, मित्र शत्रु, मान अपमान, ग्रहण त्याग आदि विकार जो बन्धन स्वरूप हैं इस आवागवन के चक्र से सम स्वरूप ईश्वर का विश्वास स्मरण ध्यान ही कल्याण देने वाला है।

६५. ज्यों २ ईश्वर का विश्वास दृढ़ होता है त्यों २ कर्मों के फल की वासना नाश होती जाती है निहकर्मता यानी मुक्ति स्वरूप ईश्वर में स्थिति पाता है।

६६. वाद सुवाद के प्रमाद से जब तक बुद्धि नहीं छूटती तब तक समता ज्ञान यानी नित्यानन्द स्वरूप को नहीं प्राप्त हो सकती, इस वास्ते हर घड़ी हर लमह, निर्वैर, निर्विवाद, निराभिमान हो कर प्रेम रूपसमता शाँति को हासिल करें यह ही अविनाशी आनन्द है जो कि हर एक के अंदर चमक रहा है मूर्खता से जीव इसको विचार नहीं कर सकता।

६७. हर एक से प्रेम करना क्रोध को नाश करता है। हर एक की सेवा करनी अभिमान और लोभ को नाश करती है ईश्वर को सत् जान कर उसका स्मरण करना मोह और काम को नाश करता है जब ऐसी धारना यानी ईश्वर भक्ति और लोकसेवा चित में स्थित होती है उस वक्त यह जीव सब माया के विकारों से छूट कर समता ज्ञान में प्रवेश कर जाता है वही परम पद यानी अखंड शाँति है।

६८. हर एक को सच्ची खुशी की तलाश करनी चाहिये सच्चे धर्म की जुस्तजू करनी चाहिये। खुदगर्जी यानी फ़िर्क़ापरस्ती की बू को त्यागना चाहिए। यह ही जीव को गहरा अज़ाब देने वाले हैं। हर वक्त प्रेम स्वरूप समता विज्ञान की तलाश करनी चाहिये।

६९. जीव आज़ादी यानी निजात को हर वक्त चाहता है मगर अभिमान वश होकर अनेक प्रकार की कैद में आ जाता है जब तक शुद्ध ईश्वर परस्ती को धारण नहीं करता तब तक बन्धन से कभी छूट नहीं सकता।

७०. मूलबन्धन कर्म अभिमान है (मैं करता) इससे देह अभिमान प्रकट होता है। देह अभिमान से कुल ज़ात अभिमान पैदा होता है। कुल अभिमान से मज़हब अभिमान पैदा होता है। मज़हब अभिमान से राज इच्छा यानी मुल्क अभिमान पैदा होता है। यह ही तृष्णा नर्क को देने वाली है।

७१. बजाय समता और प्रेम के चित्त में तास्सुब (पक्षपात) यानी बाद मुबाद प्रकट हो जाता है सब धर्म कर्म से हीन होकर और जीवों को दुख देता है। अति अभिमान में आकर ईश्वर की हस्ती और ईश्वर के हुक्म से मुनकिर हो जाता है तब कुदरते कामिला उसकी हस्ती जल्द ही नाश कर देती है।

७२. जो एक ईश्वर को सब में नहीं देखता वह ईश्वर हस्ती से मुनकिर है। जो प्रेम करके दुखी जीवों की सेवा नहीं करता वह ईश्वर के हुक्म से मुनकिर है। जब माया का अभिमान प्रचण्ड होता है तब खुदग़र्जी और खुद पसन्दी में गिरफ़्तार होकर अपनी इख़लाक़ी ज़िन्दगी को नाश कर देता है। ख्वाहिश और ग़ज़ब के अज़ाब में फंस कर दीन दुनियाँ दोनों से हाथ धो बैठता है यह ही हालत जीव को घोर नर्क दिखलाती है।

७३. इन सब बन्धनों से आज़ाद करने वाला सम स्वरूप ईश्वर का ज्ञान है। ज्यों २ ईश्वर उपासना को धारण करता है त्यों २ इन सब बन्धनों से छूट कर सर्वज्ञ शक्ति अनादि शब्द में लीन हो जाता है।

७४. यह ही अवस्था संसार का मूल है यह ही शाँति है यह ही परम पद यह ही योग सिद्धि है इस अवस्था को जीव प्राप्त हो कर कर्म वासना से मुक्त हो जाता है यानी सर्वज्ञ स्वरूप एक ईश्वर ही ईश्वर सत् आनन्द अन्तर बाहिर दिखाई देता है।

७५. यह ही धाम समता ज्ञान की स्थिति है। यहाँ आकर जीव शान्त हो जाता है। मानुष ज़िंदगी में आकर इस यथार्थ समता धर्म

को धारण करना ही दुर्लभ पुरुषार्थ है नित खोज करो नित स्मरण करो नित ईश्वर विश्वासी बनो ! मरने से पहले ज़िंदगी का उपाय करो समता तत्व का विचार ही असली जीवन का लाभ है ।

७६. तमाम कर्मों के फल को ईश्वर आज्ञा में अर्पण करता जावे और अनन्य प्रीतिकर के सत् स्वरूप का स्मरण करे तब ममता रूपी अन्धकार अन्तर से नाश हो जाता है और समता तत्व अखंड शब्द अन्तर में प्रकाश करता है । यही अवस्था ईश्वर प्राप्ती की और परमानन्द स्वरूप है ।

७७. निमग्न २ कर के ईश्वर का स्मरण करना, होना और न होना सब ईश्वर की आज्ञा में देखना इस निश्चय को धारण करने से दुर्मत भ्रम नाश हो जाता है और सम स्वरूप परमानन्द अक्षय शब्द में स्थिति हासिल होती है यह ही अखंड और अनन्य भक्ति है ! हर वक्त समता तत्व के विवेक को हासिल करने की कोशिश करनी चाहिये यह ही साधन मुक्ति का मार्ग है ।

७८. ब्रह्म शब्द जिस का न आदि है न अन्त है सब के अन्तर व्यापक और सबसे न्यारा है तीन काल सम स्वरूप है । अलख, अपार, अनामी ईश्वर का स्मरण करना ध्यान करना ही समता ज्ञान को प्रकाश करना है । हर घड़ी हर लमह ईश्वर का पूर्ण विश्वास रखना चाहिए । कर्त्ता, हर्त्ता सब का मालिक जानकर स्मरण करना चाहिये । इस धारणा को हासिल करते २ समता ज्ञान की स्थिति प्राप्त हो जाती है तब सर्व स्वरूप एक नारायण ही दिखाई देता है ।

७९. द्वैत भाव को नाश करके जीव सत् स्वरूप अविनाशी परमेश्वर में लीन हो जाता है फिर आवागवन के नाशवान दुख सुख कर्म चक्र में नहीं प्राप्त होता । केवल ब्रह्मस्वरूप हो जाता है ।

८०. नित ही सत् मार्ग में यत्न करो । काल स्वरूप इच्छा के भ्रम को त्याग कर समता ज्ञान, निष्काम निर्वाण पद को प्राप्त हो जाओ । इस मिथ्या संसार में आने का परम लाभ समता प्राप्ती है ।

८१. समता स्वरूप असली ब्रह्म शब्द है जो कि हर हालत में पूर्ण है और सब के अंतर व्याप रहा है। शुद्ध बुद्धि और एकाग्र मन से विचार में आ सकता है। नित ही कोशिश करनी चाहिये उस अविनाशी तत्व के जानने की।

८२. समता का धाम ही अति ऊँचा है बड़े पुरुषार्थ से हासिल होता है।

८३. समता की रोशनी जिसके अंदर प्रगट हुई है वह काल कर्म से आज़ाद हो गया है यानी समाधी में स्थित रहता है।

८४. सब भक्ति, रयाज़त और इबादत उसी अखंड शब्द की प्राप्ति की ख़ातिर हैं जो समता का प्रकाश है।

८५. जब तक इख़लाकी जिंदगी शुद्ध नहीं होती कभी भी रूहानी रौशनी यानी समता को प्राप्त नहीं हो सकता।

८६. अपने ख़्याल को हर वक्त पाकीज़ा रखने से समता धर्म का विश्वास प्रगट होता है।

८७. समता की प्राप्ति का नाम मुक्ति, सत् पद और निर्वाण है।

८८. सब मन की वृत्तियाँ लीन हो जाती हैं जब समता रूपी शब्द को अन्तर विषय प्राप्त होता है वह परमानन्द अवस्था है।

८९. सब शरीर नाश रूप हैं केवल तत्त्व समता ही अविनाशी है जो कि हर एक को आनन्द देने वाली है। उसको आत्मा ब्रह्म प्रकाश आदि नाम से विचार किया गया है।

९०. जब तक गुरु-शिक्षा और सेवा न धारण की जावे कभी भी समता में स्थित नहीं हो सकता।

९१. नाम रूप गुण कर्म आदि माया विकार से छूटने के वास्ते समता रूपी सत् नाम को धारण करना चाहिये। और बार बार एक चित्त होकर स्मरण करना चाहिये।

९२. समता रूपी जीवन को प्राप्त होना ही मानुष्य देह का सत पुरुषार्थ है। हर वक्त स्थिर धाम की खोज करनी चाहिये।

९३. अपने मन को नित ही ईश्वर परायण बनाना चाहिये जिससे समता आनन्द प्राप्त होवे।

९४. जब तक संसार को नाश नहीं माना तब तक कभी भी अविनाशी तत्त्व समता को प्राप्त नहीं हो सकता।

९५. मन इन्द्रियाँ बड़ी विकराल हैं इस वास्ते सत् विश्वास को धारण करके समता रूपी धर्म का पालन करना सत् पुरुषों का परम धर्म है।

९६. असली खुशी यह ही समता विचार है क्योंकि सब पाबंदियों और कमजोरियों को नाश करती है।

९७. असली धर्म या ईमान, बंदगी या ज्ञान, सत् पुरुषार्थ और प्रेम समता ही का विचार है। जो सही तरीके से खोज करता है वह हर घड़ी में आनन्द को प्राप्त होता है।

९८. खुदी यानी अहंकार से निजात हासिल करें। समता के विचार से यह बड़ा आसान मार्ग महा पुरुषों ने बतलाया है।

९९. परिपूर्ण परमेश्वर को परम प्रेम से विचार करना चाहिये। इस संसार में यह ही जीवन लाभकारी है। अपनी तृष्णा को काबू करने की कोशिश करनी चाहिये। यह ही जवांमर्दी (शूरवीरता) है।

१००. अहंकार से रहित अवस्था समता का स्वरूप है इस वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश करके उस आनन्द को प्राप्त होवें और दुनिया के वाद मुबाद से मुखलसी हासिल करें।

१०१. सतविचार, सतआचार, सतविश्वास, सतस्मरण, सतसेवा, सतसंग, सतपुरुषार्थ को धारण करके समता रूपी परम धाम को प्राप्त होना ही सतपुरुषों का जीवन है। हर एक को लाजमी है इस सच्ची खुशी को हासिल करना, नहीं तो बार २ माया जाल, दुख सन्ताप को देने वाला है।

परम निधान

(ख) परम निधान

१· ईश्वर सत है। उसका आश्रय परम सुख देने वाला है।

२· दुनियां में ज़बरदस्त कोशिश क्या है? धर्म के मार्ग पर चलना।

३· दुनियां में सच्चा मित्र कौन है? अपनी नेक एमाली।

४· दुनियां में शक्तिमान कौन है? परोपकारी पुरुष।

५· दुनियां में हमेशा खुश कौन रहता है? जो दूसरे का भला चाहता है।

६· दुनियां में परम तृप्त कौन है? जिसको ईश्वर पर भरोसा है।

७· दुनियाँ में सब से बड़ी ताकत क्या है? निष्काम भावना और क्षमा करना।

८· पवित्र जिन्दगी क्या है? जो अपनी मौत का विचार करता है।

९· दुनियां में कामिल गुरु कौन है? जिसने अपने आप पर विजय पाई हो।

१०· सच्ची परिस्तश किसे कहते हैं? जिसमें अपनी ग़र्ज न हो।

११. दुनियां में सच्चा सुख क्या है? ईश्वर की प्राप्ति।

१२. बुद्धिमान किसको कहते हैं? जिसके अन्दर अभिमान न हो।

१३. दूनियां में नीतिवान कौन है? जिसके अन्दर एकता का भाव हो।

१४. वह कौन है जिसका कोई दुश्मन नहीं है? जो हर वक्त दूसरे की भलाई चाहता है।

१५. नेकी किसको कहते हैं ? दूसरे का दुख निवारण करना।

१६ दान किसको कहते हैं ? यथा शक्ति अधिकारी की सेवा करना।

१७. दुनियां में दुर्लभ पदार्थ क्या हैं ? कामिल गुरु की प्राप्ति।

१८. सच्ची भक्ति किसको कहते हैं ? विचार का शुद्ध होना और पवित्र विश्वास की दृढ़ता।

१६. सत्संग किसको कहते हैं ? जहाँ सत स्वरूप का विचार हो।

२०. अवतार किसको कहते हैं ? जिसके अन्दर ख्वाहिश न हो।

२१. देवता किसको कहते हैं ? जो दूसरे को सुख देने की खातिर यत्न करता है।

२२. मानुष जिंदगी की सार क्या है ? सत स्वरूप की तलाश।

२३. तीर्थ किसको कहते हैं ? जहाँ ईश्वर की महिमा गाई जाय या जहाँ ईश्वर के प्यारे स्थित हों।

२४. मौत से बड़ा अज़ाब क्या है ? अपनी ग़फ़लत का न विचार करना।

२५. जिन्दगी में मुर्दा कौन है ? जो ख़ुदग़र्ज़ है।

२६ ईश्वर की प्राप्ति किस तरह से होती है, गुरू की हिदायत को मानना, परोपकार यानी निष्काम सेवा करनी।

२७. विश्वास किस तरीके से दृढ़ होता है ? सच्चे गुरू के मिलाप से।

२८ ईश्वर की शक्ति क्या है ? जो कुल कायनात को आनन्द दे रही है।

२६. धर्म क्या चीज है ? जिससे सच्ची ख़ुशी है।

३०. ज्ञान क्या चीज़ है ? जो हमेशा की जिन्दगी देवे यानी रौशनी देवे।

३१. जिन्दगी किस तरह से ज़िन्दा होती है ? धर्म के मार्ग में बड़ी से बड़ी कोशिश करने से।

३२. सब से बड़ा पाप क्या है ? दूसरे को दुख देना ।

३३. सबसे बड़ी बेइज़्ज़ती क्या है ? अपना पाप न विचार करना।

३४. मन क्या चीज़ है ? मनन करना ।

३५. बुद्ध क्या चीज़ है ? निश्चय करना ।

३६. अहंकार क्या चीज़ है ? कर्म का कर्त्ता बनना ।

३७. आवागवन क्या चीज़ है ? कर्मों के फल की ख्वाहिश करनी ।

३८. ख्वाहिश कैसे पैदा होती है ? कमी के महसूस करने से ।

३९. ख्वाहिश से कैसे छूट सकते हैं ? पूर्ण पुरुष परमेश्वर की प्राप्ति से ।

४०. रोगी कौन है ? जो बेहूदा खाना खाय ।

४१. सच्ची कोशिश, सच्चा विचार, सच्ची संगत, ज़िन्दगी को कायम रखने वाले गुण हैं । अंत काल के होने तक इन गुणों को स्वीकार करना चाहिये ।

समता धाम
(दूसरा अनुभव)

ओ३म् ब्रह्म सत्यम् निरकारं, अजन्मा, अद्वैत्
पुरुषा सर्वव्यापक, कल्याण मूरत, परमेश्वराय नमस्तं

(क) समता आनन्द की अलोप अवस्था

(१) जिस वक्त जीव अनानियत की गिरफ़्तारी में आ जाता है यानी अपने आप को फ़ाइल मान लेता है उस वक्त कर्म फल की इच्छा में मुस्तग़रक़ हो कर खुशी व ग़मी में मुबतला हो जाता है। उसी खुशी व ग़मी की हालत को विचार कर के अनेक प्रकार की ख़्वाहिशों के अधीन होकर कई तरीका के नये २ कर्म विचार करता है। और अन्दर से हर वक्त बेक़रार रहता है। इस बेक़रारी की हालत में समता आनन्द अलोप हो जाता है। यानी ख़्वाहिश और ग़जब मोह और मद को धारण करके नित ही अशांत रहता है।

(२) यह ही अज्ञान त्रिगुणी माया का स्वरूप है। जिस वक्त कर्त्तापन इख़तियार करता है उसी वक्त कर्म और कर्म फल की ख़्वाहिश से सात्विक, राजस् और तामस् भाव में गिरफ़्तार हो जाता है। इसी कर्त्तापन की हालत को लेकर कई जन्म तक नये २ स्वरूप धारण करता है। यह ही आवागवन का चक्र है।

(३) कर्त्तापन ही मूल अन्धकार है जो समता की रोशनी पर छा जाता है और ममता के कल्पित रूप में बंधायमान होकर अनेक प्रकार की ख़्वाहिशों का गुलाम हो जाता है और उन ख़्वाहिश के भोगने की ख़ातिर इन्द्रियों द्वारा तरह २ के रस ग्रहण करता है मगर कर्त्तापन अन्धकार में समता शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता।

(४) तमांम चराचर भूत इसी कर्त्तापन के अन्धकार में विचर रहे हैं। और नित अशान्त रहते हैं। जो भी जीव जिस प्रकृति की क़ैद में है उसी के मुताबिक अपनी तृष्णा को पूर्ण करने की ख़ातिर यत्न

करना है। मगर मिथ्या भ्रम में एक लमहा भी निर्भय नहीं हो सकता।

(५) कर्त्तापन के अभिमान में अपना कल्पित रूप धारण करता है और उसी स्वरूप का अभिमानी होकर अनेक कर्म और कामना को प्राप्त होता है। यह अन्धकार माया का खेल है न तो इससे छूट सकता है और न ही इसका त्याग कर सकता है। इस द्वन्द्व भाव को दृढ़ प्रतीत करके नित ही भोगों में चलायमान होता रहता है और समता आनन्द को अनुभव नहीं कर सकता जो उसका असली स्वरूप है।

(६) कर्त्तापन यानी फ़ाइलियत के आग़ाज़ होने का कोई कारण नहीं कि यह किस तरह और क्यों हुआ सहज स्वभाव ही जैसे जल में तरंग उत्पन्न होता है ऐसे ही परम सत्ता से कर्त्तापन मूल माया का स्वरूप प्रगट होता है।

(७) कर्त्तापन में ही पैदाइश और फ़ना का इल्म है। कर्त्तापन में ही सब द्वन्द्व विकार अन्धकार घेरा हुआ है। वास्तव में कर्त्तापन बे बुनियाद और बिना कारण के है। इस वास्ते इस समता के कल्पित रूप को भ्रम कहते हैं यानी न जो पहले है और न ही आख़िर रहेगा। मध्य में बहुत विस्तारयुक्त दिखाई देता है। और हमेशा तबदीली में है।

(८) जो भी जीव देह धारी है वह कर्त्तापन यानी फ़ाइलियत की गिरफ़्तारी में ही है। ख्वाह श्रेष्ठ गुण वाला है। ख्वाह मलीन गुण वाला। जिस २ भाव का अभिमानी होता है उसी के मुताबिक कर्म और पुरुषार्थ करता और कर्म के फल को भोग कर नित ही तृषित रहता है।

(९) जन्म से लेकर मरण तक किसी चीज़ के प्राप्त होने पर तथा वियोग होने पर भी असली खुशी समता शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता। हर वक्त एक चीज की चाहना करता है और दूसरी का त्याग यह ही रग़बत और नफ़रत का सिलसिला हर घड़ी जारी रहता है। इस चलायमान हालत में फँस कर हमेशा दुखी रहता है। राजा

से लेकर दरिद्री तक आलिम से लेकर मूर्ख तक, सब ही अपनी कामना की गिरफ़्तारी में भयभीत रहते हैं।

(१०) जब तक एकाग्र चित्त होकर इस ममता के जाल का विचार न किया जावे तब तक कभी भी असलियत का पता महीं लगता। जिस कर्म का अभिमानी बनता है उसके भोग में आसक्त हो जाता है, यानी बन्धन में आ जाता है। बंधन में आकर मजबूरी से नेक व बद कर्म करता है और उसमें हमेशा खुशी और ग़मी को हासिल करता है।

(११) कर्त्तापन यानी फ़ाइलियत से निश्चय शक्ति प्रगट होती है निश्चय शक्ति से मनन यानी चिंतन का भाव प्रगट होता है। मनन भाव से पाँच भूत की कामना प्रगट होती है। पाँच भूत की कामना से कर्म का यत्न प्रगट होता है। यह सिलसिला ही शरीर की बनावट है यानी जीव कर्त्तापन को धारण करके आठ प्रकार की प्रकृति की कैद में आ जाता है और अपने स्वरूप को भूल कर उस प्रकृति को अपना स्वरूप मान लेता है।

(१२) प्रकृति यानी आकार स्वरूप की गृफ़तारी में आकार प्रकृति के गुणों को हर वक्त ग्रहण करता है। चूंकि प्रकृति का स्वरूप तबदील होने वाला है इस वास्ते प्रकृति के मोह में आकर जीव वह प्रकृति की तबदीली अपने आप में देखता है। यानी ग्रहण और त्याग द्वन्द्व विकार में फँस कर समता शाँति को भूल जाता है। यह ही हालत अज्ञान स्वरूप है।

(१३) हर एक जीव ख्वाह किसी मुल्क का है, ख्वाह किसी मज़हब से ताल्लुक रखता है, ख्वाह जितनी ऐश्वर्य वाला है ख्वाह कितना भी दरिद्री हैं सबके अन्दर यह द्वन्द्व विकार का अमल जारी रहता है और इस मजबूरी से हर चन्द कोशिश करता है असली खुशी की। मगर अज्ञान वश होकर प्रकृति के भोगों में असली खुशी चाहता है। न प्रकृति

के भोग हमेशा रहते हैं और न भुक्ता शक्ति कायम रहती है। इस वास्ते वस्तु के प्राप्त होने पर तथा नाश होने पर हर हालत में भय में गिरफ़्तार रहता है समता शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता।

(१४) यथार्थ भाव यह है कि जीव देह का अभिमानी होकर देह के भोगों में हर वक्त आसक्त रहता है। देह के भोग भी नाशवान हैं और देह भी नाशवान है। इस वास्ते सब यत्न प्रयत्न जीव का जो अज्ञान सम्बंधी है अकार्थ है यानी असल निर्भय अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता।

(१५) जितने भी इन्द्रियों के भोग हैं वह खुशी और ग़मी के देने वाले हैं। यानी जिस चीज़ की प्राप्ति में खुशी करता है उसके नाश से ज़रूर ग़मी को पाता है। जिस चीज़ की प्राप्ति में ग़मी हासिल करता है उसको त्यागने का यत्न करता है और खुशी की तलाश में रहता है। न तो प्रिय वस्तु से संतोष प्राप्त होता है और न ही अप्रिय वस्तु से। यानी किसी हालत में भी समता शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता।

(१६) जो भी जीव जिस देह में मौजूद है वह इसी तृषा में बंधा हुआ है। यह संसार जो भासता है वह अपनी देह का ही प्रतिबिम्ब है यानी इन्द्रियों की जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति हालत का यह सब अचम्भा है। जैसा जिसके अन्दर कर्तापन प्रगट हुआ उसके मुताबिक ही कामना प्रगट हुई इस कामना के मुताबिक ही स्थूल विकार कर्म का यंत्र यह देह प्रगट हुई। यानी जीव अपनी अनानियत का सब खेल देखता है और भोगता है।

(१७) पाँच तत्वों से जो पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ प्रगट हुई हैं उनके भोग द्वारा यह जीव प्रगट संसार की वासना में गिरफ़्तार होकर अनेक प्रकार के भोग एकत्र करता है और संसार में विचरता है। जिस जगह या जिस वस्तु को प्राप्त करता है उसमें अपनी मनोकामना पूर्ण करने की कोशिश करता है और मोहवस होकर उसमें लगाव पैदा करता है। आखिर न तो जीव की कामना पूरी होती है उलटा द्वन्द्व में गिरफ़्तार होकर दूसरे की

ज़िम्मेवारी में आ कर उसका भी क्लेश अपने अंतर धारण करता है। यह ही दुनियाँ का रिश्ता नाता है।

(१८) देह के भोगों में तृप्ति की ख़ातिर बड़े बड़े सामान दुनियाँ में एकत्र करता है और बड़े बड़े बड़े तल्लुक़ात पैदा करता है मगर देह के भोग एक लमह की भी शाँति नहीं दे सकते आख़िर देह भी नाश देह के भोग भी नाश। जीव का सब यत्न अकार्थ रंज और ग़म के देने वाला हुआ।

(१९) जितने भी देह के विकार हैं यानी पच्चीस प्रकृति उनमें कभी भी जीव को शाँति नसीब नहीं हो सकती। इस वास्ते सब देह के भोग ही जीव को असली दुख का कारण हैं मगर ममता अंधकार में फँस कर इन दुख रूप भोगों में सुख तलाश करता है आख़िर मृगतृष्णा की तरह संसार से प्यासा ही जाता है।

(२०) विचार यह है कि अनेक पदार्थ खाने से न तो भूख की निवृति तो होती है और न ही रसों से उपरस होता है। बल्कि खेद बढ़ता ही जाता है। सब इन्द्रियों के भोगों का यह ही हाल है। बजाय शाँति के उलटा अशाँति के जाल में गिरफ़तार कर देते हैं आख़िर यह जीव बड़े बड़े सामान भोग कर और बहुत मुद्दत संसार में विचर कर एक पलक की भी खुशी हासिल नहीं कर सकता और अंत काल तक बड़े कष्ट को पा कर शरीर को छोड़ता है।

(२१) उसी कामना को पूर्ण करने की ख़ातिर फिर नई प्रकृति की गिरफ़तारी में आता है उसी तरह ममता अंधकार में कई जन्म को धारण करके अनेक भोगों को भोगता है मगर समता शाँति जो परम आनन्द स्वरूप है उसको हासिल नहीं कर सकता।

(२२) इस ममता रूपी अंधकार यानी कर्तापन की गिरफ़्तारी में जीव हर वक्त दुखी रहता है किसी हालत में भी शाँति को हासिल नहीं कर सकता। यह अज्ञान का चक्र यानी अहंभाव जब तक नाश नहीं

होता तब तक जीव समता शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता। इस वास्ते इस दीर्घ रोग से छूटने के वास्ते अनेक प्रकार के यत्न जो महा पुरुषों ने विचार किये हैं उनको निध्यासन करने से समता आनन्द को प्राप्त हो सकता है जो असली स्वरूप और संसार का मूल है।

(२३) इस ममता के जाल को विचार करने से असली खुशी का पता लगता है, रोग के पहिचान करने से दवाई और हकीम की जरूरत पड़ती है। जब तक इस माया के जाल का विचार न किया जाय तब तक कभी भी असली खुशी को प्राप्त नहीं हो सकता। वह ही बुद्धिमान, सदाचारी, ज्ञानी, परहेज़गार और आबिद है जिसने इस माया के मिथ्या भ्रम अन्धकार से मन को एकाग्र करके असली खुशी की तरफ़ लगाया है।

(२४) मानुष की ज़िन्दगी ही असली खुशी को हासिल कर सकती है क्योंकि इस में जीव को जागृति बहुत है अगर मानुष की देह में आकर भी असलियत की तहकीकात नहीं की और ममता जाल में लीन रहा है वह नौका को प्राप्त हो कर फिर ग़ोते खाने की तरफ़ चला गया।

(२५) मूल अज्ञान जो जीव की असली अशाँति का कारण हैं उस को भली प्रकार करके विचार करना चाहिये और सत् यत्न करके भ्रम अंधकार को निवारण करना ही मानुष ज़िंदगी का परम धर्म है।

(२६) देह अभिमान के बंधन में जीव पलक पलक कर्म का जाल फ्लाता है और अनेक प्रकार की शुभ अशुभ वासना को धारण करता है। इस विचित्र को विचार करना और इससे मुक्ति हासिल करना मानुष ज़िंदगी का असली फल है।

(२७) जितने भी सत् कर्म हैं यानी विद्या विचार, सत्संग, परोपकार, यज्ञ दान, तपस्या वग़ैरा सब को धारण करने का मूल फल यह ही है कि जीव अहंभाव से छूट कर सत् आनन्द स्वरूप समता में लीन हो जावे। वह ही असली खुशी है।

(२८) हर वक्त माया भ्रम का विचार करना और उस को निवारण करने का यत्न करना ही गुणी पुरुष का जीवन है। जिसने अपने बंधन और मुक्त मार्ग का भेद नहीं जाना वह ही असली मूर्ख है। इस संसार में हर एक जीव शान्ति की तलाश में है। जन्म से लेकर मरन तक जितनी भी कोशिश करता है उसका परम निश्चय शान्ति ही है। मगर अविद्या और कुसंग से बजाय शान्ति के भ्रम चक्र में फंस कर दुखी होता है और अन्त को संसार से तृषावन्त ही जाता है। हर वक्त हर घड़ी असली शाँति की तलाश करनी चाहिये जिससे जीव का सब मनोरथ पूर्ण हो जावे।

(२९) कर्म जाल का हर वक्त विचार करना चाहिये। कर्म ही बन्धन देने वाले हैं और कर्म ही मुक्ति के देने वाले हैं। कर्म के ही आधार में सब जीव बिचरते हैं। जिस मानुप ने कर्म के मार्ग को नहीं जाना है वह कभी भी सत् शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता।

(३०) बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ सब कर्म का जाल है। जीव अहंभाव अज्ञान के वश होकर हर घड़ी, हर लमह इनके भोगों में आसक्त रहता है। परम तत्त्व जो समता शाँति है उसको न अनुभव कर सकता है और न ही उसके प्राप्त करने का यत्न करता है। यह ही मूर्खता और मन-मुखता है। अपनी कुबुद्धि द्वारा जन्म मरण के जाल से रिहाई नहीं पा सकता है। मनुष्य जन्म में इस घोर अंधकार कर्म के जाल का विचार करना और सत् कर्मों को धारण करके सत् स्वरूप ईश्वर की प्राप्ति करनी ही परम लाभ है। यह ही मार्ग सत् पुरुषों का है।

(३१) कर्तापन यानी अहंभाव का त्याग करना, कर्म फल इच्छा यानी द्वन्द्व कल्पना का त्याग करना, देह ममता यानी देह को सत् करके जानना और अपना असली स्वरूप समझना, इस भ्रम का त्याग करना, इन्द्रियों के भोगों में अशाँति का विचार करना, जन्म और मरण का भेद समझना, सत् कर्म और मलीन कर्म का विचार करना, सत् विश्वासी होना यानी सत्यग्रह का धारण करना, जिंदगी के

होते होते सत धाम की प्राप्ति करनी, सत पुरुषों के जीवन का विचार करना हर वक्त अपनी आत्मिक उन्नति करनी सतसंग द्वारा अपनी बुद्धि को निर्मल करना, सांसारिक कारोबार में हक शनासी विचार करनी, अपनी देह करके, धन करके, विचार करके पर की सेवा धारण करनी, हर घड़ी परम शक्ति चेतन प्रकाश, जो सब का सिरजण हार है उसका विश्वासी होना और उस परम तत्त्व की प्राप्ति की खातिर सत् यत्न का धारण करना ही मानुष जन्म की शोभा और कीर्ति है।

(३२) जो जीव इन गुणों को ग्रहण नहीं करता और इसके उलट सब कर्म करता है वह ही चाण्डाल स्वरूप जानना चाहिये। यानी स्वार्थ बुद्धि को धारण करके मान, मद, ईर्षा, कपट, छल, चोरी, झूट, पर निन्दा, पर हानि, अति कामी, अति क्रोधी, अन्ध विश्वासी यानी आत्म स्वरूप को त्याग कर स्वार्थ की खातिर अनेक जन्तर, मंत्र, देवी देवताओं की पूजा करनी, अपनी करनी का अभिमानी होना, लोक यश की खातिर सत् कर्म का धारण करना, अंतर से कपट रखना, अधिक सम्पदा की कामना रखनी, अति देह का अभिमानी होना, ईश्वर की हस्ती से अंतर विषे प्रेम न रखना, अपनी चतुराई को धारण करके अपने समान किसी को न देखना, यह सब मलीन कर्म ही परम दुख के देने वाले हैं और नर्क स्वरूप हैं। माया की छाया से यह जो अवगुण पाप कर्म अंतर विषे प्रगट होते हैं इनको त्याग करना और सत कर्म को धारण करना ही गुणी पुरुषों का जीवन है।

(३३) कर्म चक्र से छूट पानी अति कठिन है। यह भव दुस्तर मार्ग है। सत पुरुषों का परम यत्न यह ही है कि अपने आप की कल्याण करनी। जब तक अपनी कल्याण की खातिर पुरुषार्थ धारण न किया जावे तब तक समता शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। इस वास्ते अपनी जिन्दगी में ही अपनी आखिरत का विचार करके सत् नियमों को धारण करना चाहिये। इसी साधना से परमानन्द प्राप्त होता है।

(३४) जो भी देह धारी संसार में आया है वह कर्म चक्र की कैद में ही है। जितने भी सत यत्न जिस मज़हब और पंथ में मौजूद हैं उनका पूर्ण भाव यह ही है कि जीव सत मार्ग को धारण करके सत् शान्ति समता को प्राप्त हो जावे। जो इन नियमों को धारण नहीं करता और मज़हबी वादमुबाद में मगन रहता है वह ही नर्क का गामी है। और स्वान का स्वरूप है।

(३५) हर एक जीव को अपने कल्याण के खातिर यत्न करना चाहिये जिससे परम सुख प्राप्त होवे। जो खुद पाप कर्मों में बंधा हुआ है और दूसरों को अखण्ड शान्ति का रास्ता सिखलाता है वह सख्त धोखे में आकर अपनी बरबादी कर रहा है दूसरों की कल्याण तब ही हो सकती है जब अपने अन्तर विषे सत शांति प्रकाश को अनुभव कर लेवे और दुनियां के विकारों से मन उपरस हो जावे। उस महापुरुष के वचन और कर्म द्वारा दूसरों की कल्याण होती है।

(३६) इस माया के अन्धकार से छूटने के वास्ते प्रथम सत् असत् का विचार है। सत् विचार द्वारा असत् कल्पना अहम भाव का त्याग करना ही निर्मल साधना है। कर्त्तापन जो क्लेश का मूल है उसको सहज त्याग करना बड़ा कठिन है इस वास्ते सत् विचार और सत् संग द्वारा इस भ्रम विकार को छेदन करना चाहिये।

(३७) देह की प्रकाशक शक्ति जो सर्जीवित करती है उस परम तत्त्व परमेश्वर का निश्चय ही इस माया के अंधकार से मुक्ति देने वाला है जब तक मन को सत् आधार की तरफ़ न लगाया जावे तब तक असत् भ्रम का अभाव नहीं होता इस वास्ते हर घड़ी हर लमह उस परम पुरुष परमेश्वर का विश्वासी होना और उसकी प्रभुता का विचार करना और संसार का मिथ्याकार विचारना ही कल्याण का देने वाला है।

(३८) जब तक द्वन्द्व विकार को दुख रूप निश्चय करके न पहचाना जाय और सत् पुरुषों की सीख द्वारा आत्मविश्वासी न होवे तब तक कभी भी इस माया के अंधकार से मुक्ति नहीं मिलती और न ही समता शांति प्राप्त होती है ।

(ख) ईश्वर भक्ति की प्राप्ति

(३९) जिस वक्त इस संसार को दुख रूप करके जाना और अपनी देह को नाश करके जाना और संसारी पदार्थ सब चणा कारक मुख में देखे और अहं विकार अज्ञान से मन को निर्माण भाव की तरफ़ लगाया तब ईश्वर भक्ति जो परम प्रकाश समता का स्वरूप है उसको प्राप्त हुआ और कर्त्तापन अंधकार से मुक्त हुआ यह ही अवस्था समता आनन्द अनुभव की है इसको प्राप्त होकर जीव द्वन्द्व विकार से मुक्त हो जाता है और शब्द स्वरूप नारायण को अपने अन्तर विषय प्रगट देखता है और उस में लीन हो जाता है।

(४०) कर्त्तापन अभिमान अति कठिन है मूर्ख जीव बड़े यत्न करके भी कर्मों का अभिमानी होकर दुख व सुख द्वन्द्व को ग्रहण कर लेता है इस वास्ते इस अद्भुत माया के चक्र से छूटने के वास्ते ईश्वर भक्ति परायण होना ही असली कल्याण के देने वाला है। जब तक ईश्वर की भक्ति को न धारण करे तब तक असली प्रेम को प्राप्त नहीं हो सकता जो आनन्द का स्वरूप है।

(४१) बड़ी से बड़ी कोशिश करके परम पिता परमेश्वर के चरणों में प्रीति लगाने से ही असली शांति मिलती है। इस जीव को परम गति प्राप्त नहीं हो सकती जब तक मन स्वरूप को अनुभव न कर लेवे।

(४२) इस संसार का जो मरकज़े कुल है या देह का जो साक्षी है उस परम पुरुष का विश्वासी होना परम धर्म है। तमाम संसार की जो ज़िन्दगी है। जिसके प्रकाश से सब प्रकाश हो रहे हैं और जो हमेशा

है। खुशी और ग़मी से जो न्यारा है उस परम पुरुष में प्रीति रखनी परम कल्याण के देने वाली है।

(४३) जिस करके सब कुछ प्रगट हुआ और जिसमें सब कुछ स्थित है और जो तीन काल अनादि है और हर एक जीव में सम स्वरूप होकर विचर रहा है उस मालिक कुल का विचार करना ही कल्याणकारक है।

(४४) जो अपनी ताकत करके पूर्ण है और जिसको किसी का आसरा नहीं, जिसके समान दूसरा कोई प्रमाण नहीं अपने आप नित प्रकाश जो आनन्द स्वरूप है उस महा शक्ति अकाल स्वरूप का विश्वासी होना ही असली ज्ञान है।

(४५) ख्वाहिश और ग़ज़ब के अज़ाब से जो न्यारा है जिसमें सब कुछ प्रवेश कर जाता है और वह किसी में लिपायमान नहीं होता उस परम तत्त्व का स्मरण करना ही असली खुशी है।

(४६) जिसके बग़ैर कुछ भी नहीं, और जो किसी के मोह में गिरफ्तार नहीं होता उस विज्ञान स्वरूप आत्मा का चिन्तन करना ही परम आनन्द है।

(४७) जिसके समान कोई दूसरी चीज़ नहीं है और जिसको प्राप्त करके उसी का रूप हो जाता है उस दीनदयाल परमेश्वर का स्मरण करना ही दुर्लभ है।

(४८) जो सब संकट को नाश करने वाला है और घट घट व्यापक है, परमानन्द स्वरूप है और सबसे निकट तीन काल प्राप्त है उस पारब्रह्म परमेश्वर का ध्यान करना ही परम सिद्धि है।

(४९) जो हर एक के अंतर की जानने वाला है और जिसका असली भेद कोई दूसरा नहीं जान सकता, सर्वज्ञ स्वरूप परिपूर्ण है उस परमात्मा का विचार करना ही परम सत्संग है।

(५०) जिसको प्राप्त करके फिर संसार की कामना नाश हो जाती

है और जीव संतोष को प्राप्त होता है उस मंगल कारी नारायण का ध्यान करने में मानुष जन्म का परम लाभ है।

(५१) सब दुनियाँ के नाश होने से जिसका नाश नहीं होता और अपने आप में सर्वशक्तिमान है और जीव का वास्तव स्वरूप जो है उस का स्मरण करना ही कल्याण के देने वाला है।

(५२) सब संसार जिसका स्वरूप है और अंतर बाहिर तृण २ को जो प्रकाश कर रहा है। जिसके बग़ैर न कोई हुआ और न ही होगा। उस परिपूर्ण परमेश्वर की प्राप्ति करनी ही असली मुक्ति और समता शाँति है। ऐसी भावना करके उस मालिक-कुल की याद करनी और अपने अंतर विषे ध्यान करना ही असली भक्ति है।

(५३) जिसके जानने से सब कुछ जाना जाता है। भय और भ्रम सब नाश हो जाते हैं। बुद्धि पूर्ण स्वरूप को प्राप्त करके उसमें लीन हो जाती है उस परम ज्ञान स्वरूप को अनुभव करना ही असली साधन है।

(५४) जिस वक्त बुद्धि निर्मल हो जाती है उस वक्त कर्मों से मुक्त होने का यत्न करती है। हर तरीका से अपनी कमज़ोरी को दूर करने का यत्न करती है। पाप कर्म से हर वक्त मन को रोकती है। उस वक्त जीव को कुछ शाँति मालूम होती है।

(५५) जब बुद्धि यथार्थ स्वरूप में देह को नाशवान देखती है और आत्मा को प्रकाशक जानती है उस वक्त उस गुणी पुरुष के अन्दर ईश्वरीय बिरह और संसार का वैराग्य प्रगट होता है वह ही हालत असली विवेक की है। ऐसी धारणा से मोह का अन्धकार नाश हो जाता है और प्रेम स्वरूप प्रगट होता है जिस से जीव को शाँति प्राप्त होती है।

(५६) जब निर्मल बुद्धि करके देह को नाशवान् मालूम किया तब परमानन्द को प्राप्त करने का यत्न प्रगट होता है। उस वक्त जीव अपनी सब कामनाओं को बन्धन रूप जान कर छूटने की कोशिश करता है और सत पुरुषों की संगत द्वारा अपने विचार को निर्मल करता है।

ज्यों २ विचार शुद्ध होता है त्यों २ मत विश्वास दृढ़ होता है और निश्चय करके आत्मा को देह का आधार मानता है और शरीर का सुख व दुख सब ईश्वर की आज्ञा में देखता है।

(४७) जिस वक्त दृढ़ निश्चय करके आत्मपरायण होता है उस वक्त संसार में कोई भी उसको वैरी नहीं दिखाई देता है। सब में मालिके कुल का स्वरूप देखकर बड़े प्रेम से सेवा करता है। जब दूसरे की सेवा में निर्मान भाव से वर्तता है तब सब मन की कुटिलाई नाश हो जाती है। मन अभिमान से रहित होकर सत् स्वरूप का स्मरण करता है। स्मरण करते २ सब वहम् और भय नाश हो जाते हैं एक मालिके कुल ही कुल दुनियाँ में प्रतीत होता है वह ही हालत समता शाँति की प्राप्ति की है।

(४८) मन बड़ा विकराल है। देह अभिमान में फिर गिरता है मगर बुद्धि बड़े यत्न करके अज्ञान को दूर करती है। जिससे फिर शाँति को प्राप्त हो जाता है ऐसी हालत होते २ आखिर मन अधिक प्रेम को प्राप्त होकर अपना स्वरूप लीन कर देता है। यह ही असली शाँति है।

(४९) जीव को कैद एक कर्तापन की है दूसरी कर्मों के फल की आशा की। इस महा जंजाल से छूटने के वास्ते यथार्थ साधन यह ही है कि हर घड़ी हर लमह सब देह के कर्म ईश्वर अर्पण करता जावे और मन करके ईश्वर के नाम का स्मरण करे।

(५०) तमाम कर्म ईश्वर अर्पण निश्चय से करने से कर्म अभिमान नाश हो जाता है। कर्म अभिमान के नाश होने से दुख व सुख द्वन्द्व में समता को प्राप्त होता है। यह ही असली त्याग है। ऐसी साधना करते २ देह कर्म स्वरूप शब्द ब्रह्म में लीन हो जाता है।

(५१) जिस वक्त मन करके ईश्वर नाम का स्मरण किया जाता है और देह को नाश रूप देखा जाता है और तमाम कर्मों को ईश्वर की

आज्ञा में देखा जाता है उस वक्त कर्तापन मूल अन्धकार का अभाव होता है। और जीव को अपने अन्तर विषय अविनाशी स्वरूप प्राप्त होता है जो असली समता का धाम है।

(६२) शरीर के भोग जीव को भ्रमाते हैं मगर शरीर का निश्चय करके नाश जो देखता है और ईश्वर को जो आधारी मानता है इस प्रेम भक्ति के बल से बुद्धि निर्मल होकर सत् स्वरूप में स्थित हो जाती है। यह परमानन्द अवस्था है और मोक्ष भी यही है शरीर के होते २ बुद्धि आत्म-स्वरूप में लीन हो जाती है और शरीर के भोगों से उपरस हो जाती है।

(६३) बंधन असली जीव को अपने शरीर का ही है शरीर की कामना ही बारमबार आवागवन के चक्र में फिराती है। जब शरीर को क्षण भंगुर जान लिया निश्चय करके और शरीर का साक्षी भूत जो परम तत्व है उसका स्मरण ध्यान किया निर्मल प्रेम करके उस वक्त अपने अन्तर विषे पारब्रह्म को प्राप्त होकर समता शाँति को पाता है फिर कर्म चक्र में नहीं आता।

(६४) जब तक देह के मद में गिरफ़्तार है तब तक बड़े यत्न कर के सत् विचार और सत् अभ्यास को धारण करना चाहिये। सत् विचार यह ही है कि देह को नाश स्वरूप देखना और सत् अभ्यास यह ही है कि देह की जीवन शक्ति यानी आत्मा में दृढ़ निश्चय रखकर स्मरण ध्यान करना बग़ैर अपने अन्तर स्मरण ध्यान के बुद्धि कभी भी निश्चल नहीं होती। इस वास्ते सर्व शक्तिमान ईश्वर को अपने अन्तर विषय जान कर निर्मल प्रेम द्वारा स्मरण करना ही असली भक्ति और शाँति है।

(६५) देह कर्म संयुक्त है और आत्मा नेह कर्म है। जब देह को सत मान कर जीव बिचरता है तब तक कर्म के जाल से मुक्ति नहीं मिलती। जिस वक्त देह को असत् समझता है और उस वक्त नेह कर्म स्वरूप आत्मा का चिन्तन प्राप्त होता है आत्मा

के चिन्तन करने से उसी में लीन हो जाता है फिर भ्रम चक्र में नहीं आता। यह ही हालत समता आनन्द है।

(६६) देह अभिमान गहरा जाल है। शुद्ध अंतः करण के बग़ैर इसका पता नहीं लगता कि यह ममता का झंझट दुख रूप है या सुख रूप है। जिस वक्त बुद्धि निर्मल होती है उस वक्त इस मिथ्या चक्र को अनुभव करके उदास हो जाता है। जब ऐसी हालत प्राप्त हुई उस वक्त परम तत्व को प्राप्त करने का यत्न करता है यत्न करते २ उस परमानन्द को प्राप्त हो जाता है जो तीन काल अनादि है।

(६७) अंतःकर्ण की शुद्धि अधिक ज़रूरी है इस वास्ते सत् कर्मों का धारण करना परम साधन है। सादगी, सेवा, सतसंग, सत्य, सत्स्मरण आदि महा गुणों को धारण करने से दुर्मति का अभाव होता है और आत्म-निश्चय को प्राप्त हो जाता है। आत्म-निश्चय ही भक्ति का स्वरूप है आत्म-निश्चय ही असली ज्ञान है। आत्म-निश्चय ही असली कल्याण के देने वाला है इस वास्ते हर घड़ी हर लमह सत स्वरूप आत्मा का विचार करना और साधन करना ही असली योग है।

(६८) आत्मा शरीर के अन्तर व्याप रहा है मगर शरीर के विकारों से बिलकुल न्यारा है। शुद्ध स्वरूप और परिपूर्ण है इस आश्चर्य को अनुभव करके महापुरुष लीन हो जाते हैं दूध में जैसे घृत मौजूद है, काठ में जैसे अग्नि मौजूद है इसी तरह शरीर के अन्तर आत्मा प्रकाश कर रहा है मगर यथार्थ यत्न के बग़ैर उसको कोई पा नहीं सकता।

(६९) उस परम तत्व को प्राप्त होने के वास्ते सार साधन यह ही है कि सत् विचार द्वारा अपनी बुद्धि को निर्मल करना और असत् माया के भोगों से उपराम होना, उस परम शक्ति का आसरा रखकर चौंसठ घड़ी अपने मन की वृत्ति ईश्वर प्रेम में लगाय रखना, परम प्रभुता को जान कर अपने अन्तर विषय अनन्य भाव से स्मरण करना, और संसारी पदार्थों से वैराग्यवान रहना, लोक सेवा को धारण करना। जिस वक्त

ऐसी वृत्ति प्राप्त होती है उस वक्त अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। बुद्धि एकाग्र होकर अन्तर विषे अबिनाशी शब्द को अनुभव करती है और परम शाँत अवस्था को प्राप्त होती है।

(७०) आहार, व्यवहार, और संगत शुद्ध होनी चाहिये क्योंकि मन की उपाधी शुद्ध आचरण के धारण करने से जल्दी नाश हो जाती है और परमानन्द को प्राप्त करने में यत्न करने लगता है यानी अपनी कल्याण की खातिर सत् भाव को धारण करता है। यह संसार अधिक दुस्तर है। इससे मुक्ति हासिल करने की खातिर बड़े २ यत्न महा पुरुष करते आये हैं जिनसे आखिर परम तत्व को प्राप्त हो गये। और इस संसार में अपना जीवन आनन्द स्वरूप से व्यतीत करके आइन्दा के जीवों के वास्ते आदर्श स्वरूप हो गये।

(७१) जिस वक्त देह के अन्तर आत्म तत्व प्रगट हो जावे उस वक्त सब कल्पना और कामना नाश हो जाती है। बुद्धि इस परम धाम को प्राप्त करके उसमें लीन हो जाती है वह ही पुरुष धन्य है जिसको यह आनन्द प्राप्त हुआ।

(७२) आत्म-तत्व का ध्यान, स्मरण, प्रेम विशेष भाव से धारण करने से परम सिद्धि प्राप्त होती है। यानी अपने अन्तरविषे मन करके स्मरण करना और निश्चल चित्त करके ध्यान करना केवल सत् स्वरूप जानकर अधिक प्रेम रखना यह भाव इस भ्रम चक्र को नाश करके जीव को परम सिद्धि यानी समता शान्ति देता है।

(७३) कर्मों की आसक्ति में जीव अधिक मजबूर है यानी (मैं कर्त्ता) की गिरफ़्तारी से छूट नहीं सकता। दुख व सुख, ग्रहण त्याग, लाभ हानि, खुशी ग़मी, मित्र शत्रु आदि द्वन्द्व विकार में अधिक आसक्त होकर . अधिक दुखी होता है। अनेक भावों को धारण कर के भी शांति को प्राप्त नहीं होता। यह एक घना क्लेश इस जीव को लगा हुआ है। इससे छूटने के वास्ते बड़े बड़े यज्ञ, तप, कठिन-से-कठिन

साधना को धारण करता है मगर कर्माभिमान नाश नहीं होता। कर्मों के अनुसार ऊँच-नीच योनी को प्राप्त होता रहता है। नेह कर्म अवस्था जो परमानन्द धाम है उसको प्राप्त नहीं हो सकता।

(७४) इस घोर जाल से छूटने के वास्ते सिर्फ यह ही उपाय सहज है कि ईश्वर को कर्त्ता हर्त्ता जानना। निश्चय करके सत स्मरण धारण करना हर घड़ी, हर लमह में, कर्मों का होना और न होना सब ईश्वर की आज्ञा में देखना और मन की वृत्तियों को एकाग्र करके अपने अन्तर विषय सत् स्वरूप का ध्यान करना जिस वक्त ऐसा अभ्यास परिपक्क हो जाता है उस वक्त बुद्धि सत् स्वरूप को अन्तर विषे अनुभव कर लेती है। और अधिक प्रेम को धारण करके उसी में लीन हो जाती है। उस वक्त कर्म जाल अभाव हो जाता है और नेह कर्म स्वरूप ब्रह्म शब्द प्राप्त होता है वह ही समता शाँति है।

(७५) मिथ्या नाम रूप की कल्पना में जीव अनर्थ क्लेशवान् रहता है। इस वास्ते इस अंधकार से छूटने के वास्ते सत् नाम का स्मरण करना परमानन्द के देने वाला है। ज्यों-ज्यों सत्नाम का निध्यास करता है त्यों-त्यों असत् माया का विकार नाश होता जाता है। आखिर केवल सत् स्वरूप में लीन हो जाता है जो जीव का असली स्वरूप है।

(७६) अपनी जिन्दगी का सुधार करना ही असली यत्न है। जिसने मानुष देह को धारण करके उस परम पिता का आसरा नहीं लिया और न ही इस माया के अंधकार से छूटने का विचार किया, और नित ही देह के भोगों में जो प्रसन्न रहता है वह पशु समान अपनी जिन्दगी को गुजार कर फिर नीच गति को प्राप्त होता है। इस घोर अंधकार से कभी भी छूट नहीं सकता बारम्बार माया के चक्र में आता जाता रहता है।

(७७) सब कुछ ईश्वर का ही विचार करना उसी को सच्चा मालिक जानना, सब कर्म उसी की आज्ञा में अर्पण करने, दृढ़ निश्चय

करके उपासना करनी, यह साधना कल्याण के देने वाली है। यानी जीव इस यत्न से अहंकार से रहित होकर परमानन्द स्वरूप में लीन हो जाता है, और सर्व स्वरूप एक ईश्वर ही ईश्वर देखता है। वह ही हालत असली आनन्द और परम धाम है।

(७८) मानुष ज़िन्दगी को धारण करके सत् भाव को ग्रहण करना चाहिये। अगर सत् भाव को धारण न किया जावे तो मन असत् भाव को धारण करके अति पाप कर्म करने लगता है। उन पाप कर्मों से अति दुखी होता है। किसी हालत में भी प्रसन्नता को प्राप्त नहीं होता क्योंकि तृष्णा की आग हर वक्त अन्तर जलाती है।

(७९) देह को नाशवान समझ कर सत् स्वरूप आत्मा का विश्वासी होना और अभ्यास करना ही कल्याण के देने वाला है। इस सतमार्ग को छोड़ कर जो अनेक मनोरथ धारण करके कई तरीका की उपासना करते हैं वह अधिक क्लेश को प्राप्त होते हैं यानी परमानन्द अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकते।

(८०) संसारी पदार्थ प्राप्त होने पर भी और न प्राप्त होने पर भी जीव को शाँति प्राप्त नहीं होती। इस वास्ते निष्काम कर्म का साधन ही कल्याण का देने वाला है। सब कुछ ईश्वर का जानकार उसीके निमित्त सब कर्म करने, औरप्रेम भाव को धारण करके स्मरण करना ही कल्याण कारक है। इस भाव के ग्रहण करने से दुष्ट वासनाओं से जल्दी मुक्त हो जाता है और श्रेष्ठ वासनाओं द्वारा आत्म स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। मानुष ज़िन्दगी का परम साधन यह ही है।

(८१) जिसने एक ईश्वर पर भरोसा किया और उसी को कर्त्ता हर्त्ता जाना, सब जगत् में उसी को प्रकाशक देखा, निर्मान भाव को धारण करके सत कर्मों को धारण करता है और सब कर्म ईश्वर की आज्ञा में त्याग करता है वह देह अभिमान से मुक्त हो कर आत्म स्वरूप को प्राप्त हो जाता है फिर कर्म चक्र में नहीं आता। वह ही अवस्था समता शाँति की है।

(८२) जिसने आत्मा को शरीर से भिन्न जाना है और हर घड़ी आत्म स्वरूप में स्थित रहता है। सब शरीर के कर्मों में आसक्त नहीं होता वह ही ब्रह्म ज्ञानी है और समताआनन्द को अनुभव करने वाला है। सर्व स्वरूप में स्थित होकर परम शाँति को प्राप्त हो जाता है।

(८३) शरीर के अन्तर विषे जिसने ब्रह्म शब्द को अनुभव किया और जो हर वक्त सुरती को शब्द में दृढ़ करता है और नौ द्वार के विकारों से उपरम होकर शून्य स्थान में विश्राम किया है वह ही परम योगी परमानन्द को प्राप्त होकर फिर प्रकृति के जाल में नहीं आता।

(८४) जिसने सब कर्मों के फल को ईश्वर के निमित्त अर्पण कर दिया है और अपने आप में ईश्वर परायण हो चुका है, जो सब जगत में एक ईश्वर का ही चमत्कार देखता है वह सब कर्मों के जाल से मुक्त होकर नेह कर्म स्वरूप शब्द में लीन हो जाता है। वह ही परम सिद्ध है। अपने सत् यत्न द्वारा सत् धाम को प्राप्त हुआ।

(८५) जिसने अपनी सुरती को शब्द की धार में लीन कर दिया और पिण्ड की कैद से निकलकर ब्रह्मण्ड में जो लीन हुआ और हर वक्त जो शब्द आधार को प्राप्त हुआ, अन्तर बाहिर सब अपना ही स्वरूप जिसने देखा वह ही समतानन्द के जानने वाला है, वह ही परम पुरुष है, दुर्लभ उसका जीवन है, संसार के वास्ते कल्लाण स्वरूप है।

(८६) हर वक्त देह को छाया समान जिसने जाना और साक्षी स्वरूप आत्मा में जो प्राप्त हुआ काल कर्म के जाल से न्यारा होकर सत् शब्द में जो लीन हुआ वह ज्ञानी माया चक्र से मुक्त होकर समता शाँति को प्राप्त हुआ वह ही नमस्कार योग्य है।

(८७) जिसने प्राण अपान की संयम गति को जाना है और तमाम शरीर के कर्मों को ईश्वर अर्पण किया है, हर वक्त सत् शब्द में दृढ़ निश्चय जिस को प्राप्त हुआ है। वह ही अन्तरगति के जानने वाला परम योगी है, और समता शाँति को अनुभव करने वाला है।

(८८) जिसने हर वक्त अपने मन को प्राण की गति में लीन किया है और चित्त करके सत् नाम का स्मरण करता है। और सर्व स्वरूप उस परमेश्वर को देखता है, सुख व दुख में वृत्ति जिसकी समान है, वह ही तत्व ज्ञानी सत तत्व को जानने वाला है और देह के तमाम विकारों से मुक्त होकर सत् स्वरूप में स्थित हुआ है।

(८९) जब तक मन में सत् विचार नहीं, जब तक सच्चा प्रेम और बिरह नहीं सत् स्वरूप में, जब तक सत यत्न यानी अभ्यास नहीं तब तक कभी भी मन विकराल को काबू नहीं कर सकता। जब तक मन काबू में नहीं तब तक सत शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता ख़्वाह लाखों वर्ष क्यों न संसार में विचरता रहे।

(९०) कर्मों का अधिक बन्धन है। जीव एक पलक भी कर्मों से रहित नहीं हो सकता इस वास्ते परम यत्न से अपने मन को सत स्वरूप में स्थित करे और तमाम कर्मों को ईश्वर अर्पण करे। तन, मन, धन सब ईश्वर की ही दात जाने। ऐसी दृढ़ उपासना से मन सत् स्वरूप को अनुभव करके कर्म रहित हो जाता है यानी नेह कर्म स्वरूप आत्मा में लीन हो जाता है। यह ही परम भक्ति है। धन्य है वह पुरुष जिसको ऐसी रहनी प्राप्त हुई है।

(९१) जिसने अपने मन को ईश्वर के स्मरण में लगाया है सत् विश्वास करके नित ही परोपकार सेवन करने वाला है जो गुणी पुरुष और सब कुछ आज्ञा नारायण में जो देखता है वह परम भक्त है और शीघ्र ही सत पद में लीन हो जायगा।

(९२) दुर्मत विकार अधिक अंधकार है। शरीर के टुकड़े २ करने से भी नाश नहीं होता। यह गहरा भ्रान्त जीव को नित ही आवागवन में फिराता है। ज्ञान और वैराग्य की तलवार से इस को छेदकर सत्पुरुष, सत धाम में स्थिव हुये। और इस माया के संग्राम से विजय पाई। वह ही शूरवीर धर्म की विजय पाने वाले हैं और समताआनन्द को प्राप्त करके चिरंजीव पद में विश्राम कर गये हैं।

(९३) जीव की अहंग कल्पना ही दुस्तर और गहन है इसका त्याग करना ही परम ज्ञान है। यह सहज से त्याग नहीं हो सकती बल्कि सत श्रद्धा और मन प्रेम से बार २ मन नाम का निध्यासन करने से यह दुर्मत विकार नाश होता है और समता धाम की प्राप्ति होती है यह पुरुषार्थ ही कल्याण के देने वाला है।

(९४) जो अंध बुद्धि रखने वाले ईश्वर विश्वासी नहीं और न ही मन भाव को प्राप्त करने का यत्न करते हैं वह इस दुर्मत भ्रम की फाँस में आकर कई प्रकार की नीच योनियां को प्राप्त होकर परम दुखी होते हैं।

(९५) इस मिथ्या भ्रम चक्र से छूटने की खातिर हर घड़ी सत् पद प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिये। इस मानुष ज़िन्दगी का यह ही परम लाभ है। ईश्वर कोई दूर नहीं सिर्फ बुद्धि अज्ञानवश होकर चंचलता को प्राप्त हो गई इस वास्ते इस सूक्ष्म तत्व को अनुभव नहीं कर सकती। जिस वक्त सत् पुरुषार्थ करके अपने मलीन कर्मों और मलीन वासना से मुक्त हुई उस वक्त अपने अन्तर विषय वह परमानन्द स्वरूप पा लिया। इस वास्ते बुद्धि की जाग्रति करनी ही परम तप है। जितनी बुद्धि अन्धकार में है उतनी ही मलीन कर्मों को धारण करके परम दुखी होती है जितनी ही शुद्ध भाव को ग्रहण करती है उतनी ही शुभ कर्मों को धारण करके परम सुखी होती है।

(९६) सब कल्याण और बन्धन का भाव बुद्धि पर ही है। जब तक बुद्धि में अहम् भाव स्थित है तब तक कर्म चक्र से छूट नहीं सकता। इस वास्ते हर घड़ी अपनी बुद्धि को पवित्र करना ही परम धर्म है। बुद्धि की शुद्धि सत् विचार करके और सत् निध्यास करके है। जिस गुणी पुरुष ने ऐसी साधना धारण की वह बुद्धि को निर्मल करके परम धाम को प्राप्त हो गये।

(९७) ज्यों २ बुद्धि निर्मल होती है, अन्तर से सब कामना का

त्याग करती है। आेढ़क अति पवित्र हालत को प्राप्त होकर परमानन्द स्वरूप में लीन हो जाती है यह ही परम सिद्धता है।

(९८) कर्मों की वासना हर वक्त बुद्धि को भरमाती है एक पलक भी निश्चल होने नहीं देती। बड़े यत्न प्रयत्न करके सत् अनुराग को धारन करके गुणी पुरुप अपनी बुद्धि को निर्मल करते हैं और हर घड़ी सत स्वरूप नारायण के परायण रहते हैं। सब कर्म जाल ईश्वर के चरणों में सौंप देते हैं। अपने अन्तर परम निर्मानता को धारण करके कर्मवासना से मुक्त हो जाते हैं। ऐसा पुरुषार्थ ही कल्याण के देने वाला है।

(९९) हर वक्त मार्ग धर्म में स्थित रहना चाहिये। सत् गुणों को ग्रहण करके अपनी कल्याण करनी चाहिये। क्योंकि अपने यत्न करके भ्रम में जीव गिरफ़्तार होता है और अपने यत्न करके मुक्त होता है। जो मन्द बुद्धि वाले यह कहते हैं कि हमारे भाग्य में नहीं है वह मूर्ख हैं। यत्न हर एक जीव करता है ख़्याह शुभ या अशुभ। जिन्होंने सत्संग द्वारा शुभ पुरुषार्थ को धारन किया वह शुभ गति को प्राप्त हुये यानी समता शाँति को हासिल किया और जो अज्ञानी कुसंग द्वारा सत् मार्ग को छोड़कर स्वार्थ अन्धकार में मुस्तग़र्क़ हुये, वह आख़िर दुनियाँ से तृषावन्त होकर जाते हैं।

(१००) इस मार्ग संसार में आकर सत् बुद्धि द्वारा सत् पुरुषार्थ को धारण करना चाहिये। जिससे जीवित में ही परमानन्द प्राप्त हो जावे और आइन्दा की परलोक कल्पना नाश हो जावे। अपने सत् स्वरूप को प्राप्त करके पूर्ण रूप हो जावे। जिस गुणी पुरुष ने ऐसा साधन धारण किया है उसका इस संसार में आना दुर्लभ है यानी मिथ्या चक्र में आकर सत् पद को प्राप्त कर लिया।

(१०१) तृष्णा रूपी विकार अधिक रोग है इससे सत यत्न द्वारा ही शाँति हो सकती है जो गुणी पुरुष सत पुरुषार्थ को धारण नहीं करते और शरीर के भोगों में मग्न रहते हैं वह आख़िर इस दुनिया से प्यासे ही

जाते हैं। इस वास्ते जब तक प्राण की धारा जारी है। तब तक अपनी कल्याण का यत्न करना चाहिये। असली कल्याण यही है कि जीव की सब कामना और कल्पना नाश हो जावें और शरीर के होते २ सत् पद को प्राप्त करके आनन्द मई हो जावे। मृतक काल का भय बिलकुल चित्त में नाश हो जावें। अभिनाशी तत्व को प्राप्त होकर आनन्द स्वरूप हो जावे। ऐसी रहनी जिसको प्राप्त हुई है वह परम पुरुष पूजने योग्य है क्योंकि उसके पवित्र जीवन करके लाखों जीवों को शाँति प्राप्त होती है। वह महा पुरुष जगत का आधार है।

(१०२) जब तक अपनी इन्द्रियों पर काबू न पा लेवे और निष्काम भाव को ग्रहण न करे तब तक कभी भी सत शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता। इस वास्ते इन्द्रियों के भोगों का त्याग करना ही सुखदाई है। जो इन्द्रियों के भोगों में आसक्त हैं और मुख से बड़ा ज्ञान ध्यान विचार करते हैं वह तोते की तरह बानी को रट लगाते हैं आखिर बक-बक करके नाश हो जाते हैं। इस मूर्खताई को त्याग करके जिन्होंने सत् बुद्धि द्वारा सत् पुरुषार्थ को धारण किया है और इन्द्रियों के भोगों से विरक्त होकर आत्मरस का पान किया है वही परम भक्त सत् पद को प्राप्त हो गये हैं।

(१०३) जब तक सत् विचार को अपने अन्तर न घटाया जावे तब तक बुद्धि शुद्ध नहीं होती इस वास्ते ऐसा विचार हर वक्त करना चाहिये कि यह शरीर क्या है? और इसका बनाने वाला कौन है? हम किधर से आये हैं? और किधर को जायेंगे? इस दुनियाँ में आकर क्या करना चाहिये? असली खुशी क्या है और किस युक्ति करके प्राप्त होती है? ऐसे विचार से सत् पद की प्राप्ति सहज हो जाती है। जो इन विचारों को त्याग कर यह ही मान बैठे हैं कि हम ही आये हैं और हमेशा इस जगह रहेंगे। शरीर के भोग ही परम सुख हैं। हम कभी भी संसार को त्याग नहीं करेंगे। मौत क्या चीज है। आगे सब मूर्ख थे। हम ही बड़े दानिशमन्द हैं। यह ही मलीन वासनायें अति घोर दुख के देने वाली

हैं। यानी शरीर तो अवश्य नाश हो जावेगा मगर यह मलीन भाव असली शाँति को प्राप्त होने नहीं देते। वह मनमुख आखिर परम दुखी होकर संसार से जाते हैं और आइन्दा कई जन्म दुख पाते हैं।

(१०४) तमाम सत् पुरुषों की हिदायत यह ही है कि अपनी ज़िन्दगी में मालिके कुल को जान लेवें। तमाम मज़हबों का प्रसंग यह ही है कि सत् नियमों को धारन कर के अपनी मुखलसी हासिल कर लेवें मगर मूर्ख बुद्धि करके बजाय अपनी कल्याण के बाद मुबाद में जन्म गंवा देते हैं आख़िर दुनियां से बेज़ारी लेकर जाते हैं।

(२०५) तृष्णा रूपी रोग जीव को लगा हुआ है किसी हालत में भी शाँति को नहीं पाता यानी बड़े से बड़े ईश्वर्य को प्राप्त होकर भी तृष्णा युक्त रहता है। इस रोग से जिसने निजात पाई है वह ही सत् पुरुष है और जगत का गुरु है उसका सत् उपदेश अपनाने से इस दीर्घ रोग से शाँति मिलती है।

१०६. इस कमी को विचार करके हर घड़ी हर लमह सत् धाम की प्राप्ति की ख़ातिर यत्न करना चाहिये। जिस वक्त अपने मन को शाँति प्राप्त हुई उस वक्त ही संसार के असली मुकाम को प्राप्त हुआ। इसके बग़ैर हर वक्त भटकना लगी रहती है। किसी मुल्क में, किसी मज़हब में, किसी शरीर की हालत में तसल्ली नहीं होती है। उम्मीदों की जंजीर बार २ लपेट देती है।

१०७. अपनी सत् बुद्धि द्वारा अपनी कल्याण करनी गुणी पुरुष का परम यत्न है। जिसने अपनी बुद्धि को पाप कर्मों में लगा कर अंध विश्वासी कर दिया, और छल कपट के जाल में फंसा दिया, वह आत्मघाती किसी पलक भी शांति को प्राप्त नहीं हो सकते क्योंकि सब कुछ जान कर फिर अंधकार की तरफ जा रहे हैं उनको न कोई उपदेश देने वाला है. और न ही किसी की मानते हैं। जिस वक्त कभी अपनी ग़लती का विचार करेंगे उस वक्त उनको अपनी करनी का रंज और ग़म होगा। मगर वक्त गंवाकर पछताने से क्या हो सकता है।

१०८. तमाम बुजुर्गों का उपदेश यही है कि अपना कल्याण करो जिस तरीके से हमको शाँति प्राप्त हुई है वह तरीका तुम भी इख्त्यार करके सत् शाँति को प्राप्त हो जाओ। इस दुनियाँ के जाल को देख कर सत् स्वरूप को मत भुलाओ मगर सब कुछ सोच समझ कर भी फिर अभिमान में आकर जो अत्याचार करता है वह धर्म का डाकू है। उसने धर्म नहीं जाना है बल्कि चतुराई को हासिल किया है। ऐसे पुरुष की संगत दुखदाई है। भूल करके भी उसके निकट नहीं जाना चाहिये।

१०९. हर वक्त ऐसी धारणा धारण करनी चाहिये जिससे मन को शाँति प्राप्त होवे। सत् विश्वास यानी दृढ़ निश्चय ईश्वर शक्ति पर, सत् विचार यानी ईश्वर को ही सत् जानना और सब भ्रम समझना, सत् पुरुषार्थ यानी हर घड़ी ईश्वर प्राप्ति की खातिर यत्न करना, सत् संगत यानी जिस जगह सत् पुरुषों का विचार होवे और सत् स्वरूप का प्रसंग उच्चारण होवे उस संगत में एकत्र होकर अपनी बुद्धि को निर्मल करना, सत् सेवा यानी निष्काम भाव करके दूसरे का कष्ट निवारण करना, सत्यवादी होना यानी बोल तोल में सत् का धारण करना, सादगी यानी अपनी कामनाओं को शुद्ध करना, अपने आहार-व्योहार में शुद्धि अख्त्यार करनी और अपनी जरूरतों को कम करके दूसरे की जरूरत पूर्ण करनी, अन्तिम दशा का विचार यानी शरीर के नाश का विचार करना और जीवित में सत कर्म को धारन करना, यह विचार बुद्धि को निर्मल करते हैं और जीव को ईश्वर परायण बनाते हैं। जिनके अन्दर ऐसी स्थिति है वह जल्दी ही सत् पद को प्राप्त हो जावेंगे।

११०. इस संसार में आकर सत् पुरुषों की सीख द्वारा अपने जीवन को पवित्र करना ही परम धर्म है। यानी सतगुरु की आज्ञा के मुताबिक अपने जीवन को बनाना। जो अंध बुद्धि वाले सत् पुरुषों की सीख को धारण नहीं करते वह पद २ पर कष्ट उठाते हैं और इस दुनियाँ में हमेशा अशान्त रहते हैं। इस वास्ते सत् उपदेश को धारन करना ही

कल्याण के देने वाला है। मन को जिस भाव में लगाया जावे उसी तरफ़ कोशिश करता है इसलिये सत् भाव में अपनी वृत्ति को लगाना चाहिये जो इस लोक और परलोक में सुखदाई होवे।

१११. शरीर के होते २ शरीर के मालिक की पहिचान करनी। तमाम शरीर की कान्ति उसके आधार जाननी मालिके कुल जान कर सत् श्रद्धा से उपासना करनी ही असली कल्याण है। जिस वक्त देह अभिमान नाश हो जाता है यानी सब कुछ ईश्वर का ही देखता है उस वक्त वह आत्म-स्थिति को प्राप्त होता है यानी अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त हो करके शान्त हो जाता है। ऐसा निश्चय धारण करना ही परम श्रद्धा है।

११२. सत् कर्मों को धारन करने से बुद्धि निर्मल होती है और शान्ति को प्राप्त होती है। जीव को शरीर अभिमान, विचार अभिमान और द्रव्य अभिमान हर वक्त भ्रम चक्र में फिराता है। इस वास्ते सब शक्ति का दाता परम पिता जान कर निर्मान भाव को धारण करना ही कल्याण है। वह ही गुणी पुरुष है जिसको अपने गुण का अभिमान नहीं वह ही सत्य वादी है।

११३. निर्मान भाव को फारण करना ही परम शान्ति है यानी देह अभिमान के नाश होने से आत्म उन्नति प्राप्त होती है इस वास्ते सब कुछ ईश्वर का समझ कर उसी के चरणों में भेंट करना चाहिये। इस निश्चय से मिथ्या पदार्थों की कामना नाश हो जाती है और केवल एक नारायण का स्मरण प्राप्त होता है जो असली समता धाम है। हर वक्त ऐसी धारणा धारण करनी चाहिये।

११४. जिसने शरीर के भोगों से मुक्ति हासिल की है वह ही परम सुखी है और सत् तत्त्व के जानने वाला है उस ने संसार की बाज़ी को जीत लिया है। सब पदार्थों के होते २ जिसका चित्त आत्म परायण रहता है वह ही भोगों से मुक्त हुआ है यानी आत्म भोग को प्राप्त हुआ है और नित निर्वास, निर्विकल्प आनन्द में स्थित रहता है।

११५. सार विचार यह है कि संसार के भोग अशान्ति के देने वाले हैं और आत्म प्राप्ति परम शान्ति है। इस वास्ते मानुष देह को धार करके आत्म परायण होना परम सिद्धि है क्योंकि बग़ैर सत् आधार के जीव कभी भी इस माया के चक्र से निकल नहीं सकता। तमाम प्राचीन बजुर्गों का आदर्श विचार करके अपनी आत्मिक उन्नति करनी और दीगर तमाम वहमों का त्याग करना मानुष जन्म का सार साधन है। जो आत्म-उन्नति को छोड़ कर कई वहमों में फिरते रहते हैं वह स्वार्थ की आग में कभी भी शान्त नहीं हो सकते। इस वास्ते परमार्थ तत्व का विचार करना और निध्यास करना ही परम शान्ति को देने वाला है। इस सत् विचार को दृढ़ निश्चय से धारण करना ही कल्याण के देने वाला है।

११६. समता धाम की प्राप्ति की ख़ातिर परम यत्न करना चाहिये जिस को प्राप्त करके जीव फिर ममता विकार के अन्धकार में न प्रवेश करे। यह ही अवस्था जीव का असली स्वरूप है जिस को भूल कर अपने भ्रम में कई जन्म दुख उठाता रहा।

११७. समता तत्व का अनुभव करना ही परम योग है। बग़ैर समता प्राप्ति के जीव द्वन्द्व विकार से शान्त नहीं होता इस वास्ते परम तत्व समता का निध्यासन करना ही सुखदाई है।

११८. अखंड शब्द ब्रह्म जो तीन काल सम स्वरूप है उसका स्मरण करना ही कल्याण के देने वाला है। जो उस सत् तत्व को छोड़ कर स्वार्थ देही में मग्न रहते हैं वह मनमुख नित ही दुखी और अशान्त हैं।

११९. तमाम सत पुरुषों का मेराज (ध्येय) समता धाम प्राप्ति है इस वास्ते सत् विश्वास करके प्रकृति के बन्धन से मुक्त होकर सत् शब्द में स्थिति हासिल करनी मुख्य साधन है। सत पुरुषार्थ करके ही कर्म के जाल से शान्ति मिलती है। यह संसार का चक्र अति ही आश्चर्य है। वास्तव में कुछ भी नहीं मगर प्रत्यक्ष कितना विस्तार युक्त दिखाई देता

है। कोई गुणी पुरुष ही असली भेद को जान सकता है।

१२०. जीव अपने सत् स्वरूप को भूल कर अपनी कल्पना का विस्तार यह संसार देखता है। जितनी कल्पना अधिक है उतना संसार का विस्तार भी अधिक देखता है जितनी कल्पना कम है उतना ही संसार तुच्छ स्वरूप दिखाई देता है। जिस वक्त अपने सत् स्वरूप को जान लेता है उस वक्त संसार का भ्रम नाश हो जाता है। सर्व स्वरूप एक सचा मात्र ही देखता है। यह ही समता धाम है।

१२१. ऐसी अवस्था को प्राप्त होकर देह के द्वन्द्व विकार में चलायमान नहीं होता। अपने स्वरूप में अति ही निश्चल हो जाता है। वह ही महा पुरुष सब सार को जानने वाला है और अपने आप में पूर्ण हो चुका है उसका दर्शन और उपदेश दुर्लभ है।

१२२. सत् कर्म की धारणा समता का पहला साधन है। सत् कर्म के साधन से अति ममता का विकार नाश हो जाता है और शुद्ध बुद्धि को प्राप्त करके अपने अन्तर विषे सत् अभ्यास धारण करता है जिससे आत्म साचात को प्राप्त हो जाता है। गृहस्थी हो या वरक्ति, कर्मों के जाल से छूटने के वास्ते हर एक को यथार्थ साधन करना सुखदाई है।

१२३. जो समता शाँति को प्राप्त करने का यत्न नहीं करता और स्वार्थ में आकर वादमुवाद में जन्म गंवाता है वह ही पशु है। किसी समय भी दुष्ट विकार की जलन से शाँत नहीं हो सकता। उसका संसार में आना अकार्थ है।

१२४. हर एक प्राणी मात्र को अपनी कमी को पूरा करने का विचार करना लाज़मी है। दुर्लभ समय मानुष ज़िन्दगी का बार २ नहीं है। इस वास्ते अपने जीवन में ही समता तत्व की प्राप्ति करनी चाहिये जो तीन काल में पूर्ण है जिसको प्राप्त करके फिर संसार का कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं।

१२५. जिसका विश्वास दृढ़ हो गया है ईश्वर के स्वरूप में जिसने कुल कर्म ईश्वर के निमित्त निश्चय करके अर्पण किये हैं ग्रहण और त्याग में जिसकी बुद्धि सम है और जो अन्तर त्रियं शब्द समाधि को प्राप्त हुआ है। तमाम मन की वृत्तियों से मुक्त होकर अखण्ड शब्द में जो लीन हुआ है वह ही सत् पुरुष समता धाम को जानने वाला है। ऐसी पवित्र अवस्था को प्राप्त करने का प्रेम हर एक गुणी पुरुष के अन्दर होना चाहिए जिससे मालिक के कुल को प्राप्त होकर परम सुख मिले। सब भ्रमों को छोड़ कर जो आत्मिक निश्चय को धारण करते हैं वह पुरुष सत् गति को प्राप्त होते हैं। जो कोई अपना कल्याण चाहे वह आत्म विश्वासी होकर सत् मार्ग में निश्चल होवे जिससे परम लाभ समता आनन्द प्राप्त होवे। धन्य वह पुरुष है जिसने ऐसी रहनी पाई है। उसका विचार कल्याण कारक है।

१२६. समता आनन्द के वास्ते यथार्थ और सहज साधन यह है कि हर वक्त आत्म निश्चय को धारन करना, सत्संग द्वारा अपने अन्तः करण को शुद्ध करना और व्योहार में सचाई अख्त्यार करनी, साक्षी पुरुष परमेश्वर को सर्व सुख दाता जान कर अनन्य भाव से स्मरण करना यह ही निर्मल भक्ति है जो परम शान्ति को देने वाली है।

१२७. जब तक कर्म की शुद्धि नहीं तब तक कभी भी रागद्वेष की जलन नाश नहीं होती। इस वास्ते इस घोर अन्धकार से छूटने के वास्ते सत्य यत्न करना चाहिए।

१२८. सबसे उत्तम विवेक यही है कि आत्म निश्चय प्राप्त हो जावे। बिना आत्म निश्चय के संसार के क्लेश से मुक्त होना मुश्किल है। सत् पुरुषों की शिक्षा को धारण करने से परमपद की प्राप्ति होती है अगर शिक्षा न धारण की जावे सहज दर्शन कल्याण नहीं दे सकता। इस वास्ते हर घड़ी अपने विचार को श्रेष्ठ करना चाहियें।

१२९. आत्म सम्बन्धी विचार, आत्म सम्बन्धी कर्म यानी निष्काम

कर्म, आत्म निध्यास ही परम कल्याण के देने वाला है। ऐसा निश्चय धारन करना चाहिये। देह के विकारों से कभी भी छूट नहीं मिल सकती जब तक कि आत्म परायण न होवे।

१३०. जो स्वार्थ की खातिर आत्म विश्वास को छोड़ कर और कई वहमों को धारण करते हैं वह न तो स्वार्थ में कामयाब होते हैं न परमार्थ में। यानी पुरुषार्थहीन होकर परम दुखी होते हैं। स्वार्थ अपने प्रारब्ध के अनुकूल सुखदाई व दुखदाई होता है। जब तक कर्म फल भोग न लेवे कभी भी शान्ति नहीं होती इस वास्ते आत्म विश्वास की धारणा करके कर्म चक्र से छूटने के वास्ते कोशिश करनी चाहिये।

१३१. आत्म विश्वास से हीन होकर न दुनियाँ की तरक्की कर सकता है, न परमार्थ की यानी सत् विचार और सत् पुरुषार्थ के बग़ैर किसी मार्ग में प्रभुता नहीं मिलती। जो खुदग़र्ज़ी के भाव में कोशिश करते हैं वह अपने असली अंजाम को प्राप्त नहीं हो सकते इस वास्ते कुल दुनियाँ की प्रभुता सत् आचरण से ही प्राप्त होती है। यह निश्चय कर के हर वक्त सत् बुद्धि को धारण करना चाहिये।

१३२. सत् विचार से हर एक चीज़ उन्नति को प्राप्त होती है मलीन विचार से नाश हो जाती है। यह ही माया का चक्र है। सत् विचार की सार यह ही है ईश्वर विश्वासी होना। जो पाखण्डी ईश्वर विश्वास से हीन होकर अनेक प्रकार की साधना करते हैं वह किसी सूरत में भी अपने मनोरथ को प्राप्त नहीं हो सकते।

१३३. सत् विश्वास ही असली जीवन है। जिस के अन्तर ईश्वर का विश्वास नहीं वह अति चंचलता को धारन करके हर वक्त अपने अन्तर विषे अशान्त रहता है इस वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश करके अपने अन्तर विषे ईश्वर विश्वास धारण करना चाहिये ईश्वर विश्वास के बल से संसार में विचरते हुए परमानन्द को प्राप्त हो जाता है।

१३४. तमाम दुनियाँ का फ़लसफ़ा और ज्ञान एक आत्म आधार

पर ही है। इस वास्ते बादमुबाद को छोड़कर अपने अन्तर विषे जीवन शक्ति का विचार, ज्ञान ध्यान धारण करना चाहिये यह ही असल ईमान और धर्म है। तमाम दुनिया के सदाचारी लोग इसी तरीका को हासिल कर के अपने अंजाम को पा गये। यानी परम शान्ति को प्राप्त हुए।

१३५ देह के अभिमान में आकर बुद्धि विचार से हीन हो जाती है और कई तरीका के पाप कर्म सोचती है और दुखी रहती है। आत्म विचार यानी ईश्वर निश्चय बुद्धि को निर्मल करता है और शान्ति के देने वाला है। हर वक्त श्रेष्ठ यत्न को धारण करके अपनी आत्म उन्नति करनी चाहिये।

१३६ ख्वाह कोई गृहस्थी है या वरक्ति है असली सुख आत्म परायण होने से ही प्राप्त होता है जो खुशी ग़मी से ऊँचा है। मालिके कुल का कानून सब के वास्ते बराबर है जो सत् मार्ग की तरफ़ जायगा वह शान्ति को प्राप्त होगा और जो अभिमान वश होकर उपद्रव करेगा वह परम दुखी होवेगा। यह सार सिद्धान्त है।

१३७. सचाई की तलाश करनी चाहिये। मज़हबी बाद मुबाद से निजात हासिल करनी चाहिये। मज़हबी बादमुबाद बुद्धि को भ्रष्ट करने वाला है। अभिमान, मोह और क्रोध को प्रगट करने वाला है नेक लोगों की हिदायत असली मज़हब है। अगर उस हिदायत को न धारण किया जावे और महज़ जबानी बादमुबाद धारण रखे वह असली मूर्ख है। असली खुशी को कभी भी हासिल नहीं कर सकेगा।

१३८. जिसने अपना निश्चय परम धाम प्राप्ति की ख़ातिर दृढ़ किया है वह ही सत् पुरुष सत् यत्न कर के निजात को हासिल कर सकता है। सत् पुरुषों का जीवन अपनी कमज़ोरी को दूर करने का यत्न सिखलाता है न कि खुद अन्धकार में और दूसरों को सत् उपदेश। निर्मल विचार हर वक्त धारन करना चाहिये।

१३९. जिस मानुष ने ईश्वर पर पूर्ण भरोसा पाया है और हर

वक्त सत्कर्म विचार करता है और हर एक की भलाई का चाहने वाला है। तकलीफ़ में जिसका चित्त घबराता नहीं और खुशी में अभिमान नहीं करता, हर वक्त ईश्वर आज्ञा में दृढ़ निश्चय वाला है वह ही गुणी पुरुष असली धर्म का जानने वाला है।

१४०. असलियत की तहकीकात करनी चाहिये जिससे शान्ति प्राप्त होवे। धर्म या ईमान का सार यह ही है कि ग़फ़लत को छोड़ कर सत् मार्ग को धारण करे। गुरुओं की हिदायत यह ही सिखलाती है कि सत् कर्म धारण करके अपनी खलासी को पाये। इस वास्ते जो मानुष सत् उपदेश को धारण करके हर घड़ी अपने अन्तःकरण को शुद्ध करता है और ईश्वर परायण निश्चय वाला है। और वक्त का पाबन्द है यानी वक्त पर दुनियावी कारोबार और वक्त पर अपने सत्य अभ्यास में जो महव रहता है वह ही निर्मल बुद्धि वाला पुरुष परम सिद्धि को सहज ही प्राप्त हो जायेगा। जो इन नियमों के उलट चलता है यानी अपने आचार-विचार और कारोबार में शुद्धि अख़्त्यार नहीं करता और न ही ईश्वर विश्वास में दृढ़ निश्चय वाला है वह बड़े से बड़े कष्ट को प्राप्त हो कर अन्त को निराश। इस संसार से जायगा और अपने पाप कर्मों के बन्धन से फिर कई जन्म दुख को पायेगा। यह दृढ़ निश्चय करके विचार करना चाहिये और सत् मार्ग को धारण करके समता शान्ति की प्राप्ति करनी चाहिये।

१४१. वास्तव में आत्मा देह से भिन्न है यानी देह हमेशा नाश और उत्पन्न होने वाली है और आत्मा सदैव काल एक रस है मगर अज्ञान के परदे में आकर देह के मोह को प्राप्त होकर देह की तबदीली युक्त हालत का अभिमानी हो जाता है और काम क्रोध की अग्नि में जलता रहता है। कर्म का कर्त्तापन और कर्मों के फल में आसक्त होकर भ्रम रूप अधिक अन्धकार में भरमता रहता है शान्ति को नहीं पा सकता।

१४२ इस मिथ्या भ्रम यानी देह की ममता को नाश करने

की खातिर सब नियम और धर्म है कि जीव सत् युक्ति को धारण करके इस अज्ञान स्वरूप से निवृत्ति हासिल करे और अपने परमानन्द स्वरूप में लीन हो जावे जो असली संसार का आधार है।

१४३. जो इस विकार से छूटने की खातिर सत् धर्म का आचरण नहीं करता बल्कि लोक यश, गुमान और स्वार्थ की खातिर जप तप करता है। वह सब कुछ करके भी फिर अपने अंधकार को बढ़ा रहा है। यानी बजाय शान्ति के उल्टा अशान्ति की तरफ़ जा रहा है।

१४४. देह की ममता अधिक अंधकार है जो ज्ञान स्वरूप की प्राप्ति में बाधक होता है यानी अविनाशी रूप अपना भूल कर मिथ्याकार कर्म का जो झंझट देह है उसको अपना स्वरूप मान लेना और देह के सुख और दुख में नित चलायमान रहना और एक पलक भी अपने साक्षी रूप का विचार न करना।

१४५. मानुष जन्म इस अंधकार को दूर करने की खातिर है जिससे जीव आइन्दा की तकलीफ़ों और पिछली तकलीफ़ों से छूट कर अपने असली धाम समतानन्द को प्राप्त हो जावे चूँकि यह भ्रम अधिक अपार है इस वास्ते सहज युक्ति के धारण करने से ही कल्याण को पा सकता है।

१४६. पहले शरीर के भोगों से उपरस होने की खातिर सहज उपाय यह है कि अति मलीन कर्मों का त्याग और बुद्धि को सत् विचार करके निर्मल करना। जिस वक्त पाप कर्मों से मुक्त हुआ उस वक्त सत् कर्म के आधार से ईश्वर शक्ति के निश्चय को प्राप्त हुआ।

१४७. जिस वक्त देह से ज़्यादा प्रभुता ईश्वर शक्ति की चित्त में प्रगट हुई और देह का आधार उस मालिके कुल को जाना उस वक्त देह के कर्मों को ईश्वर की आज्ञा में देखने लगा और सत् पुरुषों की सीख से ईश्वर भक्ति को धारण किया। ईश्वर भक्ति की प्राप्ति होने से देह अभिमान का अभाव होने लगा और अन्तर विषे आत्मिक बल प्रज्वलित होने लगा।

१४८. जिस वक्त अन्तर विषे आत्म शक्ति का यथार्थ तरीका से ध्यान प्राप्त हुआ और मन की धारणा निश्चल आत्म स्वरूप में हर वक्त होने लगी उस वक्त देह के मोह से चित्त को वैराग्य हासिल हुआ और ईश्वर विरह अन्तर जारी हुआ यह ही हालत असली जिज्ञासुओं की है। उस वक्त संसार में कोई भी पदार्थ सत् प्रतीत नहीं होता और सब भोग दुखदाई मालूम होते हैं और जीव अन्तर से सत् शान्ति को पाने की खातिर अधिक यत्न धारन करता है यानी विचार अभ्यास में दृढ़ होता है।

१४९. यत्न करते २ जब अन्तर विषे परम तत्त्व अविनाशी प्रगट पाता है उस वक्त देह को नाश रूप देखता है और आत्म स्वरूप को अविनाशी जान कर परम प्रीत से ईश्वर की उस्तत्त करता है और निर्मान भाव में मग्न रहता है यानी अपने आप को कुछ भी नहीं समझता। सब कुछ शक्ति एक नारायण ही देखता है यह ही परम भक्ति है। उस वक्त उस महा पुरुष ने तमाम शरीर के भोगों से मुक्ति हासिल की।

१५०. ज्यों २ अन्तर विषे नारायण का स्मरण ध्यान करता है त्यों २ परमानन्द को प्राप्त होता है जो कहने कथने में नहीं आता। सब कुछ ईश्वर के आधार ही देखता है जिस वक्त अति प्रेम और ध्यान में आरूढ़ हो जाता है उस वक्त देह से भिन्न होकर अपने स्वरूप में लीन हो जाता है और अखण्ड समाधि को प्राप्त होता है। वह ही परम ज्ञानी है। सब संसार से उसी ने ही कल्याण पाई है और नित आनन्द को प्राप्त हुआ है कर्म और काल के चक्र से निकल कर अपने नित स्वरूप में लीन हो गया है वह हालत ही समता धाम है। धन्य वह पुरुष है जिसको ऐसी दशा प्राप्त हुई है। धन्य वह है जो इस आनन्दमयी हालत को हासिल करने की खातिर यत्न करता है यह ही असली मार्ग है जिससे जीव को मुक्ति प्राप्त होती है। असली जिज्ञासु हो कर इस परमार्थ के सार तत्त्व को विचार करके अपनी उन्नति करें

यह ही हुक्म ईश्वर का और सत् उपदेश गुरुओं का है। यह समता धाम का विचार सब वहमों को नाश करने वाला है और सत् मार्ग में निश्चल करने वाला है इस वास्ते शुद्ध बुद्धि करके विचार करें और अपने कल्याण की खातिर यत्न करें। यह ही लाभ इस चाम शरीर का है।

श्लोक

सत् विचार धारन करे मन को तजे उपाध
  नित ही निर्मल नाम में धारे प्रेम अगाध।
सब जीवों की सेव करे दीन भाव चित्त धार
  दुख सुख आज्ञा प्रभु माहिं निस दिन करे विचार।
अन्तर सुरती राख के साचा नाम ध्याए
  सत् गुर की प्रतीत से निर्भय धाम समाय।
अविचल धाम प्राप्ति सकल दोष करे नाश
  मंगत दुर्लभ जगत में जिनका यह विश्वास।

समता नीति

(तीसरा अनुभव)

ओ३म् ब्रह्म सत्यम् निरंकार, अजन्मा, अद्धैत पुरुषा,
सर्व व्यापक, कल्याण मूरत, परमेश्वराय नमस्तं

(क) समता ज्ञान का पूर्ण साधन

(पहला उपदेश)

१. सम स्वरूप जो ब्रह्म शब्द अनादि है और घट २ व्याप रहा है उसका विश्वास, स्मरण, ज्ञान, ध्यान में नहःचलता हासिल करनी, ममता रूपी अन्धकार को नाश करना और हर घड़ी हर लमह अपने मन को समता शान्ति की तरफ़ रागिब करना समता का सार साधन है।

समता योग यानी सुरत शब्द की एकता

(२) मुख्य नियमः—(१) सदाचारी जीवन, सत्य, सादगी, सेवा, सत्संग, सत् स्मरण को धारना।

दूसरा नियम—स्मरण योग का अभ्यास (१) सत् विश्वास, प्रभु अनुराग (२) शरीर के भोगों से त्याग।

तीसरा नियम—शब्द प्राप्ति यानी ध्यान योग (१) कर्म फल का त्याग यानी निष्काम कर्म साधना (२) बहिरमुखी-वृति का त्याग (३) शब्द में स्थित होना।

३. बग़ैर राज्य योग की साधना के और सब अन्ध विश्वास का त्याग करना यह समता बुद्धि का सत् विचार है।

४. ईश्वर स्मरण ज्ञान, ध्यान, सत्संग, परोपकार को मुख्य धर्म जान कर हर वक्त धारण करना यह सहज योग समता का नित्य नियम है।

५. हर एक मजहब के रहनुमा की इज़्ज़त करनी और उनके शुभ

जीवन का आदर्श धारण करना और अपनी आत्मिक उन्नति करनी यह समता का सत्संग है।

६. दुन्यावी रिवाज यानी शादी व मौत की रीति बिलकुल साधारण तरीके से अमल में लानी चाहिये क्योंकि यह स्वार्थ कर्म का ज़्यादा प्रपंच परमार्थ यानी ईश्वरीय विश्वास को नाश कर देता है जिससे समता बुद्धि मलीन हो जाती है और जीव परम दुखी होता है।

७. जितने भी गमी खुशी के कार्ज करने पड़ें उन सब में पहिले ईश्वर की महिमा का उच्चारण करना लाज़मी है और किसी देवता की पूजा कोई फ़ायदा नहीं पहुँचाती। जीव का ताल्लुक ईश्वर के साथ है ईश्वर ही रक्षक और आधार है। इस वास्ते उस परम शक्ति का भरोसा रखना चाहिये उसी के निमित्त सब कर्म करने लाज़मी हैं।

(ख) समता साधन सार

(दूसरा उपदेश)

१. इख्लाकी ज़िन्दगी का सुधार (२) रूहानी ज़िन्दगी का सुधार (३) देश का सुधार ।

इख़्लाकी ज़िन्दगी के सुधार के नियम

१. सादगी
२. सत्य
३. सेवा
४. सत्संग
५. सत्स्मरण

रूहानी ज़िन्दगी के सुधार के नियम

१. सत पुरुषों के जीवन का सही विचार २. निष्काम ईश्वर भक्ति ३. निष्काम गुरु भक्ति ४. निष्कामदेश भक्ति ।

देश सुधार के नियम

१. ख्यालात की एकता २. विचार की एकता ३. कोशिश की एकता ४. सब मज़हबों में एकता । सत्संग धर्म नीति और राजनीति को कायम करने वाला है इस वास्ते सत्संग को कायम करना लाज़मी है । ५. नुमायशी ज़िन्दगी को बिलकुल त्याग कर देना चाहिये और अमली ज़िन्दगी को धारण करना चाहिये ।

६. देश की जागृति और धर्म की जागृति में तन, मन धन से सेवा करनी लाज़मी है।

७. नुमायश गाहों से क़तई परहेज़ करना चाहिये हर घड़ी अपने आचार को शुद्ध करने की कोशिश करनी चाहिये।

८. हर वक्त ठोस काम धारण करना चाहिये। जमाअत में एकता धर्म प्रचार में हर तरीका से कुर्बानी करनी चाहिये। हर एक मज़हब के रिफ़ार्मर की जिन्दगी का विचार करना चाहिये जिससे तास्सुब (पक्षपात) वाद मुबाद नाश हो जाता है।

९. अपना जीवन सुधार, पर की सेवा, फ़िज़ूलख़र्ची का त्याग, मुनश्शी चीज़ों का त्याग। समता की रोशनी जो हिन्दू धर्म की बुन्याद है हर वक्त हृदय में धारण करनी चाहिये। इससे जीव को लोक और परलोक में शान्ति मिलती है।

(ग) आस्तिक व नास्तिकपन का विचार

(तीसरा उपदेश)

(१) सत स्वरूप का विश्वासी, अभ्यासी होना आस्तिकपन है। इसके अलावा और कोई साधना करनी नास्तिकपन है।

(२) ग्रहों की पूजा, प्रेत व भूत व पितरों की पूजा, आदर्श के बग़ैर मूर्ति की पूजा नास्तिकपन को प्रगट करती हैं यानी ईश्वरीय विश्वास को नाश कर देती है। संशय वहम और भय को प्रगट कर देती है।

(३) जिस पुस्तक में आत्मस्वरूप यानी ब्रह्म शब्द के बग़ैर संशय युक्त और हालात लिखे हों वह पुस्तक भी वहम और भ्रम को देने वाली है।

(४) जिस पुस्तक में प्रकृति यानी शरीर और आत्मा का निर्णय नहीं, आत्मा की उन्नत्ति का विचार भी नहीं इसके अलावा और कई जन्त्र मंत्र लिखे हों वह पुस्तक भी धर्म को नाश करने वाली है और सत् स्वरूप से नास्तिक कर देती है।

(५) जिस पुस्तक में ज्ञानी पुरुषों के चरित्र हों और उपदेश हों वह पुस्तक धर्म को प्रकाश करने वाली है और आस्तिक बनाती है।

(६) जिस धर्मयुक्त पुस्तक का मुतालय (स्वाध्याय) किया जावे विचार और अमल न किया जावे उससे नास्तिक बुद्धि हो जाती है।

(७) आस्तिक नास्तिक होना बुद्धि पर मुनहसिर (अवलिम्बत) न कि जबानी विचारों से अगर बुद्धि आत्म-शक्ति को छोड़ कर और कई

भावों को धारण कर ले यानी ग्रहों, भूत, प्रेत और कई देवी देवताओं की मोतकिद हो जाय वह नास्तिक बुद्धि है यानी हर वक्त भ्रम में गिरफ्तार रहती है।

(८) शरीर और आत्मा का विचार करना और साधन करनी, आत्म विश्वासी होना यह आस्तिकपन है। इस निश्चय से देह के विकारों से छूटकर आत्म स्थिति को प्राप्त होता है।

(९) आत्म-सम्बन्धी जो विचार होवे वह आस्तिक करने वाला है। मादे यानी जड़ की पूजा या साधना नास्तिकपन को देने वाली है।

(१०) आत्मा ही आनन्द है, सत् है सर्व ईश्वर है। घट २ व्याप रहा है। तीन काल सम स्वरूप है। इस वास्ते जीवन शक्ति का विश्वासी होना आस्तिकपन है। इसके बगैर और ताकतों का मोतकिद होना नास्तिकपन है।

(११) असली गुरु वह ही है जो आत्म विश्वास दिखलावे और आत्म सिद्धि का यत्न सिखलावे। असली ज्ञान आत्मा और शरीर का ही है जो सब भ्रम और वहम को नाश करता है इसके बग़ैर सब भ्रम जाल है।

१२. आत्म विचार सम्बन्धी जो पुस्तक और जो सत्संग होवे और जो साधु महात्मा आत्म विचार अभ्यास संयुक्त होवे वह ही धर्म को प्रकाश करने वाले हैं इसके अलावा जो जादू, यन्त्र, मढ़ी मसान और अनेक देवी देवताओं का विचार फैलाते हैं वह सब पाखण्डी खुदगर्ज और धर्म को नाश करने वाले हैं।

१३. जो आत्मा को साक्षी समझ कर सत्कर्म करता है और सब ईश्वर आज्ञा में देखता है वह ही आस्तिक है। जो मान मद को धार कर हर वक्त स्वार्थ में मुस्तगरक रहता है और कई तरीका के मंत्र साधन करता है वह नास्तिक है और पाखण्डी है।

१४· आत्म तत्त्व का जानना असली ज्ञान है और आत्म तत्त्व से मुनकिर होना असली नास्तिकपन है। जो आत्म उन्नति का यत्न करता है वह ही आस्तिक है। जो पुरुषार्थ को छोड़ कर देवी देवताओं के आश्रय रहता है वह ही नास्तिक और अज्ञानी है।

१५· हर एक महापुरुष की ज़िन्दगी का आदर्श धारण करना आस्तिकपन को देने वाला है और आदर्श को छोड़ कर जो महज़ वजूद की पूजा करता है वह ही नास्तिक है और कभी माया के चक्र से छूट नहीं सकता।

१६· आत्मपूजा, आत्मज्ञान, आत्म ध्यान को धारण करना असली आस्तिकपन है इसके अलावा और धारणा करनी अन्ध विश्वास है और मन्द गति के देने वाला है।

(घ) आत्मिक उन्नति धर्म का यथार्थ स्वरूप

(चौथा उपदेश)

आत्मिक उन्नति के मुख्य साधन

१. सादगी

२. सत्य

३. सेवा

४. सत्संग

५. सत् सिमरण

पहला साधन

"सादगी"

बचन १. इस दुनियाँ में यह जीव शान्ति की ख़ातिर आया है और हर वक्त शान्ति की तलाश कर रहा है। मगर अज्ञान वश होकर अपनी इन्द्रियों का गुलाम होकर बजाय शान्ति के अति ही संकट को प्राप्त होता है। इस तरह हर एक मानुषमात्र पशु आदिक इस गिरफ़्तारी में बेज़ार और बेकार हैं और अपनी झूठी कामना को पूर्ण करने की ख़ातिर रात-दिन लगे रहते हैं। आख़िर फिर दुनिया से रंज ही ले कर जाते हैं। यह खेल ईश्वर का आश्चर्य है।

बचन २. इस दुनियाँ के आश्चर्य खेल को देख कर बड़े-बड़े दाने बीने लाचार हो रहे हैं। किसी वक्त शान्ति को न पा सकते हैं और न ही शान्ति का कोई मुकाम दिखाई देता है। जिस चीज़ से अधिक प्यार किया जाता है उसकी जुदाई में वह अधिक दुख पाता है। मगर बावजूद सब कुछ जानने के भी फिर भी अपनी ग़फ़लत से छूट नहीं सकता और इस दुनियाँ से अशान्त होकर जाता है।

बचन ३. इस ही बड़े अज़ाब को महसूस करके बुद्धिमान पुरुषों ने असली खुशी की तलाश की। जिसको हासिल करके हमेशा के वास्ते शान्ति को प्राप्त हो गये और लोगों को भी अबदी खुशी का रास्ता दिखलाया। उसी का नाम धर्म या ईमान है।

बचन ४. उस धर्म यानी असली खुशी का साधन बहुत से तरीकों में गुणी पुरुषों ने ब्यान किया है। मगर सबसे मुख्य साधन ऊपर के इन पाँच नियमों को धारण करना आसान और जल्दी कामयाबी

देने वाला है। जब तक इन पाँच नियमों को धारण न किया जावे कभी भी असली शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता ख्वाहे बड़ी से बड़ी कोशिश क्यों न करे।

बचन ५. बड़ी से बड़ी भक्ति या बन्दगी यह है, कि अपनी ख़्वाहिशों पर काबू पाना। बड़ी से बड़ी नादानी और मूर्खता है कि ख़्वाहिशों का गुलाम बनना, यह एक बड़ा अज़ाब इस जीव को लगा हुआ है जिससे हर वक्त किसी चीज़ के प्राप्त होने पर तथा वियोग होने पर भी मुसीबत में गिरफ़्तार रहता है। इसी को आवागवन यानी भरमना कहते हैं।

बचन ६. जब तक इस अपनी कमी को पूरा न करले यानी पूर्ण संतोष को न प्राप्त हो जावे तब तक कर्म जाल से रिहाई नहीं मिलती। इस ही कैद से रिहाई पाने का नाम मुक्ति या ईश्वर प्राप्ति है।

बचन ७. सबसे बड़ा अज़ाब जीव को यह ही है कि झूठ चीज़ को सत्य मान कर उसके भोग में सुख जानता है। मगर वह चीज नाश हो जाती है उस वक्त वह सुख दुख स्वरूप हो जाता है। इस ही सिलसिले में हरएक दिन रात लगा रहता है मगर शाँति को प्राप्त नहीं होता उल्टा कई नई ख़्वाहिशों की ग़ुलामी में आकर दुख पाता है।

बचन ८. इस माया के जाल से छूटने के वास्ते यह मानुष की ज़िन्दगी है जिसमें अनेक ज़रिये अख्तयार करके अपनी रूह को पाक करके अपने असली मकाम को हासिल कर लेवे। जिसने मानुष की ज़िन्दगी धारण करके अपने इस रोग को मुखलिसी की खातिर यत्न नहीं किया वह महज़ पशु और नादान है। आखिर अपनी गलती का एवज़ाना पाने में बहुत पछतायगा।

बचन ९. पहले झूठी चीज को सत मान लेना और इसकी महब्बत को धारन करना फिर उसकी ख़्वाहिश की गिरफ़्तारी में आ जाना। फिर उसकी प्राप्ति पर खुशी और ग़मी को महसूस करना यह

ही एक बड़ी कैद है जिसमें हर वक्त भयभीत रहता है। तमाम दुनियाँ इस मजबूरी में जकड़ी हुई है और अन्दर से अति लाचार हो रही है।

बचन १०. वह ही असली मानुष है जिसने अपनी रूह का इलाज किया और इस अज़ाब से मुखलिसी हासिल की उस की ज़िन्दगी सूर्य से भी ज़्यादा मुनव्वर हुई है।

बचन ११.असली खुशी जो हमेशा दायम कायम रहने वाली है और तमाम जरूरतों से बालातर है वह आत्म शक्ति यानी संसार की जो ज़िन्दगी है हर एक कालिब के अन्दर चमक रही है। ज़र्रा २ उसकी ताकत से खड़ा है इसी को मरकज़ या मसदर ईश्वरीय शक्ति कहा गया है उसी ताकत को हासिल करने से इस गहरे अज़ाब से जीव शाँत होता है।

बचन १२. अन्दर तो सबके वह ताकत मौजूद है मगर जीव उसको पहचान नहीं सकता क्योंकि अपनी ख़्वाहिशों की गिरफ़्तारी इसको इधर-उधर भरमाती रहती है। जिस वक्त से अपनी ख़्वाहिशों परकाबू पा लेता है उस वक्त से अपने अन्दर सत आनन्द को प्राप्त हो जाता है फिर तमाम कैदों से रिहाई पा जाता है। उस हालत को परम धाम या मेराज कहा गया है सब का आखिरी अन्जाम वह ही जगह है यानी अपना सत् स्वरूप जो हमेशा की खुशी और पूर्ण है हर एक मानुष को उसकी तलाश करनी चाहिये। वह ही इस ज़िन्दगी का फल है अगर इसको हासिल नहीं किया तो अन्त को निराश ही दुनियाँ से चला जायगा।

बचन १३. असली कोशिश को धारन करना, असलियत की तहकीकात करनी इस मानुष ज़िन्दगी का मिशन है। सब को अपनी आकबत का विचार करना चाहिये और इस अज़ाब से छूटने की कोशिश करनी चाहिये।

बचन १४. ख़्वाहिशों से एक दम कोई भी निजात हासिल नहीं

कर सकता इस वास्ते पहले ग़ैर जरूरी ख़्वाहिशों पर काबू पाना चाहिये ग़ैर ज़रूरी ख़्वाहिशें जीव को अति क्लेश देने वाली हैं। ग़ैर ज़रूरी ख़्वाहिशों पर काबू पाने से निजात के असबाब पैदा हो जाते हैं यानी नेक कर्म आदि परम गुणों को धारन करने की कोशिश करता है। ज्यूँ २ नेक कर्म करता है त्यूँ २ ख़्वाहिश की आग कम होती जाती है और हालते बेख़्वाहिशी यानी प्रेम की ज़िन्दगी प्राप्त होती है।

बचन १५. ग़ैर जरूरी ख़्वाहिशों पर काबू पाने के बड़े ज़बरदस्त नियम सिर्फ़ यह ही हैं। सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग, सत् स्मरण वग़ैरा। इनकी धारणा से जीव अपने आप पर काबू पाने की शक्ति पैदा कर लेता है यह ही हालत मानुष ज़िन्दगी का सार है।

बचन १६. जो आदमी इन नियमों से उलट चलता है वह अपनी नाजायज़ ख़्वाहिशों में आकर हर जगह ज़िल्लत व ख़्वारी पाता है।

बचन १७. सब मजहबों के रहनुमाओं का यह ही मकसद था कि जीव नाशवान संसार में आकर असली खुशी को हासिल कर लेवे मगर उनके पीछे जो चलने वाले हुए उन्होंने सिर्फ़ बादमुबाद को हासिल करना ही सीखा जिस का नतीजा यह हुआ कि दुनियां में अशाँति अधिक हो गई। किसी ही नेक आदमी को इनकी असलियत का पता लगा कि जिस तरह उन बजुर्गों ने नेक अमल धारण करके रहते अबदी हासिल की उसी तरह मुझको कोशिश करके रास्ती की तलाश करनी चाहिये वह ही इन्सान असली मकसद को जानने वाला है। इसके बग़ैर सब जहालत और खुदगर्ज़ी का मुकाम है। असलियत की तहकीकात करना सब का फर्ज है। महज़ बजुर्गों की बजुर्गी से निजात नहीं मिलती जब तक कि अपने अन्दर वह नेक असूल न धारण किये जावें।

बचन १८. सबसे पहला नेक उसूल है सादगी। इस असूल के धारन करने से मानुष बहुत ग़ैर ज़रूरी ख़्वाहिशों पर काबू पा जाता है

और निर्मल बुद्धि से असली खुशी को हासिल करने की कोशिश करता है।

बचन १९. लिबास, खुराक और विचार को सादा करने का नाम सादगी है। इन तीन आदतों की गिरफ़्तारी में यह जीव लाचार रहता है। इस वास्ते सादगी को धारण करके इनसे निजात हासिल करनी चाहिये।

बचन २०. लिबास सादा से प्रेम बढ़ता है आजज़ी आती है। लज्जा और अदब हासिल होता है और थोड़ी आमदनी पर गुज़ारा चल सकता है। ज़रूरतों की ज़्यादती पाप करने की तरफ़ राग़िब करती है। सादगी के धारण से इस अंधकार से छूट जाता है। सादगी ही जीवन है। अय्याशी मृत्यु है। सादगी से मन विचारवान् होता है अपने भले बुरे को अच्छी तरह सोच सकता है। सादगी देवताओं की धारणा है। नुमायशी ज़िन्दगी राक्षसों की धारणा है। बड़ी से बड़ी कोशिश करके सादगी के जीवन को अख़्त्यार करना चाहिये। असली खुशी का राज़ इसमें ही है।

बचन २१. खुराक सादा खाने से सेहत अच्छी रहती है। बुद्धि निर्मल होती है और मन की वासना पर काबू पाने की शक्ति प्रगट होती है। जिसकी खुराक सादा नहीं यानी माँस, शराब और दीगर मुनश्शी चीजों का आदी है वह कभी भी असली खुशी को हासिल नहीं कर सकता।

बचन २२. वह चीज कभी भी खानी नहीं चाहिये जिस से बुद्धि पर बुरा असर पड़े। बुद्धि के बुरे असर के यह मानी हैं कि सत् असत् का विचार न रहे। जो मानुष यह कहते हैं ऐसी चीज़ें खाने से ताकत बढ़ती है वह महज़ नादान हैं। सबसे बड़ी ताकत इस वजूद में बुद्धि यानी अकल की है। अगर अकल पर छाया ग़फ़लत की आ जाय तो कोई भी वजूद का पुरज़ा सही काम नहीं कर सकता।

बचन २३. सब विद्या की सार और अनेक बज़ुर्गों की हिदायत यह ही है कि अपनी बुद्धि को निर्मल करो, जिससे बड़े ऐश्वर्य को पा सकोगे।

बचन २४. जिसकी खुराक सादा नहीं वह कभी भी सच्चाई को हासिल नहीं कर सकता। मांस, शराब और मुनश्शी चीज़ों के इस्तेमाल करने से गर्व और गुस्सा ज्यादा बढ़ जाता है। खुदगर्ज़ी में आकर बड़े से बड़े अन्याचार को धारण कर लेता है।

बचन २५. चतुराई का नाम अक्लमन्दी नहीं है। जो कि ऐसी खुराक खाने वालों में अक्सर होती है। यह जहालत और मनमुखता है। अक्लमन्दी हक़ और नाहक की पहचान का नाम है जिससे जीव को असली खुशी मिलती है।

बचन २६. खुराक और लिबास का असर मन पर बहुत पड़ता है इस वास्ते इनकी सादगी निहायत ज़रूरी है जो कि असली खुशी देती है।

बचन २७. विचार की सादगी यह है कि हर एक से निष्कपट होकर विचार करना दिल में बुग्ज़ न रखना साधारण गुफ़्तगू करनी जिसमें पक्षपात न होवे और बचन सोच करके उच्चारण करना इससे अपना मन शांति पकड़ता है और दूसरों को भी सुख मिलता है और बहुत अज़ाबों से रिहाई मिलती है।

बचन २८. सादगी का नियम असली ज़िन्दगी की बुनियाद है इस वास्ते अगर कोई अपने गुनाहों से मुखलसी चाहे या राहते अबदी की तलाश करे। पहले सादगी को दृढ़ विश्वास करके धारन करे। क्योंकि सब पापों की जड़ नुमायशी ज़िन्दगी है। इस नुमायशी ज़िन्दगी से आचार विचार बिलकुल नष्ट हो जाता है और मनुष्य के अन्दर घोर अन्धकार छा जाता है। जिससे फिर किसी सूरत में भी अपने मन पर काबू नहीं पा सकता।

बचन २९. असली खुशी और प्रेम का मरकज़ सादगी ही है। जिसने दिलोजान से धारण की वह सब पापों से छूटकर असली खुशी को

प्राप्त हुआ। और अपने असली अंजाम का मालिक बना। असली धर्म की बुनियाद यह सादगी ही है।

बचन ३०. जितनी खाने और पीने की गिरफ़्तारी में रहेगा उतना ही अशाँति को पायेगा। इस वास्ते यह विचार करना चाहिये कि आला से आला खाना खाने से भूख का अज़ाब तो दूर नहीं होता और न ही आला से आला पोशाकें पहनने से दिल की ख़्वाहिश पूरी होती है। आखिर भूखा और नग्न ही जाता है। इसलिये ज़िन्दगी में ही अपनी आदत पर काबू पाना चाहिये। सादगी को धारण करना चाहिये जिस से सब पापों से छूटकर असली शान्ति को प्राप्त हो सके।

बचन ३१. ख़्वाहिशात रूपी अग्न में यह भोग घृत समान हैं। ज्यों २ भोग भोगता है ख़्वाहिश की आग में लाचार होता जाता है बिना विचार के कभी भी इस अज़ाब से छूट नहीं सकता।

बचन ३२. अपनी बुद्धि को कायम करके नेक विचार धारन करना चाहिये जिससे बेज़ारी और बेकरारी से निजात मिले। यह ही सामान इस ज़िन्दगी को पवित्र करने वाला है। जो विचार से हीन है वह कभी भी शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता।

दूसरा साधन

"सत्य"

बचन ३३. सत के मानी यह हैं जो चीज हमेशा दायम कायम है उसकी तलाश करने की कोशिश करनी और उस के मुताबिक अपने जीवन को बनाना। हर एक बात को सही विचार करना, हर एक बात को सही अमल में लाना यही सत् का स्वरूप है। जब तक सत् की तहकीकात न की जावे तब तक कभी भी ख़्वाहिशों से अबूर नहीं पा सकता।

बचन ३४. अपना बोल तोल हर पहलू में सच्चा रखना यह सत् का स्वरूप है। जो दिल में बात होवे वह ज़बान से कहनी यह सत् का स्वरूप है सचाई की ख़ातिर हर लमह अपने पापों से मुखलसी हासिल करनी यह सत् का स्वरूप है। सत् ही साधन है सत् ही धर्म है। सत् ही शाँति है इस वास्ते सत्य की तहकीकात करके अमल में लाना ही असली बन्दगी और रयाज़त है। जब तक सच्चाई की तलाश न करे तब तक कभी भी इस दुनियाँ के जाल से रिहाई नहीं पा सकता।

बचन ३५. सब संसार मिथ्या है। सत् एक ईश्वर है। इस विश्वास को धारन करना सत् की असली पूजा है। नाशवान् दुनियाँ के दुख से सचाई की तलाश करने से ही निजात. मिलती है। जो आदमी सत्यवादी नहीं वह अपनी अक्ल का चोर और मक्कार है वह कभी भी राहत को हासिल नहीं कर सकता।

बचन ३६. सत् के साधन से निडरता और प्रेम हासिल होता है। सब ज़िन्दगी का मेराज (ध्येय) सत् की तलाश है। सत् का विचार, सत् की कोशिश यह ही है। जिसके अन्दर ऐसे जज़बात नहीं आए वह हमेशा के वास्ते दुनियाँ में निराश रहता है सत् का साधन ही मूल धर्म है।

बचन ३७. बड़ी से बड़ी कोशिश करके सत् विश्वासी होना चाहिये। जो आदमी सत् का धारन करने वाला है वह ही बड़ा तपीश्वर और ज्ञानी है। सत् का साधन बहुत मुश्किल है। जब तक अपनी अक्ल पापों की गिरफ़्तारी में है तब तक कभी भी सत् के स्वरूप को अनुभव नहीं कर सकता।

बचन ३८. सत् के धारने से शील, सन्तोष, उदारता, प्रेम और समता प्राप्त होती है जो अति ही विकारों को नाश करने वाली है यह ही गुण मुक्ति के देने वाले हैं।

बचन ३९. जिसके अन्दर सत् विश्वास नहीं है वह कपट, मान, मद, ईर्षा, द्वेष, लोभ और मोह की अग्नि में जलता रहता है। यह ही हालत असली जहालत है जिस से जीव बहुत क्लेशवान् रहता है।

बचन ४०. बड़ी कोशिश करके सत् धारण करना चाहिये। किसी लमह भी अपनी आदत की गुमराही में नहीं आना चाहिये। यह ही असली ख़ुशी है और सब धर्म की जड़ है।

बचन ४१. अपने स्वभाव पर अटल रहना चाहिये। ख़ुदग़र्ज़ी के दामन में आकर फिसलना नहीं चाहिये। दिल की स्याही तब ही दूर हो सकती है। सब विद्या की सार सत् ही है। अगर तुम सत् को धारण कर लो और हर घड़ी सत् की कोशिश करो तब तुम फ़रिश्ता बनो।

बचन ४२. ग़ैर ज़रूरी ख़्वाहिशों से अबूर पा जाता है जो सत् का आदि है। और वह ही हर वक्त अपने दिल का मालिक है और

वह ही अपने अन्दर अपनी ग़फ़लत पर पश्चाताप करता है और वह ही बुद्धिमान पुरुष असली शान्ति को पा सकेगा।

बचन ४३. सत् ही ज़िन्दगी है, सत् ही ऐश्वर्य है। सत् ही ज्ञान है, सत् ही ध्यान है, सत् ही मेराज (ध्येय) है, बड़ी से बड़ी कोशिश करके सत् के मैदान में चलो रास्ते में राहज़न बड़े हैं जो एक दम गुमराह करने वाले हैं।

बचन ४४. इस दुनियाँ में असली ख़ुशी का मुकाम ही सत् का आचरण है जो इस सत्की तलाश में रहता है वह तमाम संशयों से मुक्ति हासिल करता है और अपने असली जीवन को पा लेता है।

बचन ४५. गुरुओं की हिदायत, ग्रन्थों का विचार, अवतारों और पैग़म्बरों का मोजज़ा यानी सिद्धि सत् ही है। इस वास्ते इस धारणा को धारण करना ही असली धर्म है।

बचन ४६. सत् ही की खोज असली कोशिश है। सत् का विचार ही असली खुशी और आनन्द है। सत् का उच्चारण करना ही असली जीत है। जो सत् विश्वास और सत् विचार, सत् की कोशिश और सत् का बोल तोल धारण करता है वह ही अजीत पुरुष दुनियाँ में माना गया है। सब दुनिताँ उसकी ख़िदमत गुज़ार है और वह ही ईश्वर परस्त और हक परस्त है। अपनी ज़िन्दगी को ज़िन्दा करना यह ही सत् का साधन है।

बचन ४७. सब यत्न मानुष के अकार्थ हैं जिसके मन में सत् विश्वास, सत् की कोशिश, सत् का विचार नहीं आया। तप, जप, पुण्य दान और कठिन से कठिन तपस्या का सार यह ही है कि मन में सत् भावना पैदा हो जावे और हर वक्त सत् के साधन में मग्न रहे। यह ही खुशी है और निजात है।

बचन ४८. ज्यों २ सत् की तलाश करता है त्यों २ झूठ का अभाव दूर होता जाता है। संशय शोक सब रफ़ा हो जाते हैं।

मुस्तकिल मिज़ाजी पैदा हो जाती है। उस वक्त कोशिश करके अपने मन को काबू कर लेता है। वह ही कामिल बज़ुर्ग है उसने ही दुनियाँ का इम्तिहान पास किया है और आनन्द लेकर दुनियाँ से चला है।

बचन ४६. सत् की तलाश किसी खास मज़हब की पाबन्द नहीं है। सत् का सबक अन्दर से कुदरत खुद दे रही है मगर जहालत से पता नहीं लगता। जिसको मौत का खौफ है वह ही सत् का साधन कर सकता है। सब मज़हबों का मिशन सत् की तलाश है। इस वास्ते बादमुबाद को दूर करके सच्चाई की तलाश करनी चाहिये।

बचन ५०. हर वक्त अपने ज़मीर (अन्तःकरण) को सचाई में रागिब रखना चाहिये। किसी वक्त भी असत भावना पैदा न होने देवें। तब सत् का असली जज़बा मिलता है। मन और इन्द्रियाँ हर वक्त झूठ की तरफ गिरफ़्तार करने वाली हैं। इस वास्ते निर्मल बुद्धि, निर्मल विश्वास से इन विकारों पर काबू पाकर सत् का आदी हो सकता है वह ही शूर वीर है जिसने अपनी आदत को काबू करके सत् का निध्यास किया।

बचन ५१. खुदगर्ज़ी यानी स्वार्थ बुद्धि को छोड़ कर परहित और उपकार में जो विचरता है वह ही सत् के असली आदर्श को प्राप्त हो सकता है। ऐसा नेक अमल करते करते उसके अन्दर यकसूई आ जाती है। यकसूई से वह असली आनन्द को अनुभव कर लेता है जो असली खुशी है।

बचन ५२. जिसने दुनियां को नापायदार जाना है यकीन करके और अपनी ग़फ़लत को छोड़ने की कोशिश हर वक्त करता है। वह ही सत् का मुतलाशी है एक दिन वह असली खुशी को हासिल कर लेवेगा।

बचन ५३. जो हमेशा मन की दुर्मति को विचार करता है और अन्दर से बड़ा दुखी होता है बुरे कर्म से वह सच्चाई को हासिल कर सकता है। वह ही नेक नीयत और जिज्ञासु है।

बचन ५४. सत् का साधन कठिन है मगर असली खुशी इसी में

है। इसलिये जो चीज अंजाम में सुखदाई होवे उसको कोशिश करके धारण करना चाहिये। सब जिन्दगी का सार साधन यह ही है कि मन सत् विश्वासी और सत् कर्मी होवे। अगर यह मुद्दा हासिल नहीं किया तो इसकी ज़िन्दगी सब अकार्थ और दुनियां के झगड़े में ही गुज़र गई आखिर सब उम्मीदों से निराश चला जाता है।

बचन ५५. सच्चे धर्म का जानने वाला सच्चा पैरोकार वह ही अपने बुजुर्गों का है जिसने अपने मन को सचाई की तरफ़ लगाया है वह एक दिन अपने पूर्ण आनन्द को प्राप्त हो जायगा। सत् की धारना ही ज़िन्दगी है। हर वक्त कोशिश करो सत् के साधन की। मानुष ज़िन्दगी में यह ही कोशिश निजात के देने वाली है।

बचन ५६. सब दुनियाँ की ताकतें सत् की आधार हैं। अपने २ उसूल पर पूर्ण कारबन्द हैं। इस वास्ते मानुष ज़िन्दगी को धारन करके ऐसा ही जीवन इख्त्यार करना चाहिये यानी अपने सत् नियमों के परायण रहना चाहिये यह ही साधन कल्याण के देने वाला है। दुनियाँ अज़ाब का घर है। कोशिश करके अपने मन के असली मनोरथ को पूर्ण पायें और बुजुर्गों की असली तहकीकात का नतीजा हासिल करें।

तीसरा साधन

"सेवा"

बचन ५७. यह परम साधन ईश्वर भक्ति का प्रधान नियम है जिसके धारण करने से जल्द ही सब विकारों से छूट कर परमानन्द स्वरूप में लीन हो जाता है स्वार्थ बुद्धि यानी खुदगर्ज़ी एक बड़ा भारी अज़ाब इस जीव को है जिस से हर वक्त मोह की अग्न में जलता रहता है और अति ही कामनाओं को धारण करके बड़े से बड़े उपद्रव करता है यानी घोर पाप करता है यह ही दशा नर्क का स्वरूप है। इस अन्धकार से छूटने के वास्ते सेवा रूपी दीपक अत्यन्त सुखदाई है। जो गुणी पुरुष इस नियम के धारन करने वाला है वह स्वार्थ अन्धकार से छूट कर परमार्थ आनन्द को प्राप्त होता है।

बचन ५८. जीव को हर वक्त तीन प्रकार की कामना बनी रहती है यानी धन, तन, मन के भोगों में गिरफ्तार रहता है किसी सूरत भी शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता ख्वाहे बड़े से बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त करके भोग करे। यह मोह में दिन रात मग्न रहता है और अपने जीवन को पापयुक्त करके नाश कर देता है।

बचन ५९. इस तीन प्रकार की क़ैद से छूटने के वास्ते सेवा रूपी साधन अधिक यथार्थ है। सेवा के धारण करने से इन सब पाबन्दियों से छूटकर ईश्वर परायण हो जाता है। वह ही असली खुशी है।

बचन ६०. धन की आशा दानी पुरुष के अन्दर से नाश हो जाती है यानी प्रेम और सेवा में तृप्त हो जाता है। पर की सेवा परम त्याग और भक्ति है। इस नियम के धारण करने से सब संकटों से छूट जाता है।

बचन ६१. निष्काम सेवा ही सेवा का असली स्वरूप है। कामना युक्त जो सेवा है वह अन्धकार को बढ़ाने वाली है यानी मोह और मान की गिरफ़्तारी देने वाली है। इस खोटी धारना से कभी जीव का भला नहीं हो सकता जब तक निष्काम सेवा न धारण करे।

बचन ६२. निष्काम सेवा मानुष जिन्दगी का मेराज है। जिस तरह पवन, पानी, धरती, सूर्य और चन्द्रमाँ अपने फ़र्ज को जानकर हर वक्त सेवा में मसरूफ़ रहते हैं इसी तरह मानुष को भी लाज़मी है कि अपना फ़र्ज जान कर दूसरे की सेवा करे। तब ईश्वर के हुक्म को मानने वाला हुआ। इस यथार्थ कल्याणकारी साधन को धारण करके जल्द ही परमानन्द को प्राप्त हो जाता है।

बचन ६३. धन, मन, तन तीनों को सेवा के मार्ग में लगाने से जीव सब विकारों से छूटकर अविनाशी खुशी को हासिल कर लेता है इस वास्ते सेवा ही परम धर्म और कल्याण का मार्ग है। जो आदमी सेवा का भाव नहीं रखता वह राक्षस बुद्धि अपनी कामना की खातिर हर वक्त अशाँत रहता है। यानी लोभ, मोह, मान, मद ईर्षा आदि अवगुणों में हर वक्त जलता है। यह ही जीवन घोर नर्क है। किसी पलक भी अपने मन में उदारता नहीं पाता। यह स्वार्थ अंधकार ही काल स्वरूप है। बार २ जीव को असत् भोगों में भरमाता है। इससे छूटने के वास्ते सेवा रूपी खड्ग अति सुखदाई है। वह मानुष कभी असली खुशी हासिल नहीं कर सकता जिसके अन्दर पर का हित और पर की सेवा नहीं।

बचन (६४) निष्काम भावना से ज्यों २ अपने तन, मन, धन को पर की सेवा में अर्पण करता है अधिक से अधिक शाँति को प्राप्त होता है यानी शील, सन्तोष, क्षमा विवेक विश्वास आदि परम गुण अन्तःकर्ण में प्रगट होते हैं जो सब तापों को नाश करके अखण्ड शाँति में मिला देते हैं। इसी साधन का नाम असली भक्ति या बन्दगी है।

बचन (६५) मिथ्या कल्पना जो जीव को हर वक्त भरमाती है यानी तन, मन, धन की इच्छा में गिरासती है इस निष्काम सेवा के साधन से यह सब विकार नाश हो जाता है और जीव ईश्वर परायण होकर अविनाशी सुख को प्राप्त हो जाता है यह ही मार्ग कल्याण का है।

बचन (६६) जब तक सेवा को धारन न करे तब तक ममता का नाश नहीं होता जो जन्म-मरण का कारण है। निर्मल बुद्धि से अपने धन और मन को पर की सेवा में अर्पण करे और अंतर से निर्मान भाव को धारण करे तब ममता की फाँसी नाश हो जाती है और समता बुद्धि मोक्ष स्वरूप प्रगट होती है उस वक्त जीव अपनी सब कामनाओं पर काबू पा जाता है और नित स्वरूप में स्थित हो जाता है इसका नाम मोक्ष या नित्यानन्द है।

बचन (६७) मन की कामनायें तब तक कभी भी नाश नहीं होतीं जब तक अपने अन्दर ममता यानी खुदग़र्ज़ी का अज़ाब धार रखा है और न ही असली धर्म को पहचान सकता है। खुदग़र्ज़ यानी स्वाथ बुद्धि वाले का न तो धर्म और न उसका कोई एतबार है। वह कपटी और फ़रेबी अपने दाव में अपने सुख की खातिर सब को फंसाता है यह ही भावना राक्षसों का जीवन है और हर वक्त तृष्णा की अग्न में जलता रहता है आखिर इस दुनियाँ से बहुत संकट लेकर जाता है।

बचन ६८. मन को अगर सेवा की तरफ़ न लगाया जावे तो वह खुदग़र्ज़ी में गिरफ़्तार हो जाता है यानी मन का काम है कुछ न कुछ करते रहना अगर धर्म की तरफ़ न लगाया जावे तो अधर्म को तो ज़रूर ही धारण कर लेवेगा। यह निश्चय कर लेवें।

बचन (६९)-हर वक्त अपने मन को सत् धर्म की तरफ़ लगाना चाहिये जिससे असली शान्ति को प्राप्त हो जावे और हमेशा की जलन से रिहाई पावे। मानुष ज़िन्दगी का सार निधान है जो मन को काबू

करके मन धर्म में लगाया जावे इस यत्न से अन्त को परम सुख प्राप्त हो जाता है फिर किसी संकट में गिरफ्तार नहीं होता।

बचन (७०) अपने धन को यथार्थ अधिकारी की सेवा में अर्पण करना चाहिये। अपने तन को दुखी, दीन, अनाथ और लोक सेवा में लगाना चाहिये। अपने मन को काबू करके ईश्वर के चर्णों में जोड़ना चाहिये। ऐसी साधना करते २ सब विकारों से छूटकर सत्यानन्द को प्राप्त हो जाता है यानी ईश्वर स्वरूप में लीन हो जाता है।

बचन (७१) धन को जो बुरे आचार में खर्च करता है और तन को जो बुरे कर्मों में लगाता है और मन को स्वार्थ की खातिर लगाये रखता है वह ही चाण्डाल का स्वरूप जानना चाहिये। हर वक्त पाप कर्म में बांधा हुआ अपनी ज़िन्दगी को नाश कर देता है। यह ही माया का प्रचण्ड स्वरूप है। बड़ी कोशिश करके अपने मन को इन विकारों से काबू रखना चाहिये जिससे सब तापों से खुलासी मिले।

बचन (७२) धन संचित करने की जो आशा और तन का मान और सुन्दरताई, मन का अति वासना में गिरफ्तार रहना यह ही घोर जाल है जिससे जीव एक पलक भी रिहा नहीं हो सकता। बड़ी से बड़ी सम्पदा मान भोग प्राप्त कर भी लेवे तो भी हर वक्त तृषावन्त रहता है यानी एक पलक का धैर्य नहीं पाता। अज्ञान जो जीव को हर वक्त अशान्ति का कारण है इसको निष्काम सेवा के शस्त्र से काटना चाहिये तब ही अखण्ड शान्ति को प्राप्त हो सकता है।

बचन (७३) जो हर वक्त दूसरे की भलाई चाहता है और अपने तन मन धन को त्यागने से ज़रा भी परवाह नहीं करता वह ही असली त्यागी और दानी है और मार्ग धर्म का उसने ही निर्मल जाना है। दूसरे की सेवा से अपना पाप नाश होता है इस वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश करके सेवा का आदर्श धारण करना चाहिये। पाप विकार से तब ही छुटकारा हो सकता है जब दृढ़ निश्चय से सेवा के मार्ग में लवलीन होवे।

बचन (७४) सेवादार के अन्दर अधिक गुण प्रगट होते हैं। यानी प्रेम, एकता, निर्मानता, त्याग, वैराग्य, शील सन्तोष आदि धर्म का यथार्थ स्वरूप प्रकाश करता है। यह ही रहनी सत् पुरुषों की है। जिसने ऐसी धारना को प्राप्त कर लिया उसने लोक-परलोक दोनों को जीत लिया। दुर्लभ उसका जीवन लोगों के वास्ते आदर्श बन गया।

बचन ७५. जो अपनी खुलासी चाहे, वह सच्चे धर्म ईमान का मुतलाशी होवे वह सेवा मार्ग को धारण करे सब सुखों की सार और बजुर्गों का जीवन सेवा ही है।

बचन ७६. अपनी ग़फ़लत से तब ही छूट सकता है जब अपने आप में त्याग करने की शक्ति धारन करे। अज्ञान में आकर जीव ने मिथ्या कल्पना और भोग वासना का भण्डार जो शरीर है अपना स्वरूप मान लिया है। इसी ग़फ़लत में हर वक्त दुखी और भयभीत रहता है। इस अज्ञान से छूटने के वास्ते परोपकार रूपी मार्ग सहज है। यानी शरीर की सब कामना दूसरे के अर्पण करता जावे और अपने अन्तर विषय निष्काम चित्त होता जावे इस निश्चय से वह नित्य स्वरूप और परमानन्द को पा लेता है।

बचन ७७. इस कामना की अग्न से छूटने के वास्ते यह ही यथार्थ साधन है कि अपनी ज़रूरतों को त्याग के दूसरों की ज़रूरतें पूर्ण करे। ज्यों २ दूसरे की सेवा में प्रवृत्त होवेगा त्यों २ निष्काम अवस्था को प्राप्त होता जावेगा॥ जिस वक्त अति ही परहित और पर सुख में लीन हो जावेगा उस वक्त नेह कर्म स्वरूप परम शाँति को प्राप्त होवेगा जो असली धाम है। हर वक्त अपनी ज़रूरतों पर काबू पाकर दूसरे की सेवा में स्थित होना चाहिये। इस धारना से ही हालते बेख़्वाहिशी या आनन्द अवस्था प्राप्त होती है।

बचन ७८. जो भी दुनियाँ में गुरु, पीर, अवतार, पैग़म्बर आया है उसका जीवन परोपकारी ही देख लेवें क्योंकि मन पर वह ही काबू

पा सकता है जो अपनी ज़रूरतों पर काबू पा लेवे। जो अपनी ज़रूरतों पर काबू पा लेता है उसको फिर दूसरे की ज़रूरतों में शामिल होना पड़ता है। यह ईश्वर का नियम है। दूसरे की सेवा साधना से मन असली स्वरूप में लीन हो जाता है जिस में कोई विकार नहीं है। उस आनन्द अवस्था को प्राप्त होकर फिर आवागवन से रिहा हो जाता है।

बचन ७९. सेवा के नियम की अधिक महिमा है जिसने धारन की वह सब पापों से छूट कर अविनाशी आनन्द को प्राप्त हो गया। इस वास्ते हर एक प्राणीमात्र को इस परम गुण को धारण करना चाहिये जिससे जीव का कल्यान होवे। जो मन में कामना रख कर सेवा करे वह सेवा के असली फल को प्राप्त नहीं हो सकता। कामना के निवारण की खातिर सेवा का साधन है जो निर्मल रीति से धारण किया जावे। जो कामना राख सेवा करे तो सब अकार्थ है असली फल नहीं प्राप्त हो सकता। यानी सेवा धारण करके भी अपनी ज़रूरतों पर काबू नहीं पा सकता।

बचन ८०. जो दुनियावी भोगों की प्रप्ति की ख़ातिर सेवा करता है वह कोशिश करके अपने आपको जकड़ता है। यह साधन सब दुखदाई बन्धन स्वरूप है इससे पाप की निवृत्ति नहीं होती। सेवा का मार्ग अति गहन है बड़े विचार से इसकी असलीयत को पा सकता है। वैसे देखादेखी जो कुछ भी करता है उसका फल पूर्ण नहीं पा सकता।

बचन ८१. सेवा का पूर्ण स्वरूप यह है अपने फ़र्ज़ करके दुखियों का दुख निवारण करे, मन में कामना बिल्कुल न रक्खे और यह विचार दृढ़ करे कि इस झूट देही से किसी का भला हो जाय तो बेहतर है। इस दुनियाँ से एक दिन चलना ज़रूर है इस वास्ते ज़िन्दगी में ही इस झूट जीवन को पर सेवा में अर्पण कर दिया जावे तो बेहतर है। ऐसे निर्मल विश्वास वाले पुरुष ने सेवा के असली भाव को जाना है और वह ही परमानन्द को प्राप्त होता है।

बचन ८२. जो दुख प्राप्ति में सेवा को धारण करता है या मान मद की खातिर या कोई और कामना धार करके वह असली सेवा धर्म को नहीं पहचान सकता और न ही असली सेवा कर सकता है। यथार्थ सेवा यह ही है कि तन मन धन से किसी का भला करे और मन में निर्मानता धारन करे। और अपनी ज़िन्दगी पर सेवा में अर्पण कर देवे। तब सेवा रूपी परम शन्ति को प्राप्त हो सकता है। वह ही पुरुष ईश्वर ज्ञाता और परम ज्ञानी है उसका जीवन दुर्लभ है। अपनी ज़िन्दगी में ही शाँत स्वरूप को प्राप्त कर लिया और कई जीवों को सुख देकर चला। धन्य वह पुरुष जिसका यह आदर्श है।

—o * o—

चौथा साधन

"सत्संग"

बचन ८३. "सत्संग" यह नियम कल्याण मार्ग का सार साधन है कि मल बुद्धि जीव सत्संग द्वारे परम गति को प्राप्त हो जाता है। इस वास्ते इस नियम का दृढ़ निश्चय से पालन करना चाहिये यानी हर वक्त सत्संग में प्रेम रखना चाहिये। सत्संग ही मुक्त की नौका है सत्संग से ही सत् असत् का निर्णय मिलता है। सत्संग से ही राजनीति कायम है। सत्संग से ही प्रेम और एकता प्राप्त होती है। सत्संग से ही अपने बुरे-भले का विचार हो सकता है। सत्संग से ही परम शाँति को प्राप्त हो सकता है। सत्संग ही असली धन है जो दुख सुख में धैर्य देता है। सत्संग के समान सुगम और कोई कल्याण का साधन नहीं है। सत्संग से ही सब विजय पाता है। सत्संग से ही राजा, प्रजा, देश सुखी रहता है। सत्संग से सब उपद्रव नाश और प्रेम प्रगट होता है। सत्संग की औषधि सब पापों का नाश करने वाली है। सत्संग के बगैर कभी बुद्धि निर्मल नहीं होती। जब तक देह में प्राण हैं, तब तक सत्संग में एकत्र हो करके अपने जीवन का सुधार करना चाहिये।

बचन ८४. सब बड़याई और प्रभुता का कारण सत्संग ही है। सब धर्म की जड़ (मूल) सत्संग ही है। रूहानी गिज़ा सत्संग से ही मिलती है, जिस जगह सत्संग का समाचार नहीं वह जगह और वह मानुष एक दिन तबाह हो जायेंगे।

बचन ८५. मन को रंग सत्संगत मे ही है। जैसी संगत ऐसा भाव प्राप्त करता है। पैदाइश के वक्त जीव बिलकुल अज्ञान स्वरूप होता है। ज्यों २ दुनियाँ की संगत का मिलाप होता है। त्यों २ उसके अन्दर दुनियाँ की जाग्रति होती जाती है। मन की खुराक ही संगत है। जैसी संगत का सम्मेलन हुआ वैसा ही गुण ग्रहण कर लिया। इस वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश करके सत्संग का प्रेमी बनना चाहिये।

बचन ८६. हज़ारों वर्ष की तपस्या इतना फल नहीं देती जितना कि दो घड़ी सत्संग से लाभ होता है। सत्संग में सहज ही सब भेद का विचार समझ आ जाता है। मूर्ख आदमी भी गुणवन्त हो जाता है। सत्संग ही तीर्थ है। सत्संग ही सब ऐश्वर्य की प्राप्ति का कारण है। सत्संग ही जीव के कल्याण का रास्ता दिखाता है। वह मानुष नहीं बल्किः पशु से भी बदतर है जो सत्संग से प्रेम नहीं रखता। दुनियाँ में जितने विषाद प्रगट होते हैं वह सत्संग के न होने से, हर एक आदमी अपना कल्याण का रास्ता भूल कर वैर बदी में आ जाता है।

बचन ८७. सत्संग का यथार्थ स्वरूप समझना चाहिये। वैसे तो हर जगह सत्संग होता ही है मगर अशाँति बढ़ती ही जाती है। इसका कारण यह है कि हर एक आदमी सत्संग की आड़ में स्वार्थ का धर्म पालन करता है जिससे बजाय प्रेम के वैर बुग्ज़ आदि विकार प्रगट हो जाते हैं। यह सत्संग नहीं बल्किः कुसंग है हमेशा दुर्मति को देने वाला है।

बचन ८८. सत्संग वह ही यथार्थ है जिसमें एकत्र बैठकर हर एक गुण अवगुण प्रेमपूर्वक विचार करना और सुनना यानी जिसमें जो भी विचार होवे वह मन में जज़ब हो जावे। अगर ऐसा सत्संग नहीं तो महज़ तमाशगाह बनी हुई है उस जगह जाने से कोई फ़ायदा नहीं। वह नुमायश बुद्धि को मलीन करने वाली है।

बचन ८९. हर एक वाकयात धर्मनीति, राजनीति का विचार

सही तरीका से करना और सही तरीका से सुनना इस धारणा का नाम सत्संग है। सत्संग में बजन्तर और राग इतना विशेष फ़ायदा नहीं देते जितना कि बिल्कुल शाँतमयी होकर विचार सुना जाय। सत्संग के असली मानी यह हैं कि हर एक बात की असलीयत पता में आ जावे आगे मन खुद कोशिश करने लगता है। अगर असलीयत का पता नहीं तो सत्संग क्या सुना और निष्काम कैसे हो सकता है। इस वास्ते सत्संग असली मानों में होवे तब शाँति मिलती है।

बचन ६०. हर एक बजुर्ग की ज़िंदगी के सही हालात यानी वाकयात, हर एक नुक्ता का सही विचार, ईश्वर प्राप्ति का पूर्ण रूप, सत् असत् का यथार्थ जिस जगह निर्णय होवे वह सत्संग है। जो उपदेशक पेट की खातिर बड़े बड़े वाकयात सुनाते हैं और खुद आमिल नहीं और पक्षपात में दिलचस्पी रखते हैं। वह सत्संग धर्म को नष्ट करने वाला है और वह उपदेशक उपदेश नहीं करता बल्कि: अपने पेट का व्योहार कर रहा है। सत्संग और कुसंग पहले विचार कर लेना चाहिये। एकत्र होकर अपनी जिन्दगी का सुधार करना चाहिये यह कल्याण साधन है।

बचन ६१. निर्वैर, निर्विषाद, निर्संशय, निर्मान स्वरूप का जहाँ विचार होवे वह सत्संग है इसके बग़ैर सब बाद मुबाद है। सब मज़हबों की बुनयादी तालीम सत्संग ही है जिससे जायज़ और नाजायज़ का पता लगता है। मगर सही सत्संग न होने से वैर और ईर्षा बढ़ जाती है और देश में उपद्रव प्रगट हो जाता है। जो उपदेशक निर्लोभ होकर सत् विचार की सेवा करता है उसका सत्संग शाँति देने वाला है। इस वास्ते हर पहलू में सही विचार हासिल करके ही असलीयत को प्राप्त कर सकता है।

बचन ६२. सत्संग का पहला असूल इकट्ठा मिलकर बैठना, दूसरा अपनी बेहतरी के जरिये विचार करने, तीसरे असली धर्म का विचार श्रवण करना, तमाम बजुर्गों की ज़िन्दगी के हालात से वाकफ़ी हासिल करनी, चौथे इस संसार में आने का यथार्थ लाभ विचार

करना, पाँचवाँ हर एक विघ्न निवारण करने का भाव पहचानना और सत् धर्म में जाग्रति हासिल करनी, छेवाँ अंध विश्वास से निजात हासिल करनी और सत् विश्वास को धारण करना, सातवें अपने गिरावट के कारण को विचार करना और विषाद से मुखलिसी हासिल करनी। और भी कोटां कोट फ़ायदे हैं इस वास्ते सत्संग का ज़रूरी जीवन धारण करना चाहिये। सत्संग से सही विचार, सही विश्वास, सही कोशिश प्राप्त होती है। सब ज़िन्दगी की तरक्की का दारोमदार सत्संग ही है प्रेम का सागर और पाप की औषधि यह सत्संग ही है। निश्चय करके पधारना चाहिये।

बचन ९३. सत्संग में एकत्र होकर सत् स्वरूप का विचार करना चाहिये। अपने बुरे आचारों को छोड़ना चाहिये। अपने बजुर्गों के नक़्शे क़दम पर चलना चाहिये सत्पुरुषार्थ को धारण करना चाहिये, मानुश ज़िन्दगी के अमली फ़र्ज़ को विचार करना चाहिये यह सब गुण सत्संग से प्राप्त होते हैं। हर वक्त इस साधन को धारण करना चाहिये।

बचन ९४. जिस मानुष में सत्संग का प्रेम नहीं, जिस क़ौम में सत्संग का भाव नहीं कभी भी तरक्की नहीं कर सकती ख्वाह और जितनी भी कोशिश करे। सबसे पहले तरक्की का मिनार सत्संग ही है। कोशिश करके हर एक को सेवा का लाभ उठाना चाहिये। सब देश और धर्म की तरक्की और ज़िन्दगी सत्संग से ही है अपरम अपार महिमा है धारण करके अमली यश को प्राप्त करना चाहिये।

पाँचवाँ साधन
"सत्स्मरण"

वचन ६५. सत्स्मरण! यह नियम इन्सान से देवता बनाने वाला है। नास्तिक से आस्तिक बनाने वाला है। अन्ध विश्वास से शुद्ध विश्वास देने वाला है। जन्म-मरण से मुक्ति के देने वाला है। दुःख और सुख में धैर्य देने वाला है। वैर और बखीली से छुड़ाने वाला है। इस चंचल मन को निश्चल करने वाला है। बुद्धि को सत् धाम देने वाला है। सब इबादत, रयाज़त, भक्ति, योग सत्स्मरण ही है। सब ग्रंथों की सार, सब गुरुओं की हिदायत सब अवतारों का जीवन सत्स्मरण ही है। मानुष ज़िन्दगी को पवित्र करने वाला, कर्म के जाल से छुड़ाने वाला, तृष्णा की आग से ठंडा करने वाला और अविनाशी सुख देने वाला सत्स्मरण ही है। सत् स्मरण असली बुन्याद है और सब नियम इसके मुआवन हैं। इस संसार में आने का यथार्थ लाभ और मानुष ज़िन्दगी की अधिकता सत्स्मरण ही है। मन का आखिरी साधन बन्ध खुलासी करने वाला सत्स्मरण ही है। सत्स्मरण का ही प्रकाश सब ग्रन्थों और बज़ुर्गों में हो रहा है इस वास्ते इस नाशवान संसार में सत्स्मरण को धारण करके कल्याण को हासिल करना चाहिये।

वचन ६६. सब पापों से छुटकारा और ईश्वर की प्राप्ति सत्स्मरण ही है। इस वास्ते हर वक्त यह निर्मल विश्वास धारण करना चाहिये। मन का स्वरूप ही स्मरण है, जिस चीज़ को सिमरता है

उसी का रूप हो जाता है। चूंकि संसारी पदार्थों को सिमर-सिमर के अति दुखी और भयवान रहता है इस वास्ते सत्स्मरण की तरफ़ मन को लगाना चाहिये जिससे झूट दुःख सुख से छूट मिले और अविनाशी सुख प्राप्त हो जावे।

बचन ९७. सत्स्मरण से ही मन की वृत्ति लीन हो जाती है। सत्स्मरण से ही मन का फुरना नाश होता है। सत्स्मरण से ही ईश्वर का प्रकाश प्रगट होता है। इस वास्ते असली यह साधन का मूल धारण करना चाहिये जिससे जल्दी ईश्वर प्राप्ति हो जावे। सत्स्मरण से मन की धारणा शुद्ध होती है। धारणा के शुद्ध होने से ध्यान प्राप्त होता है। ध्यान से एकाग्र चित होकर ईश्वर के आनन्द को अनुभव करता है जो सब सुखों की खान है। ध्यान की दृढ़ता से ईश्वर के स्वरूप में लीन हो जाता है यह ही अवस्था जीवन मुक्त धाम है। सब आनन्द सत्स्मरण से ही मिलता है इस वास्ते कामिल उस्ताद की शिक्षा द्वारा सत्स्मरण को धारण करना चाहिये।

बचन ९८. कर्म में नेह कर्मता सत्स्मरण से ही है। चञ्चल में निश्चलता सत्स्मरण से ही है। परमानन्द स्वरूप सत्स्मरण ही है। मन की सब उपाधियों से मुक्ति देने वाला सत्स्मरण ही है। संतोष रूपी कल्प-वृक्ष को देने वाला सत्स्मरण ही है। सब तीर्थों की सार सत्स्मरण ही है। ज्ञान, विज्ञान, भक्ति, योग, अनुराग, वैराग सत्स्मरण ही है। गुरुओं की महिमा शिष्य का अधिकार सत्स्मरण ही है। सब तापों का नाश करने वाला, सर्वज्ञ स्वरूप नारायण की प्राप्ति देने वाला सत्स्मरण ही है। सत्स्मरण ही परम सिद्धि और प्रकाश है। निश्चल चित्त हो कर सत्स्वरूप का स्मरण करना चाहिये इसी धारणा से सब गुण प्राप्त होते हैं और ममता रूपी सब अन्धकार नाश हो जाता है। जीव अपने साक्षी स्वरूप को सत्स्मरण से ही जान सकता है। इस वास्ते दृढ़ नियम करके सत्स्मरण को धारण करें।

बचन ९९. मन एकाग्र सत्स्मरण से ही होता है इस वास्ते हर घड़ी हर लमह सत्स्मरण को धारण करना चाहिये। सत्स्मरण से ही अनुभव प्रकाश होता है और जिंदगी मौत सब का पूर्ण पता लगता है। नाद स्वरूप घट २ व्यापक अन्तर्यामी परमेश्वर का प्रकाश सत्स्मरण में प्रगट होता है। इस वास्ते दृढ़ चित्त होकर ईश्वर के नाम का स्मरण करना चाहिये।

बचन १००. अगम देश की प्राप्ति यानी हालते गैब का जानना सत्स्मरण से ही होता है। ईश्वर कानून की कुञ्जी सत्स्मरण ही है जिससे तमाम काएनात का ज्ञान हो जाता है। मन के सब विकार जो एक पलक भी शाँत नहीं होने देते वह सत्स्मरण की धारणा से सब लीन हो जाते हैं। अन्तर विषे चान्दना हो जाता है। सुबह व शाम जरूरी कुछ वक्त ईश्वर का स्मरण करना चाहिये। सब पापों से मुख़्लसी मिलती है।

बचन १०१. अगर और ज्यादा तप जप नहीं हो सकता संसारी आदमियों से तो सुबह व शाम दोनों वक्त दृढ़ नियम करके ईश्वर का स्मरण करना लाजमी है। इस ही से सब सिद्धि है। मन बड़ा विकराल है आहिस्ता २ इसको पकड़ कर ईश्वर के स्मरण में लगाना चाहिये। हर एक आदमी के वास्ते लाजमी है अपने मालिक को याद करें, ईश्वर की याद से सब भ्रम जाल का अभाव हो जाता है और अन्तःकरण विषे प्रकाश प्रगट होता है।

बचन १०२. सत्स्मरण जो मन से किया जावे वह श्रेष्ठ है सर्व सिद्धि के देने वाला है। जबान से जाप करने से या बलन्द आवाज़ करके जाप करने से नाम का असर उड़ जाता है। जो अन्तर चित्त करके आराधन किया जावे उसका असर मन में मौजूद रहता है और शाँति देता है। ईश्वर को मालिक जान कर जो प्रेम से स्मरण करता है वह स्मरण योग को प्राप्त होता है। जो दुनियाँ का दिखलावा करता है वह पाखंडी पाप से कभी भी छूट नहीं सकता।

बचन १०३. ईश्वर की प्राप्ति, सब पापों का नाश सत्स्मरण से ही है। एक ईश्वर के नाम की वडयाई सब पुस्तकों में ब्यान की हुई है। जो बातरीका ईश्वर का स्मरण करता है वह ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। आहिस्ता २ ही रंग लगता है। इस वास्ते दृढ़ नियम करके ईश्वर स्मरण में चित्त लगाना चाहिये एक दिन जरूर परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है। त्याग, वैराग्य, सन्यास, योग सब सत् नाम के स्मरण में ही हैं। दुर्मत को नाश करने वाला और समता को प्रकाश करने वाला सतस्मरण ही है। ईश्वर के नाम की अपार वडयाई है जिसको प्राप्त हुई वह ही जान सकता है। ज़बान ब्यान नहीं कर सकती और कलम तहरीर नहीं कर सकती। अति ही आश्चर्य मुकाम है। अपने अमल करके ही हासिल होता है। इस वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश करके निर्भय अवस्था शब्द स्वरूप को प्राप्त होना चाहिये। वह परम धाम और निर्वास पद है। ईश्वर के स्मरण से ही प्राप्त होता है। सब दुनियाँ की सार, सब ज्ञानियों की सार आनन्द का भंडार एक ईश्वर ही है। निर्मल प्रीति करके अपने हृदय में उसका स्मरण करना चाहिये जिससे सब ममता का जाल नाश होवे और अपने निर्मल स्वरूप समता में स्थिति मिले।

बचन १०४. आत्मिक उन्नति जो असली धर्म है इन पाँच मुख्य साधनों के धारण करने से प्राप्त होता है। इस वास्ते हर वक्त अपने मन को इन सत्कर्मों में लगाना चाहिये जिससे अभय पद प्राप्त होवे। सब विद्या की सार, सब योग की सार यह ही है कि मन सब पापों से छूट कर अपने सत्स्वरूप में लीन हो जावे। यह परम सिद्धि इन पाँच साधनों से जल्दी प्राप्त होती है और सब गुणी पुरुषों का जीवन आदर्श यह ही पाँच नियम हैं। दृढ़ निश्चय से इन नियमों को धारण करना चाहिये जिससे दुर्मति का अन्धकार नाश होवे और आत्म तत्व में निश्चलता मिले।

बचन १०५. जिन्दगी को ज़िन्दा करना चाहिये। असली खुशी

की तलाश करनी चाहिये। बेज़ारी से छूटने की कोशिश करनी चाहिये। असलीयत की तहकीकात करनी चाहिये। अपनी ज़िन्दगी को खुशबूदार बनाना चाहिये। प्राणों के होते-होते निर्भय अविनाशी अवस्था को प्राप्त कर लेना चाहिये। इस संसार की गरदिश किसी को कायम नहीं रहने देगी। इस वास्ते गरदिश के चक्र से निकलने की कोशिश करनी चाहिये। पापों का त्याग करना चाहिये और इन सत्साधनों को धारण करना चाहिये। इससे खुशी और प्रसन्नता है। पूर्ण भाग वाला ही सचाई का मुतलाशी और सचाई का यत्न करता है। सचाई को प्राप्त करके सत् ही हो जाता है जैसा कि आनन्द स्वरूप वास्तव में है।

——०——

(ङ) तीर्थ यात्रा सिद्धान्त

१. तीर्थ वह ही जगह होती है जिस जगह कोई ईश्वर का प्यारा पैदा हुआ हो, या रिहाइश की हो, या प्राणों का त्याग किया हो, या जिस जगह धर्मयुद्ध या धर्म की मर्यादा स्थापित की हो, या ईश्वर का तप किया हो।

२. तीर्थों पर जाने से सिर्फ इन हालात के मुताबिक विचार करना गुज़िश्ता ज़माने और गुज़रे हुए बुज़ुर्गों की ज़िन्दगी से कुछ सबक हासिल करना है।

३. इन हालतों के बग़ैर जो जाते हैं वह महज़ वक्त और दौलत को बरबाद करते हैं। तीर्थों के स्नान से कोई फ़ायदा नहीं जब तक ऊपर के हालात के मुताबिक विचार न किया जावे।

४. सबसे बड़ा तीर्थ आत्मस्वरूप है जो घट घट व्याप रहा है। उसके जानने से सब जलन नाश हो जाती है।

५. तीर्थों पर दान करने से कोई फ़ायदा नहीं, मुताबिक साधारण जगह के, जिस जगह दान सेवा आदि शुभगुण बरतते हैं वह जगह ही तीर्थ है।

६. तीर्थों पर पिण्ड भरवाना और गति करवाना सब मन्द निश्चय है। पिण्ड भराने से गति नहीं हो सकती है। अपनी करनी की हर एक जीव सज़ा पाता है। यह ईश्वर की माया का कानून है।

७. जो चीज़ देह और मन को ठंडक देने वाली है वह तीर्थ ही

समझें सम्मेलन सत्संग, सतविचार, सतसेवा, सतस्मरण, गुरु उपदेश और तपोभूमि का स्थान और विद्या के निध्यास की जगह वगैरह तीर्थ रूप जानने चाहियें।

८ प्रचलित तीर्थ पर जाने की कोई खास ज़रूरत नहीं है। सत्कर्म और सत्धर्म का धारण करना ही तीर्थ है।

९ तीर्थयात्रा का इतना फल नहीं जितना कि अपने मन में सत्कर्म सतविश्वास और सत्स्मरण को धारण किया जावे।

१०. जितनी तीर्थ यात्रा की प्रभुता बताई गई है वह सही धर्म के नाशक और धन के लूटने वाले लोगों का प्रचार है।

११. जब तक ईश्वर विश्वास नहीं तब तक कभी भी सत्कम और उपकार को धारण नहीं कर सकता। जब तक कर्म की शुद्धि नहीं कभी भी जीव को शाँति नहीं। ख्वाहे पद २ पर तीर्थों की प्रदक्षिणा करे।

१२. मूल तीर्थ ईश्वर विश्वास है जो आवागवन रूपी घोर जाल से छुड़ाता है।

१३ अपनी बुद्धि का मन विचार करके निर्मल करें तो तुमको जगा २ तीर्थ रूप दिखाई देगा।

१४. धरती की सीनरी और जल का प्रवाह तीर्थ नहीं हो सकता जब तक कि सर्वशक्तिमान ईश्वर की कथा का वहाँ प्रचार न होवे।

१५. सबसे ज्यादा पाखंड अन्याचार धर्म का नाश इस वक्त तीर्थ स्थानों में जोर पकड़ रहा है। बताओ शाँति कहाँ है।

१६. लाजमी यह है कि हर जगह को तीर्थ बना सकते हो अपने नेक विचार और उपकार करके। तीर्थों की ग़ुलामी दुख देने वाली है। ग़ुलामी अपने नेक विचार और उपकार की चाहिये जो तीर्थों का मखज़न है।

१७. ईश्वर विश्वास को धारण करें। सत्कर्म और लोक सेवा का

साधन करें। तमाम दुनियाँ के तीर्थ तुम्हारे चरणों को नमस्कार करेंगे। तू ही श्रेष्ठ आचार को धारण करके अखंड तीर्थ रूप हो जायगा।

१८. मां, बाप, बुजुर्गों तथा हमसाया की प्रेम करके सेवा करनी बड़ी तीर्थ यात्रा है।

—०*०—

(च) दान का सिद्धान्त

१. जो फ़र्ज़ करके दान नहीं करता गर्ज़ को मद्दे नज़र रख कर दान करता है वह निषिद्ध दान है।

२. जो पब्लिक की उन्नति की खातिर दान नहीं करता और देवी-देवताओं को खुश करने की ख़ातिर लक्ष्मी सर्फ़ करता है वह भी निचले दर्जे का दान है।

३. जो नुमायश को मद्दे नज़र रखकर दान करता है वह भी अदना दान है।

४. यथार्थ यह ही है कि फ़र्ज़ करके यथा शक्ति योग्य सेवा करनी सबसे बड़ा दान यह है।

(१) विद्या के प्रचार में खर्च

(२) रोग निवृति की ख़ातिर खर्च

(३) देश और धर्म की जाग्रति की खातिर ख़र्च

(४) श्रेष्ठ आचार साधु और विद्वानों के जीवन की ख़ातिर ख़र्च

(५) गरीबों और यतीमों की उन्नति की ख़ातिर ख़र्च

(६) सत्संग और समाज के एकत्र करने का ख़र्च

(७) अन्न और वस्त्र का हरएक नदारद की ख़ातिर ख़र्च

(८) सरायें, तालाब, कुएँ, बावलियाँ, सड़कें, पुल इनके तामीर करने का खर्च सब दान उच्च कोटि का है इससे बड़ी कल्याणता प्राप्त होती है।

५. दूसरे दर्जे का दान अपने कुन्बे की उन्नति की खातिर खर्च, अपनी ग़र्ज़ की खातिर राजा, हाकिम हकीम और भाटों की धन से सेवा करनी। देवी-देवताओं और तीर्थों के परसने का खर्च निचले दर्जे का दान है। पूर्ण सिद्धान्त यह है जो ग़र्ज़ कर के सेवा की जावे वह अदना है जो फर्ज़ करके सेवा की जावे वह आला है थोड़ी मिकदार की ख़्वाहे बड़ी मिकदार की।

६. ग़र्ज़ वाली सेवा से बुद्धि निर्मल नहीं हो सकती ख़्वाहे कितनी ही कोशिश करे। फ़र्ज़ को जानकर जो सेवा करता है वह आत्मउन्नति को प्राप्त होता है। धन, मन और तन की यह तीन प्रकार की कैद इस जीव को है। इन तीनों ज़न्जीरों से छूटने की खातिर त्याग का रास्ता बतलाया गया है। सो उसी त्याग को दान कहते हैं। जो लाग़र्ज़ भाव को मद्दे नज़र रख कर त्याग करता है वह इन कैदों से छूट जाता है। जो ग़र्ज़ करके त्याग करता है वह बार बार इन ज़न्जीरों में कैद होता है।

७. **धन का त्याग**—ईश्वर निमित्त और लोक सेवा में जायज़ है। गर्व को त्याग कर जो दान किया जावे वह निजात के देने वाला है।

८. **तन का त्याग**—परोपकार कर्म और सच्ची ईश्वर परस्तिश में शरीर को सर्फ़ करना देह अभिमान से निजात मिलती है।

९. **मन का त्याग**—तमाम वासनाओं को ईश्वर निमित्त त्याग करना, होना और न होना उसकी आज्ञा में देखना, दृढ़ निश्चय से ईश्वर स्मरण करना यह मन का त्याग और परम तप है इससे नेहः कर्म रूप परम आनन्द पार ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है जो असली मुकाम है।

यथार्थ निर्णय यह है तन, धन और मन को निष्काम भाव से दूसरे की निमित्त जो सर्फ़ करता है वह ही परम दानी है और परम

भक्त है। ऐसे निष्काम भाव और परोपकार को साधन करते २ कर्म चक्र से छूट कर नेह कर्म स्वरूप में लीन हो जाता है। फिर सब वासना खत्म हो जाती हैं पूर्ण ब्रह्म रूप हो जाता है। दान रूपी त्याग मार्ग को समझ कर हर घड़ी हर लमह इसके परायण होना चाहिये और अपने जीवन का उद्धार करना चाहिये यह ही समता मार्ग का निर्णय है।

(छ) मूर्ति पूजा का सिद्धान्त

१. हरएक जीव माया की गिरफ़्तारी में बुत परस्त ही है यानी नाम, रूप और गुण कर्म के भोगने में हर वक्त मुस्तग़र्क रहता है किसी हालत में भी तसवरे फ़ानी से आज़ाद नहीं होता।

२. परस्तिश करना मन का काम है अगर मन असत्‌नाम रूप के भोग में कैद है तो वह वहदत परस्त कैसे हो सकता है।

३. जब तक ख़्वाहिशात नफ़सानी मौजूद है तब तक बुत परस्त ही बना रहता है। जब तक अपनी देह के मद में गिरफ़्तार है तब तक बुत परस्त ही है।

४. जब तक कर्म का भोगता है तब तक कर्म फल जो स्थूल विकार है उसकी कैद में है।

५. बुत परस्ती से वहदत परस्ती की तरफ मन को ले जाना है। जब तक मन वृत्ति के अधीन है कभी भी वहदत परस्त नहीं हो सकता।

६. भक्ति मार्ग में बुत परस्ती यानी मूर्ति की पूजा सिर्फ़ इतना ही कल्याण दे सकती है कि सत्पुरुषों के गुण और कर्म का आदर्श उनके स्वरूप से लिया जावे।

७. आदर्श के बग़ैर जो मूर्ति पूजा है वह सख़्त जहालत है यानी आगे ही जीव जड़ प्रकृति की कैद में है बाकी उपासना भी अगर जड़ स्वरूप को करनी शुरू की तो सब पुरुषार्थ दुखदाई हो गया, यानी अन्धकार दर अन्धकार बढ़ता गया।

८. माया की गिरफ़्तारी में जीव स्थूल की कैद में आ गया। इस कैद से निजात की खातिर उपासना या भक्ति है इस वास्ते जिन पुरुषों ने इस प्रकृति से निजात पाई है उनके आदर्श को धारण करके ऐसा ही यत्न करना चाहिये जिससे स्थूल यानी मादे की परस्तिश से आज़ाद होकर निराकार स्वरूप में प्राप्त हो जावें।

९. सत्पुरुषों के स्वरूप को देखकर उनका आदर्श धारण करना लाज़मी है। अगर उनका आदर्श धारण न किया जावे महज़ नमस्कार आरती और चर्णामृत से ही मुक्ति या आनन्द जो चाहते हैं वह अन्धकार-परस्ती कर रहे हैं बजाय शान्ति के अशान्ति को प्राप्त होवेंगे।

१०. पीर, पैगम्बर, गुरु अवतार सब का वजूद पाँच भूत का ही है जैसे हरएक जीव की प्रकृति की बनावट है।

११. सिर्फ उन सत्पुरुषों के अन्दर जो ज्ञान शक्ति है यानी आत्म स्थिति है वह ही तेज पूजने योग्य है। यानी निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, निश्चलता आदि दिव्य गुण जो कि ईश्वर सम्बन्धी हैं।

१२. सत् पुरुष अपनी प्रकृति को जीत कर सत् स्वरूप में स्थित हुए हैं यानी स्थूल विकार से मुक्त होकर निराकार स्वरूप में लीन हुए हैं। जब तक इस आदर्श को न धारण किया जावे तब तक उनकी देह की पूजा करनी सख्त जहालत है। यानी उन्होंने खुद अपनी देह का जीवन में ही त्याग किया है दूसरे उनकी देह को पूज कर क्या हासिल कर सकते हैं यानी सब अकार्थ है।

१३. सत् पुरुषों का ज्ञान स्वरूप पूजने योग्य है न कि महज़ स्थूल आकार। स्थूल आकार की परस्तिश मुक्ति नहीं दे सकती जब तक उनके सही आदर्श को धारण न किया जावे।

१४. सत्पुरुष अनेक स्वरूपों में होते आये हैं यानी उनकी प्रकृति का नाम रूप, गुण और कर्म न्यारा २ होता आया है मगर उनके अन्दर जो ज्ञान स्वरूप है वह एक ही धार का है।

१५. इस वास्ते सत्पुरुषों का ज्ञान स्वरूप जो उनका सच्चा जीवन था वह पूजने योग्य है ।

१६. जिस तरीके से उन महा शक्तियों ने निजात हासिल की है यानी स्थूल विकार पर काबू पाया है उस तरीका को धारण करना यह उनकी सही पूजा है और कल्याण के देने वाली है।

१७. सत् पुरुषों का आदर्श धारण करने से अन्तःकरण में सत्यता प्रगट होती है और अज्ञान यानी स्थूल की कैद से त्याग हासिल होता है ।

१८. जिस भी बुजुर्ग का चित्त में विश्वास होवे उस बुजुर्ग के अन्तर ज्ञान को धारण करना यह उसकी असली पूजा है यानी जिस तरह से वह माया से अतीत होकर ब्रह्मस्वरूप में स्थित हुआ है उसी तरह से उनका ज्ञान ब्रह्म स्थिति देता है यानी नाम, रूप, गुण और कर्म आदि प्रकृति विकार से मुक्ति पाता है ।

१९. मूर्ति पूजा यानी स्थूल विश्वास कभी भी शान्ति नहीं दे सकता जब तक उसके अन्तर की ज्ञानगति का विश्वास न होवे ।

२०. जो भी देहधारी संसार में आया है ख़्वाह शुद्ध माया में ख़्वाह मलीन माया में वह गिरफ़्तारी में है । सत्स्वरूप यानी जीवन शक्ति जो चिह्न वर्ण आकार से न्यारी है उसको प्राप्त होकर के ही उसने मुक्ति आनन्द को हासिल किया ।

२१. उस आनन्द को जो प्राप्त हुए हैं वह ही पुरुष आदर्श के योग्य हैं । उनका आदर्श उन जैसा ज्ञान देकर उसी आनन्द में लीन कर देता है। इस वास्ते उनका आदर्श पूजने योग्य है, न कि उनकी स्थूल प्रकृति की पूजा ।

२२. मूर्ति पूजा वह ही सुखदाई है जिससे उस मूर्ति का आदर्श धारण करके उन जैसा पुरुषार्थ प्राप्त करें । इसके बग़ैर जो कामना रख

कर बहुरंग की पूजा करता है वह बन्धन दर बन्धन को प्राप्त होता है यानी कभी भी सच्ची खुशी को प्राप्त नहीं होता।

२३. अपना पुरुषार्थ ही सब कामना पूर्ण करता है इस वास्ते सत्पुरुषों के बचनों अनुकूल पुरुषार्थ धारण करके इस संसार की बाज़ी को जीत लेना चाहिये।

२४. जो सत्पुरुषों का आदर्श धारण नहीं करता और उनकी महज़ देह की पूजा करता है। वह पुरुषार्थ हीन होकर मार्ग धर्म से पतित हो जाता है और अन्त को घोर नर्क में निवास करता है।

२५. बड़ी से बड़ी कोशिश करके सत्पुरुषों का ज्ञान स्वरूप अनुभव करना चाहिये जिससे अपने अन्तर में वह ज्ञानस्वरूप प्रगट होकर जीव को अखण्ड शान्ति देवे।

२६. स्थूल की कैद यानी बुत परस्ती से कोई भी छूट नहीं सकता जब तक वह ख़्वाहिश का गुलाम है। इसलिये इस झूठ अन्धकार से छूटने के वास्ते केवल ज्ञान मार्ग है। यानी निराकार शब्द स्वरूप का विश्वासी और अभ्यासी होना यह ही ज्ञान स्वरूप सब गुरु, पीर अवतारों का साधन है इसको धारण करके वह अखण्ड शान्ति को प्राप्त हुए इस वास्ते उन बुजुर्गों के आदर्श अनुकूल अपना जीवन बनाकर इस माया की कैद से मुक्त होना चाहिये। यह पूजा असली है। बाकी पाखण्ड अंधकार परस्ती है शुद्ध चित्त से विचार करना चाहिये।

(ज) देवी देवताओं और ग्रहों की पूजा का सिद्धान्त

विचार १. पूजा के मानी यह हैं कि किसी की प्रभुता की अराधना करना।

विचार २. जिसकी पूजा से कामना और कल्पना पैदा होवे वह नाक़िस पूजा है।

विचार ३. जिसकी पूजा से वहम, भय और लोभ पैदा होवे वह भी पूजा नाक़िस है।

विचार ४. जिसकी पूजा से मान, छल और चतुराई पैदा होवे वह पूजा भी नाक़िस है।

विचार ५. जिसकी पूजा से ईर्षा, बाधा और ममता पैदा होवे वह पूजा भी नाक़िस है।

विचार ६. जिसकी पूजा से शोक, गुस्सा और गुमान पैदा होवे वह पूजा भी नाक़िस है।

विचार ७. जिसकी पूजा से स्वार्थ और मोह पैदा होवे वह पूजा भी नाक़िस है।

विचार ८. जिसकी पूजा से द्वन्द्व भ्रम बढ़ता है वह पूजा भी नाक़िस है।

विचार ९. जिस पूजा से कर्म वासना फलती है वह पूजा भी नाक़िस है।

विचार १०. जो पूजा मुकर्रर स्थान के बग़ैर नहीं हो सकती वह भी नाक़िस पूजा है।

विचार ११. जिसकी पूजा से लोक परलोक का भ्रम बना रहता है वह भी नाक़िस है।

विचार १२. जिस पूजा से मन, बुद्धि और कर्म में तबदीली बनी रहती है यानी एक भाव नहीं होता वह पूजा भी नाक़िस है।

विचार १३. देवी-देवताओं और ग्रह की पूजा इन विकारों से निजात यानी मुक्ति नहीं दे सकती क्योंकि इन तुच्छ पूजाओं से तृष्णा रूपी विकार नाश नहीं होता। जीव की कल्याण की ख़ातिर पूजा दरकार है जिस पूजा से बजाय कल्याण के इतने विदार पैदा हो जायें वह पूजा नहीं बल्कि: अंधकार परस्ती है।

विचार १४. जो चीज़ खुद मजबूर है उसकी पूजा सच्ची शान्ति नहीं दे सकती है।

विचार १५. जो चीज़ खुद बनी और बिगड़ी है उसकी पूजा परमानन्द नहीं दे सकती है।

विचार १६. जो चीज़ अपने स्वभाव की मुहताज है उसकी पूजा आनन्द के देने वाली नहीं है।

विचार १७. अनेक तरीका की भावना रख कर अनेक देवी-देवताओं, ग्रहों की पूजा करनी सख़्त जहालत और विकार के देने वाली है।

विचार १८. प्रारब्ध कर्म को कोई शक्ति बदलने वाली नहीं है इस वास्ते कर्मों के अनुसार दुख-सुख ज़रूरी मिलता है कोई रक्षा नहीं कर सकता इस वास्ते ईश्वर शक्ति का भरोसा छोड़कर इन वहमों का भरोसा रखना कभी भी सुखदाई नहीं हो सकता।

विचार १९. अपने कर्मों अनुसार जीव आवागवन में फिरता

है। कोई देवी-देवता और ग्रह इस चक्र से छुड़ा नहीं सकता। इस वास्ते इनकी परस्तिश सब दुखदाई और वहम के देने वाली है।

विचार २०. लाख पूजा की जावे ग्रहों का असर मिट नहीं सकता क्योंकि वह भी मजबूरी में विचर रहे हैं। जो चीज़ स्वभाव रखती है वह कभी भी नहीं छोड़ती क्योंकि उसकी ज़िन्दगी वह ही है। मसलन आग का काम जलाना, पानी का काम बहाना, वायु का काम सुखाना, सूर्य का तपिश देना। बताओ इनकी पूजा करने से यह अपना स्वभाव छोड़ देवेंगे। नहीं, अपना स्वभाव कोई चीज़ नहीं छोड़ती जब तक वह उस स्वरूप से मिट न जाय। ऐसे ही सब निज़ाम को समझें।

विचार २१. कर्म चक्र से जीव को सज़ा और जज़ा मिलती है। देवी-देवता क्या कर सकते हैं? इस वास्ते इनकी पूजा भी गिरफ़्तारी, अधीरता और भ्रम को बढ़ाने वाली है।

विचार २२. देवी-देवताओं की पूजा उनके गुण और कर्म का ग्रहण करना है कि जिस शक्ति को धारण करके वह देवी और देवता बने उस शक्ति का विचार करना उनके आदर्श करके ऐसी पूजा धर्म को प्रगट करती है। जैसे-जैसे सत्कर्म और उपकार को उन हस्तियों ने धारण किया है उसी के मुताबिक अपना जीवन बनाना यह उनकी सच्ची पूजा है। कर्म गति ही देवता बनाती है। कर्म गति ही राक्षस बनाती है। इस वास्ते कर्मों का सुधार ही असली पूजा है। देवी-देवताओं का मार्ग यह ही है।

विचार २३. जो अनेक प्रकार की कामना रखकर देवी-देवताओं को पूजते हैं उनका गुण और कर्म धारण नहीं करते वह सब निहफल और दुखदाई है।

विचार २४. अपने कर्मों के अनुसार ही मन के मनोरथ पूर्ण हो सकते हैं कोई देवी-देवता इनको बदल नहीं सकता।

विचार २५. मौत, जन्म, दुख और सुख सब कर्मों का फल है कोई

ताकत इनसे छुड़ा नहीं सकती ज़रूरी भोग भोगना पड़ता है। गुरू, पीर, अवतार ज्ञानी, नबी और पैगम्बर सबको अपनी करनी का फल मिलता है। यह ईश्वर की माया का खेल है।

विचार २६. इन सब बातों का विचार करके अपनी करनी को सुधारना चाहिये जो सब तकलीफों से छुड़ाने वाली है।

विचार २७. जो कर्म मन करके, बुद्धि करके, इन्द्रियों करके किये जाते हैं उनका फल ज़रूरी भोगना पड़ता है कोई छुड़ाने वाला नहीं ख़्वाहे तन-मन देवी-देवताओं के अर्पण क्यों न किया जावे।

विचार २८. देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा ईश्वरीय विश्वास को और सत्पुरुषार्थ को नाश करने वाली है इस वास्ते सब पापों की बुन्याद यह ही पूजा है। अगर उनको ज़िन्दगी का गुण कर्म न विचार किया जावे।

विचार २९. जो देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा करने वाले हैं वह कभी भी निष्काम भावना और परोपकार को धारन नहीं कर सकते। इस वास्ते हर वक्त वहम और भय में गिरफ़्तार रहते हैं और अपना अमोलक (अनमोल) जन्म झूटे लालच में गँवा देते हैं।

विचार ३०. सत्कर्म ही देवता बनाने वाला है और मलीन कर्म ही राक्षस बनाने वाला है। इस वास्ते हर घड़ी हर लमह सत्कर्म को धारण करना चाहिये।

विचार ३१. जो पूजा ग़र्ज़ को धारण करके की जाती है वह सब धर्म के विरुद्ध है और आवागवन को देने वाली है।

विचार ३२. इस दुस्तर संसार से सिवाय ईश्वरीयज्ञान और सही ईश्वर की पूजा के कभी भी निजात नहीं मिल सकती।

विचार ३३. जो सर्व शक्तिमान घट-घट व्याप रहा है, देवी-देवताओं और ग्रहों को भी प्रकाशने वाला है; उस परिपूर्ण ईश्वर को

छोड़कर नाशवान् चीज़ की पूजा करना व्यर्थ और भ्रम चक्र के देने वाली है।

विचार ३४. अपने साक्षी भूत ईश्वर की पूजा कर्म जंजाल से छुड़ाने वाली है।

विचार ३५. कर्म जो किये हैं उनका फल जरूरी भोगना पड़ता है मगर ईश्वर की उपासना से उन कर्मों के फल की आसक्ता से मुक्त हो जाता है यानी निर्द्वन्द्व अवस्था को प्राप्त हो जाता है वह ही स्थान असली खुशी का है।

विचार ३६. इस माया के अति गुबार से छूटने के वास्ते एक ईश्वर की उपासना लाज़मी है।

विचार ३७. तृष्णा रूपी अधिक रोग से छूटने के वास्ते एक अखण्ड अबिनाशी रूप की उपासना लाज़मी है।

विचार ३८. कर्मों के फल भोगने में धैर्यवान रहने की खातिर एक ईश्वर की पूजा लाज़मी है।

विचार ३९. निर्भय, निर्भ्रम होने की खातिर ईश्वर की उपासना ज़रूरी है।

विचार ४०. तमाम दुनियाँ के ऐश्वर्य ईश्वर पूजा से प्राप्त होते हैं जो सर्व शक्तिमान है। इस वास्ते उसकी उपासना लाज़मी है।

विचार ४१. ईश्वर को छोड़कर देवी-देवताओं और ग्रहों की पूजा करनी बड़ी जहालत और नास्तिकपन है।

विचार ४२ सबसे बड़ी ताकत अपना मन है जो ईश्वर के स्वरूप में स्थित हो जावे तो वह खुद देवता है।

विचार ४३. सत्कर्म को धारण करने वाला ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रखने वाला ही देवता है।

विचार ४४. सबसे निकट, तीन काल प्राप्त, घट घट की जाननहार शुद्ध स्वरूप एक रस रहने वाला, अपने आप में सब ताकत रखने वाला

सब संसार जिसके प्रकाश से प्रकाश हो रहा है उसको छोड़ कर नाश होने वाले और कामनायुक्त शक्तियों की पूजा करनी सब अकार्थ और अन्धकार है।

विचार ४५. जिसकी पूजा देवी-देवता करते आये हैं उसी ईश्वर की पूजा करनी लाज़मी है।

विचार ४६. ईश्वर एक है देवी-देवता अनेक हैं। एक को छोड़कर जो अनेक की पूजा करता है वह किस गति को हासिल कर सकता है। यानी संशयशोक के बग़ैर कुछ भी हासिल नहीं कर सकता।

विचार ४७. इस संसार में विचार को शुद्ध करके जिस तरीका से देवी-देवताओं ने बज़ुर्गी हासिल की है उस तरीका को धारण करके परम पिता परमेश्वर की पूजा करनी चाहिए। यह ही असली पूजा है।

विचार ४८. हर घड़ी दुख में या सुख में ईश्वर की पूजा और उसकी आज्ञा पालन करनी चाहिये। ईश्वर की भक्ति से सब देवी-देवता अधीन हो जाते हैं। इस वास्ते परम शक्ति नारायण शब्द स्वरूप सर्वव्यापक का स्मरण, ध्यान कीर्तन, उपासना विचार करना चाहिये। उसी के निमित्त दान करना चाहिये यह ही असली पूजा है, और कल्याण का मार्ग है।

विचार ४९. ईश्वर की महिमा के बग़ैर किसी शक्ति का निश्चय धारण नहीं करना चाहिये। देवी देवताओं के अन्दर भी ईश्वर का चमत्कार है। ईश्वर ही पूजने योग्य और सर्व सुखदाता है। ईश्वर-विश्वास, ईश्वर-उपासना से जीव परम शान्ति को प्राप्त होता है।

विचार ५०. अवतार, सिद्ध ऋषीश्वर, गुरु पीर, नबी रसूल सब उस परम शक्ति को सिमरते आये हैं और लोगों को भी उसकी महिमा का उपदेश देते आये हैं मगर बाद में फ़रेबी लोगों ने ईश्वरीय पूजा और महिमा को गुप्त करके ईश्वर के पूजने वालों की परस्तिश

करानी शुरू कर दी जिससे उनकी पेट-पूजा और ज़रूरयाते नफ़सानी पूर्ण होने लगीं।

विचार ५१. एक जीवन स्वरूप सर्व प्रकाशक शक्ति को छोड़कर अनेक देवी-देवताओं की पूजा ने अति खुदग़र्जी, ईर्षा छल को प्रगट कर दिया है जिससे सब जीव अति क्लेशवन्त, (दुखी) हो रहे हैं।

विचार ५२. अपनी सही अकल से, सही कोशिश से, सही विचार से, एक ईश्वर का विश्वास होना चाहिये। उसका स्मरण ध्यान करना चाहिये सब दुनियाँ में उसी का प्रकाश देखना चाहिये। ऐसी धारणा ही असली पूजा है और आनन्द के देने वाली है और देवी देवता बनाने वाली है। हर वक्त ईश्वर विश्वास और लोक सेवा को धारण करना चाहिये। यह ही परम धर्म, परम पूजा, परम योग और परम सिद्धि है। इसके सिवा सब छल और कपट है। शुद्ध बुद्धि करके विचार करना चाहिये।

विचार ५३. जो ईश्वर को छोड़ कर देवी देवताओं को बलि और भेंट देता है वह खुदगर्ज़ आत्मघाती है। यानी देवी देवता न कोई बलि लेता है और न ही बलि लेकर कल्याण दे सकता है। यह रिवाज अन्ध बुद्धि वालों ने जारी किया है। अपनी पेट पूजा का ज़रिया बनाया है। ईश्वर विश्वास और लोक सेवा ही असली कल्याण का मार्ग है। इसी रास्ता पर चलकर देवी देवताओं की पदवी को हासिल कर सकता है।

विचार ५४. जो देवी देवताओं के नाम पर माँस, मदिरा और कई तरीकों के चढ़ावे देता है या लेता है वह दोनों पाखण्डी असली धर्म को नाश करने वाले हैं।

विचार ५५. मनुष्य के वास्ते ईश्वर पूजा और लोक सेवा असली धर्म का मार्ग है इसके अलावा जो देवी देवताओं पर बलियाँ चढ़ाते हैं वह मार्ग से पतित होकर कई जन्म अधम जूनियों को प्राप्त होकर दुख पाते हैं।

विचार ५६. समता ही आदर्श देवी देवताओं का है। समता ही ईश्वरी चमत्कार है इस वास्ते देवी देवताओं का जीवन विचार करके समता प्राप्ति की कोशिश करनी चाहिये जो नित्य प्रकाश आनन्द स्वरूप है। यह ही साधन असली धर्म है।

———

(भ) "भूत प्रेत व पितर का सिद्धान्त"

निधान १. संसार में हर एक चीज़ का वजूद दो ताकतों से बना है यानी चैतन्य और जड़ यानी प्रकृति। चैतन्य (आदि) शुद्ध स्वरूप दायम कायम और एक रस है। अनन्त है। आग़ाज़ इख़्तताम (अन्त) के अमल से परे है उसी ताकत को असली संसार का मूल कहते हैं। तीन काल सत्य हैं।

निधान २. प्रकृति यानी फुरना शक्ति—इससे कई अनासर पैदा होकर आपस में तबदील होते रहते हैं यानी हर एक आग़ाज़ और इख़्तताम के अमल में मसरूफ़ रहते हैं। इन तत्वों की तबदीली का नाम पैदाइश, मौत व रंग २ की दुनियाँ है।

निधान ३. प्रकृति की गिरफ़्तारी में जो चैतन्य भासता है उसी का नाम जीव है यानी तत्वों की भुग्ता शक्ति। जीव का स्वरूप वास्तव में कोई नहीं है वासना से जसे २ घट की गिरफ़्तारी में आता है उसी प्रकृति का अभिमानी होकर अपना नाम मान लेता है इसी का नाम अज्ञानता है।

निधान ४. प्रकृति हमेशा तबदील होती रहती है। जिस वक्त बेहर तबदीली को प्राप्त होती है उसी का नाम मौत है। पैदा होना औ मरना प्रकृति की तबदीली का नाम है। प्रकृति का स्वरूप जीव आन है यानी जीव की कल्पना।

निधान ५. जिस वक्त जीव एक शरीर छोड़ता है अपनी वासना के मुताबिक दूसरे वजूद को रचता है यानी धारण करता है। अपनी अज्ञानता ही उस को दूसरे स्वरूप का अभिमानी बनाती है। इसी तरह वासना की कैद में आकर रंग रंग की प्रकृति को धारण करता है यानी प्रगट करता है।

निधान ६. जो नाम शरीर सम्बन्धी हैं वह शरीर के साथ ही नाश हो जाता है। बाकी जीव का वास्तव में कोई नाम नहीं है। इस वास्ते भूत, प्रेत व पितर का जो वजूद माना गया है वह सब वहम और भ्रम मात्र है।

निधान ७. जीव अपनी कल्पना के अनुसार जिस नये स्वरूप को धारण करता है उसी नाम रूप का वह अभिमानी है। पिछले नाम रूप का उसको कोई ज्ञान नहीं है और न ही उसकी गिरफ़्तारी में है।

निधान ८. जैसे इधर मानुष देह को छोड़ कर अपनी मलीन वासना की गिरफ़्तारी से पशु योनि को प्राप्त होता है उस वक्त उसे पशु योनि का मोह और ज्ञान है। पिछले मानुष जन्म के स्वभाव और नाम रूप को अनुभव नहीं कर सकता।

निधान ९. भूत, प्रेत व पितर का कोई स्वरूप नहीं है केवल मन का भ्रम है जीव अपनी वासना अनुसार एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को धारण करता है। जिस वजूद में जाता है उसका वह ही नाम हो जाता है। दायमी उसका नाम कोई नहीं है। जैसी २ तब-दीली में आया वैसा ही नाम रूप कल्पना को धारण किया इसी चक्र को आवागवन कहते हैं।

निधान १०. जिस वक्त माया यानी प्रकृति को असत् मानता है और सत्स्वरूप अपनी सत्ता मात्र को पहिचान लेता है उस वक्त यह तबदीली का अमल यानी पैदाइश और मौत की कैद से छूट कर अपने स्वरूप में लीन हो जाता है। जैसे बर्फ पिघल कर पानी हो जाती है।

भूख्न पिघल कर स्वर्ण हो जाता है घट नाश हो कर माटी रूप हो जाता है यह ही गति इस जीव की है। जिस वक्त अहंकार यानी कारण पैदाइश नाश हो जाता है उस वक्त वह नित्य स्वरूप में स्थित हो जाता है। इसी का नाम मोच्च है।

निधान ११. फ़र्ज़ किया प्रेत, पितर का स्वरूप अगर हो भी तो भी जीव की अपनी कल्पना अनुसार है, उसको उस हालत से छुड़ाने वाला कोई नहीं है जब तक कि वह अपने कर्मों का फल भोग न ले। इस वास्ते जो गति कराने का हक रखता है वह महज़ पाखण्ड है। यानी जीव को अपनी करनी की सज़ा ज़रूर मिलती है कोई गति नहीं दे सकता।

निधान १२. बुद्धि, मन, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी आठ तत्वों से स्थूल शरीर यानी कालिब बनता है। यह तत्व जीव की कल्पना है। इसको प्रकृति कहते हैं जो देह को धारण करता है। इन आठ तत्वों को ही कल्प कर धारण करता है। जब तक यह आठ तत्व आपस में न मिलें तब तक पूर्ण स्वरूप की शक्ल में नहीं आ सकता।

निधान १३. चूँकि भूत, प्रेत और पितरों का कोई स्वरूप नहीं है इस वास्ते महज़ कल्पना है। प्रकृति में इनकी असलीयत नहीं मिलती है। क्योंकि प्रकृति आठ तत्वों से मिली हुई है और स्थूल रूप में भासती है और जीव का वास्तव रूप कोई नहीं है। इस वास्ते भूत, प्रेत व पितर पाप कर्म का भय है वजूद कोई नहीं है। सार विचार यह है कि चार प्रकार की कुल दुनियाँ की पैदाइश है यानी जेरज, अण्डज, स्वेद्ज, अद्भुज। इनके सिवा और कोई वजूद मानना तोहमात परस्ती ही है।

निधान १४. जो अति दुराचारी हैं वह ही इन नामों से पुकारा जाता है और नीच योनि को प्राप्त हुआ नीच कर्म करता है। वह ही

मलीन भाव वाला एक किस्म का प्रेत है। भूत, प्रेत व पितर योनि का आदर्श है। और अहंकार है वास्तविक कोई स्वरूप नहीं है।

निधान १५. हर वक्त एक ईश्वर का विश्वास रखना चाहिये। अपने कर्मों को श्रेष्ठ करना चाहिये। ईश्वर के ही नाम दान देना चाहिये। भूत, प्रेत व पितर की कल्पना को दूर करना चाहिये। जीव अपनी करनी के अनुकूल कई योनियों को प्राप्त होता है मगर वह सूक्ष्म में सूक्ष्म भी होवे तो भी दृश्य में आ सकता है। इस वास्ते भूत, प्रेत व पितर जो नीच योनि का महज़ कल्पित स्वरूप है उसका एहसास करना या पूजा करनी निहायत ही नीच गति को देने वाली है। इसलिए इन सब वहमों को छोड़कर एक ईश्वर को आधार मानकर सत्कर्मों को धारण करना चाहिये ऐसी धारणा ही उच्च गति को प्राप्त होती है यानी मोक्ष आनन्द को।

निधान १६. इस माया के जाल से छूटने के वास्ते महज़ ईश्वर भक्ति और सत्कर्म की धारणा है। इसके सिवा जो भूत, प्रेत व पितरों की पूजा करता है वह कभी भी उच्च गति को प्राप्त नहीं हो सकता।

निधान १७. हर एक जीव को अपने कर्मों के अनुकूल सज़ा मिलती है इस वास्ते अपने सुधार का यत्न करना चाहिये न कि खुद अन्धकार में जावे और दूसरों को गति देवे। अपनी करनी का सुधार हर वक्त मद्देनज़र रख कर ईश्वर विश्वास स्मरण और ध्यान करना चाहिये। यह ही असली गति है।

निधान १८. जो ईश्वर भक्ति और ईश्वर निमित्त दान और सत्कर्म को छोड़ कर भूत, प्रेत तथा पितरों की पूजा में मसरूफ़ रहता है वह अन्ध बुद्धि है और धर्म के सही भेद को नहीं जानता है। महज़ तोह-मात में समय अनर्थ खो रहा है।

निधान १९. हर एक प्राणीमात्र को अपनी गति का विचार करना

चाहिये अगर खुद कैद में है तो दूसरे को कैसे कैद दे सकता है। यह बिलकुल नामुमकिन है हर घड़ी हर लमह अपना सुधार लाज़मी है।

निधान २०. जब तक जीव अपनी करनी को खुद साफ़ नहीं करता तब तक उस को कैद से रिहाई मुश्किल है। इस लिये सत्पुरुषों के जीवन अनुकूल अपना जीवन बनाकर अपनी गति करनी चाहिये जिससे माया की कैद से रिहाई पा कर परमानन्द स्वरूप को प्राप्त हो जावे।

निधान २१. जब तक अपनी करनी खुद साफ़ नहीं करता तब तक कोई तीर्थ, कोई देवता, कोई मन्त्र गति नहीं दे सकता। इस लिए अपनी करनी का सुधार ही परम गति है। जो ज़िन्दगी में कुछ नहीं करते और मरने के बाद अपने अग्याल (सन्तान) से गति चाहते हैं वह सख़्त धोखे में हैं।

निधान २२. जो करेगा सो पायेगा। एक आदमी दूसरे पर कोई हक नहीं रख सकता जब तक कि वह खुद अपने जीवन को पवित्र न करे। इस वास्ते हर घड़ी अपने आचार को दुरुस्त करना चाहिये जिससे गति नसीब होवे।

निधान २३. जो प्राणी इन वहमों में फंसा रहता है वह कभी भी शाँति हासिल नहीं कर सकता जब तक कि सब वहमों को छोड़ कर एक ईश्वर का भरोसा न लेवे।

२४. अपनी २ गति करना हर एक का हक है दूसरे के भरोसे रहना सख़्त ग़लती है। इस लिए ज़िन्दगी में अपनी कल्याण के निमित्त यत्न करना चाहिये।

निधान २५. संसार में वह ही जीव गति को प्राप्त होता है जो इन भूत, प्रेत, पितर आदि वहमों को छोड़ कर एक ईश्वर का भरोसा लेवे। हर वक्त सत्कर्म को धारण करे। पाप कर्म की तरफ़ भूल के न

जाय। दृढ़ निश्चय एक ईश्वर के स्मरण में रखे। कर्त्ता हर्त्ता महा प्रभु जान कर सब कुछ उस की आज्ञा में देखे। लोक सेवा और निर्मान भाव चित्त में धारण करे। तब निष्काम स्वरूप परम आनन्द को प्राप्त हो जाता है फिर मिथ्या चक्र माया में नहीं आता। यह ही जीव की गति है। ऐसा निश्चय धारण करना चाहिये।

(ञ) धर्म उपदेशकों के वास्ते हिदायत

हिदायत १. धर्म का सही स्वरूप जानना और उसको अमल में लाना उपदेशक का परम धर्म है।

हिदायत २. जब तक अपना अन्तःकरण बिल्कुल शुद्ध न होवे यानी वासना रूपी विकार से निर्मल न हो चुका होवे। किसी को कोई उपदेश करने का कोई हक नहीं।

हिदायत ३. धर्म की जाग्रति की खातिर उपदेश करना तथा लोगों के दुख को महसूस करके और निष्काम भाव को धारण करके उपदेश करना सत्य उपदेश है।

हिदायत ४. जो जाती गर्ज़ की खातिर उपदेश देती है यानी अपनी रोज़ी की गुज़रान की ख़ातिर या बड़ाई की खातिर या लोगों को नाजायज़ वरगलाने की खातिर वह उपदेशक दुराचारी है देश और धर्म को नाश करने वाला है।

हिदायत ५. सत्य, सादगी, सेवा, सत् विश्वास, सत्स्मरण और प्रेम आदि गुणों के बगैर जो उपदेशक है वह भी दुराचारी और पाखण्डी है ख़्वाहे कितना ही विद्वान होवे।

हिदायत ६. जिस उपदेशक का लिबास, खुराक और बचन साधारण नहीं है यानी प्रेम और निर्मान भाव नहीं रखता वह उपदेशक धर्म के नाश करने वाला है।

हिदायत ७. जो उपदेशक बहुत विद्या का मद रखता है और आचार विचार में सादगी नहीं रखता वह भी उपदेशक विकारी है।

हिदायत ८. और कोई भी नशा पीने वाला, नुमायश को देखने वाला, ताश, चौपड़ और जुआ खेलने वाला और माँस खाने वाला अगर चतुर्वेदी पण्डित भी होवे तो वह दुराचारी है। उसका उपदेश धर्म को नाश करने वाला है और पाप को फैलाने वाला है।

हिदायत ९. जिसके अन्दर यतीम, अनाथों और गरीबों का प्रेम नहीं, धन और मद की आस रख कर उपदेश देता है-- वह भी दुराचारी उपदेशक है।

हिदायत १०. जो विचार सादा नहीं करता और गहरे २ वाकयात सुनाता है और बहुत जबान दराज है वह भी पाखण्डी है।

हिदायत ११. जिसका मन खुद भोगों में फंसा हुआ है वह उपदेशक दुनिया को कभी भी रास्ती नहीं सिखला सकता।

हिदायत १२. जो बिल्कुल पुस्तकों का कीड़ा है और कुदरती अनुभव नहीं रखता वह कभी भी यथार्थ धर्म को न ग्रहण कर सकता है और न ही दूसरों को आगाह कर सकता है।

हिदायत १३. जो बहुत इतिहास विचार करके लोगों को सुनाता है और खुद एक का भी अमल नहीं करता वह पाखंडी है।

हिदायत १४. जिसके उपदेश से ईर्षा और वाद प्रगट होवे वह धर्म के नाश करने वाला उपदेशक है।

हिदायत १५. जो ब्रह्म ज्ञान से हीन है और छोटे विश्वास वाला है वह उपदेशक भी तुच्छ है।

हिदायत १६. जिसके अन्दर खुद सत्य, निर्मानता, निष्कामता, उदासीनता और प्रेम नहीं है वह बड़े से बड़ा विद्वान भी मूर्ख है उसका कभी भी उपदेश खालिस धर्म प्रगट नहीं कर सकता।

हिदायत १७. जिसके अन्दर ईश्वरीय विश्वास और परोपकार और

उदारता नहीं है वह उपदेशक पाखण्डा है। दुनियाँ को अन्धकार की तरफ ले जाने वाला है।

हिदायत १८. जिसके अन्दर देह अभिमान और कुल ज़ात अभिमान और विद्या अभिमान है वह उपदेशक धर्म का नाश करने वाला है।

हिदायत १९. जिसके अन्दर मौत का भय नहीं और ईश्वर से प्रेम नहीं वह कभी भी न पाप से छूट सकता है और न ही लोगों को रास्ती दिखला सकता है।

हिदायत २०. जो मान की खातिर उपदेश देता है और खुद प्रेम नहीं रखता वह उपदेशक धर्म के नाश करने वाला है।

हिदायत २१. जो स्वार्थ की खातिर उपदेश करता है वह उपदेशक धर्म का नाश करने वाला है।

हिदायत २२. जिसका हृदय पूर्ण शीतल नहीं हुआ तत्त्व ज्ञान से, वह दुनियाँ को रास्ती नहीं सिखला सकता ख्वाहे तमाम दुनियाँ की विद्या का व्याख्यान क्यों न करे।

हिदायत २३. जो सिर्फ़ विद्वान ही है और अपने अन्दर ईश्वरीय प्रेम और निष्कामता नहीं रखता वह विद्वान नहीं बल्कि बोझ उठाने वाला ढोर है।

हिदायत २४. जिस क़ौम में धर्म विश्वास वाला न होवे और विद्वान बहुत होवें एक दिन वह क़ौम को नाश कर देवेंगे। क्योंकि साधन के बग़ैर विद्या नाश कर देती है। ऐसा निश्चय करें।

हिदायत २५. जिसका मन खुद संशय और वहम वाला है कितना भी विद्वान होवे वह शान्त अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकता और न किसी को आगाह कर सकता है।

हिदायत २६. लोग दिखावे की खातिर जो आरज़ी धर्म रखता है और मान गुमान में मुस्तग़र्क़ रहता है वह उपदेशक पाखण्डी है।

है यानी आत्म स्थिति वाला है। प्रेम और वैराग्य में पूर्ण है वह उपदेशक खुद निजात को हासिल कर चुका है और लोगों को रास्ती सिखलाने वाला है वह ही जगत गुरु है।

हिदायत ४२. जिसने शरीर के विकारों से जीत पाई है और ब्रह्म शब्द को प्राप्त हुआ है और हर वक्त ईश्वरीय प्रेम में मग्न रहता है वह तत्ववेत्ता पुरुष सच्चा उपदेशक है।

हिदायत ४३. जिसके अन्दर ब्रह्म प्रकाश हुआ है और माया के विकार से मुक्त हुआ है वह उपदेशक परम सिद्धि देने वाला है।

हिदायत ४४. जिसने सब संसार के अंजाम को जाना है, यानी माया की प्रवृत्ति और निवृत्ति को अनुभव किया है वह उपदेशक आनन्द दाता है।

हिदायत ४५. जिसने पहले सही जाना है और फिर व्याख्यान किया है वह उपदेशक गुणकारी है।

हिदायत ४६. जिसने पहले अपने मन को उपदेश देकर काबू किया है उसका उपदेश दुनियाँ को निजात देने वाला है।

हिदायत ४७. अपने सत्वचन पर जो अटल रहने वाला है—तन के नाश होने पर भी जो प्रण नहीं छोड़ता—वह उपदेशक धर्मवादी है।

हिदायत ४८. जिसने अपना तन, मन, धन ईश्वर अर्पण किया है और दृढ़ निश्चय वाला है वह ही सच्चा उपदेशक है।

हिदायत ४९. जो हर वक्त दुखियों की सेवा करने वाला और अपना सुख न चाहने वाला, ईश्वर का प्रेम अधिक रखने वाला—वह उपदेशक धर्म का सूर्य है।

हिदायत ५०. जो खुद अमल करता है सत्कर्मों पर और हृदय से सेवक रूप है सब जगत का, हर एक जीव की कल्याण चाहने वाला चित्त जिसका, अपने और गैर के साथ एक जैसा प्रेम रखने वाला, सत्वचन और मन का सुशील, परम भक्ति ईश्वर की धारण करने वाला, निर्मान भाव और सर्व दयालु उत्साह रखने वाला उपदेशक सब संसार को कल्याण देने वाला है और वह ही धर्म अवतार है ॥

समता धार

(चौथा अनुभव)

ओ३म ब्रह्म सत्यम् निरंकार, अजन्मा, अद्वैत पुरुषा
सर्व व्यापक, कल्याण मूर्त, परमेश्वराय नमस्तं

(क) समता धर्म

(पहला भाग)

१. धर्म का यथार्थ अर्थ धारणा है यानी मन, बचन, कर्म करके किसी भाव को धारण करना। असत् भावना के धारण करने को अधर्म कहते हैं और सत् भावना के धारण करने को धर्म कहते हैं।

२. समता धर्म यानी बुद्धि का सम भाव में स्थित हो जाना, तमाम कामना और कल्पना से आज़ाद हो जाना, अपने निज स्वरूप यानी आत्मानन्द में प्रवेश कर जाना, जन्म और मरण के भय से मुक्त होकर अपने अन्तर विषे सत्स्वरूप में लीन हो जाना यह अवस्था ही पूर्ण धर्म का स्वरूप है और सब महापुरुषों की यह ही इन्तहाई तहक़ीक़ात है। उन्होंने इस अवस्था को प्राप्त होने की ख़ातिर अनेक प्रकार की साधना को प्रगट करके धर्म स्वरूप को प्रकाश किया, यानी सत्कर्म, सत्‌विचार, सत्‌विश्वास, सत्पुरुषार्थ, सत्संग, और बन्धन मुक्त भेद का निर्णय किया, इस प्रकार जो धर्म के स्वरूप को जानने वाला है और हृदय से इन शुभ गुणों का निध्यासी भी है वह ही समता धर्म अखण्ड शाँति को प्राप्त होवेगा।

३. अनानियत की गिरफ़्तारी में जीव कई भावों में हर वक्त लीन रहता है। यानी स्वार्थ की क़ैद से दृढ़ निश्चित नहीं होता इस चलायमान हालत में कई क़िस्म के पुण्य और पाप करता है और उनके फल की वासना में आसक्त होकर हर वक्त जलता रहता है यह ही भ्रम अन्धकार है। हर एक जीव की अन्तरगति की हालत यह ही होती रहती है ख़्वाहे बड़े से बड़े ऐश्वर्य को क्यों न धारण कर लेवे।

४· इस अन्धकार से छूटने के वास्ते समता धर्म का मार्ग है जिसको प्राप्त करके जीव जल्दी ही परमानन्द को प्राप्त हो जाता है। हर एक जीव का परम यत्न यह ही होना चाहिये कि समता मार्ग में चलकर अपनी कल्याण को हासिल कर लेवे। धर्म से पवित्रता प्राप्त होती है यानी शारीरिक, मानसिक और निश्चय शुद्धि को प्राप्त होता है।

५· इन तीनों हालतों की शुद्धि करनी यानी शरीर, मन और बुद्धि को पवित्र करना ही असली धर्म का जानना है। अगर ऐसी साधना को प्राप्त नहीं हुआ तो वह धर्म के असली स्वरूप को न पहिचान सकता है और न ही असली शाँति को प्राप्त हो सकता है। सब महा-पुरुषों का यथार्थ उपदेश इन ही हालतों की शुद्धि का साधन बतलाता है। जो कायर और स्वार्थवादी अपनी कल्याण तो कर नहीं सकते वे पन्थ भेद और कई प्रकार के वादमुवाद में लगे रहते हैं। वह न खुद शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं। और न ही साधारन जीवों की शाँति की तरफ़ जाने देते हैं। यह अन्धकारमई पन्थ भेद का झगड़ा असली अज्ञान है और समता शान्ति को किसी सूरत में प्राप्त होने नहीं देता।

६· जीव को अपनी कल्याण की खातिर धर्म स्वरूप को धारणा है न कि वादमुवाद और लोक दिखलावे की खातिर। जिस वक्त अपनी तमाम कमजोरियों से पवित्र हो जावे यानी समता आनन्द में लीन हो जावे उसी वक्त वह गुणी पुरुष जीवों की कल्याण की खातिर अपने पवित्र जीवन को तमाम जनता की सेवा में भेंट करे। यह ही रास्ता गुरुओं, पीरों और अवतारों का है जिस निश्चय को लेकर उस महापुरुष ने परमानन्द को प्राप्त किया है। उस निश्चय से कई जीवों का उद्धार होता है। ऐसी पवित्र अवस्था को प्राप्त हुए जो महापुरुष जनता के उद्धार में अपना जीवन त्याग करते हैं उनका सत्उपदेश और आदर्श धारण करना असली कल्याण के देने वाला है।

७ शारीरक, मानसिक और निश्चय शक्ति को पवित्र करने की खातिर अनेक प्रकार के यत्न महापुरुषों ने बतलाये हैं जिनका पूर्ण

प्रयोजन समता शान्ति की प्राप्ति ही है। यानी सत् साधना को धारण करके अपनी बुद्धि को निर्मल करके शब्द स्वरूप अखण्ड आनन्द में स्थिति प्राप्त करे। इस निश्चय के बग़ैर जो कोई और धर्म का स्वरूप मानता है वह पाखण्डी और तोहमात परस्ती करने वाला है। स्वार्थ की क़ैद तो जीव को हर हालत में परेशान करती है इस वास्ते जो स्वार्थमयी धर्म है वह असली धर्म नहीं है बल्कि व्यापार है यानी मिथ्या शरीर के भोगों की ख़ातिर कुछ न कुछ साधना धारण करते रहना।

८. स्वार्थ धर्म महज़ देह के भोगों की ख़ातिर है जो तीन काल अशाँति के देने वाले हैं यानी भोग अंधकार में तृष्णा और भय से एक लमह भी मुक्त नहीं हो सकता। स्वार्थ धर्म से देह के सुख और दुख में हर वक्त गिरफ़्तार रहता है असली समता शाँति को हासिल नहीं कर सकता, स्वार्थ धर्म से ऊँच नीच योनियों में प्राप्त होता रहता है। अपने नित्य स्वरूप को हासिल नहीं कर सकता जब तक कि परमार्थिक बुद्धि प्राप्त न होवे।

९. परमार्थ साधन जो धर्म है वह असली धर्म है यानी सत्-निश्चय को धारण करके सत्पद समता जो तीन काल शुद्ध स्वरूप है उसको प्राप्त करने का पुरुषार्थ धारण करे। यह निश्चय ही असली शाँति के देने वाला है। उस वक्त तमाम पन्थ भेद के वादसुवाद को छोड़कर जीव अपनी आत्मिक उन्नति के यत्न में प्रवृत्त होता है और तमाम विकारों पर काबू पाने की ख़ातिर हर घड़ी हर लमह सत्स्वरूप में निश्चल रहता है। ऐसी भावना जिस जीव को प्राप्त हुई है वही समता धर्म के जानने वाला है।

१०. शरीर की शुद्धि स्नान से, पवित्र आहार, पवित्र व्यवहार और पवित्र संगत से होती है। मन की शुद्धि सतविचार, दान, तप वैराग्य और सत्नाम के निध्यास से होती है। बुद्धि की शुद्धि दृढ़ निश्चय से एक ईश्वर स्वरूप में लगाने से होती है। बुद्धि जिस वक्त पूर्ण

आत्म परायण हो जाती है उस वक्त मन इन्द्रियों पर काबू पा जाती है। और शुद्ध अविनाशी स्वरूप में हर वक्त मग्न रहती है। यह ही अवस्था असली समता शाँति है। जब तक मन, देह, इन्द्रियाँ और बुद्धि पवित्र न होवें तब तक कभी भी असली शाँति को जीव प्राप्त नहीं हो सकता ख्वाह शरीर के टुकड़े टुकड़े क्यों न कर देवे। अपने रोग का जिसने उपाय नहीं किया और विद्या को धारण करके बड़े बड़े व्याख्यान जिसने किये वह सब अकार्थ ही जानें। जैसे जल में मछली प्यासी रहती है ऐसे ही वह गुणी पुरुष बेअमल होने के कारण नादान ही जानें।

११. तमाम दुनियाँ का फलसफा और तहक़ीक़ात आख़िर जीव शाँति की तलाश दिखलाता है। जिसने अपनी जिन्दगी को पवित्र नहीं किया, सत्विचार को धारण करके, वह महज़ पशु ही जानें। तमाम महात्माओं की तहक़ीक़ात यह ही है कि ज़िन्दगी के होते होते असली खुशी समता को हासिल कर लेवें जिससे जीव का सब अज़ाब नाश हो जावे।

१२. जिसने अपनी आत्मिक उन्नति नहीं की और स्वार्थ की ख़ातिर कई तरीक़ों को अख़्त्यार करके अपनी बुद्धि को जो भरमाता रहता है यानी ईश्वर विश्वासी नहीं होता वह ही असली मूर्ख जानना चाहिये। हर एक साधना का फल अपने सतविश्वास से प्राप्त होता है। जिसने न सही कर के जाना है और न ही सही कोशिश अख़्त्यार की है और न ही आख़िर का जिसने अन्जाम सोचा है वह आरज़ी धर्म के जानने वाला भी नादान ही है।

१३. तमाम वर्ण आश्रम मज़ाहब और पन्थ नालों की सूरत अख़्-त्यार किये हुए समता के समुद्र की तरफ़ दौड़ रहे हैं जो परम प्रकाश है, मगर छोटी अक्ल वाला असलियत से बे बहरा होकर और ख़ुद बाअमल न होने से हर वक्त मज़हबी झगड़ों की तलाश करता रहता है। यह जहालत ही असली शैतानियत है। जो ऐसी नादानी में हर वक्त गिर

फ़तार रहते हैं वे अपने पेशवाओं की ज़िन्दगी पर धब्बा लगाने वाले हैं और उनकी क़ुरबानी को फ़रोख़्त करके अपने पेट का गुज़ारा करते हैं। वह असली धर्म के नाशक हैं। न खुद असली खुशी को प्राप्त हुए और न ही किसी को आगाह कर सके महज़ बादमुबाद में अपनी ज़िन्दगी को छोड़ कर गफ़लत में मिट गये हैं और मिट जायेंगे।

१४. ईश्वर शक्ति जिस तरह सब जगह और सब वक्त में एक स्वरूप में बिचरती है उसी तरह महापुरुषों ने अनुभव करके तमाम साधना के स्वरूप को प्रगट करके शाँति का रास्ता दिखलाया है मगर जो चलने वाला है वह एक दिन मन्ज़िले मक़सूद को पहुँच जावेगा और जो बैठा हुआ ही बातें बनाता है वह असली गुमराह करने वाला है। न खुद कुछ कर सकता है और न दूसरों को तसल्ली दे सकता है।

१५. हर एक सत्पुरुष ने अपनी ग़फ़लत को छोड़कर सत्स्वरूप को प्राप्त किया और जिन वजूहातों से उन्होंने असली खुशी हासिल की, वह विचार सुनाए। उन्हीं विचारों का मजमुआ धार्मिक पुस्तकें हैं। अगर इन विचारों को अमल में लाया जावे तो कुछ न कुछ कल्याण हो ही जावे मगर जो महज़ मज़हब की आड़ लिये हुए जा रहे हैं और बिलकुल अमल से बे बहरा हैं वह न तो असलियत के जानने वाले हैं और न ही अपने बज़ुर्गों के गौरव को जान सकते हैं महज़ हुज्जत बाज़ी में लगे रहते हैं और ज़िन्दगी को रायगाँ खो रहे हैं।

१६. असली खुशी का मम्बा हर एक जीव के अन्दर है। मगर बग़ैर अन्तःकरण की शुद्धि के कोई उसको हासिल नहीं कर सकता है। अपनी गुमराह और मुनकिर अक्ल को उस मालिके कुल की तरफ़ रुजू किये बग़ैर कभी भी असली खुशी नहीं मिलती है। यह दुनियाँ एक गहरा अज़ाब है। रोशन ज़मीरी से समझ में आ सकता है। नहीं तो अज़ाब ही को खुशी मना कर हर वक्त जीव परेशान रहता है किसी हालत में भी असली शाँति को प्राप्त नहीं कर सकता।

१७. इस बेकरारी हालत से मुखलसी पाने की खातिर सत्पुरुषों का मन्त्उपदेश है जिसको अपना करके जीव अपने अन्दर ही उस मालिके-कुल को देख लेना है। यानी अपने असली स्वरूप को जानकर जन्म और मरण की कद से रिहा हो जाता है। यह हालत ही समता धर्म प्राप्ति की है। हर वक्त अपने अन्जाम की खबर रखनी चाहिये जिससे जहालत का नाश हो जावे और परम शाँति मिले।

१८. धर्म का स्वरूप हर पहलू में सही जानना चाहिए। जीव की कल्याणता समता प्राप्ति से है बगैर समता की तहकीकात के कभी खुशी हासिल नहीं हो सकती। यह निश्चय करके विचार करना चाहिये। हर एक चीज़ समता के बल से कायम है। जो चीज़ समता से हीन हो जाती है। वह उस स्वरूप से मिट जाती है। यह ही ईश्वर शक्ति का चमत्कार है। हर वक्त अपने अन्दर सही तलाश करनी चाहिए।

१९. अपनी गफ़लत को छोड़कर असली ज़िन्दगी की तलाश करनी असली समता की तलाश है। जो मलीन बुद्धि के द्वारा अपनी ग़फ़लत को छोड़ नहीं सकता और बराय नाम मजहबों का दम भरने वाला है वह असली खुशी से बहुत दूर हैं जो उसके पेशवाओं को हासिल हुई। क्योंकि वह सही नक्शे कदम पर अपने बजुर्गों के चलने वाला नहीं है। बल्कि उनके जीवन आदर्श से भी नावाक़िफ़ है।

२०. हर एक कालिब के अन्दर मालिके कुल रौशन हो रहा है। खुदी के अजाब से जीव उसको जान नहीं सकता। खुदी के अबूर पाने की खातिर धर्म या ईमान है जिसका हासिल करके असली खुशी यानी मालिके कुल का मिलाप हासिल होता है। यह ही समता पद है। तमाम संजोगम से मुक्त होकर जीव पूर्ण रूप हो जाता है। तमाम कामिल बजुर्गों का फलसफ़ा इस जगह आकर खत्म हुआ हैं।

२१. मजहबी झगडे मुक्ति नहीं दे सकते हैं जब तक कि अपने आपको उन सही तरीकों में वक्फ न किया जावे जो बजुर्गों का सत्

उपदेश है। मनुष्य का जन्म असली खुशी को हासिल करने की खातिर है जो समता का पूर्ण रूप है। इसलिये हर घड़ी अपनी मूर्खता को छोड़ कर सत्स्वरूप आत्मा का विश्वासी और अभ्यासी होना चाहिये। दुख व सुख ईश्वर की आज्ञा में जानकर धैर्यवान् रहना चाहिये। यह ही असली कल्याण का मार्ग है। अपने मन को एकाग्र करके ईश्वर नाम में लगाना चाहिये। ईश्वर सत्य है बाकी सब भय और भ्रम है। हर एक जीव का परम साधन यह ही है कि अपनी गफ़लत से मुक्त होकर ईश्वर परायण जीवन धारण करना। यह पुरुषार्थ ही समता धर्म के प्रकाश को देने वाला है। सत्बुद्धि से हर वक्त सत् मार्ग में दृढ़ होना चाहिये। शरीर पल-पल में नाश को प्राप्त हो रहा है।

२२. तमाम पन्थ, भेद और मज़हबी झगड़ों को छोड़कर अपनी आत्मिक उन्नति करनी चाहिये यानी आचार-विचार को पवित्र करके अपने जीवन-स्वरूप की तलाश करनी चाहिये। तमाम शरीर की शक्ति उस मालिके-कुल से जाननी चाहिये और हर वक्त अपने मन को एकाग्र करके परमेश्वर का स्मरण करना चाहिये और अपने अन्तर विषे उस प्रकाश-मयी जीवन शक्ति को अनुभव करना चाहिये। खुशी गमी सब उसकी आज्ञा में समझ कर सावधान रहना चाहिये ऐसा दृढ़ निश्चय हासिल होने से मन सब भ्रमों को छोड़कर सत् शब्द ब्रह्मस्वरूप में लीन हो जाता है जो समता धर्म का पूर्ण रूप है। सब संकट और अज्ञान से उस वक्त मुक्ति हासिल होती है। वह ही परम पद है। कोई ही पूर्ण कर्मी उसको प्राप्त होता है। उसी की कीर्ति दुर्लभ है, तमाम सत्पुरुषों का असली धाम यह ही है कि तमाम ख्वाहिशों से मुखलिसी पाकर समता आनन्द को प्राप्त हुए। उनके अन्दर तमाम औसाफ़ समता आनन्द की प्राप्ति से प्रगट हुए। हर वक्त सही मार्ग समता धर्म की तलाश करनी चाहिये और वादमुबाद से मुखलिसी हासिल करनी चाहिये यह ही मानुष ज़िन्दगी का फल है।

२३. समता स्वरूप अज्ञान का है यानी मिथ्या कल्पना का अधि-

मानी हो जाना और ममता स्वरूप ज्ञान का है यानी सत् स्वरूप में निश्चित होना। ममता के चक्र में सब चौरासी लाख जीव भ्रम रहे हैं एक पलक भी निर्भय अवस्था को प्राप्त नहींहो सकते हैं। कर्म फल की वासना की कैद में हर वक्त आवागवन में चक्र लगाते रहते हैं। यह ही सब संसार का खेल है।

२४. कर्म फल की वासना राग द्वेष में जीव को हर वक्त आसक्त करती रहती है। बड़े से बड़े परिश्रम करने से भी जीव तृषित रहता है। इस भयंकर माया के यंत्र से छूटने के वास्ते केवल एक समता धर्म का ही मार्ग है।

२५. हर वक्त जो अशान्ति जीव को भरमाती है यानी शुभ अशुभ कर्मों की गिरफ़्तारी। इससे जीव किसी हालत में भी नेह कर्म अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता बग़ैर समता धर्म की प्राप्ति के। कर्म फल की वासना एक गहरा जाल है। जब तक सम्मत (समत्व) बुद्धि प्राप्त न होवे तब तक कभी भी माया के मोह जंजाल से छूट नहीं सकता इस ही अति क्लेश में सब जीव बिचर रहे हैं।

२६. मार्ग धर्म की प्राप्ति का फल यह ही है कि जीव तमाम कर्मों की कैद से मुक्त होकर नेह कर्म स्वरूप पारब्रह्म को प्राप्त हो जावे जो केवल समता शान्ति है। जब तक जीव स्वार्थ के धर्म में लीन रहता है यानी अपनी कामना की खातिर सत्कर्म को धारण करता है इसका फल बाण में प्राप्त करके फिर संकट को प्राप्त होता है। बग़ैर निष्काम कर्म की साधना के आवागवन से नहीं छूट सकता है।

२७. एक ईश्वर के विश्वास बिना दूसरी शक्ति का आधारी होना यह मन्द बुद्धि का निश्चय है यानी बुद्धि अति कामनाओं के वश होकर निज स्वार्थ की खातिर अनेक प्रकार की साधना को अख़्त्यार करके हर वक्त भय में गिरफ़्तार रहती है और परम शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकती है। बार-बार जन्म मरण के चक्र में फिरती है।

२८. यथार्थ धर्म स्वरूप को जान करके अपने कल्याण का पुरुषार्थ करना चाहिये। यह भव मार्ग अति दुस्तर है। निर्मल बुद्धि द्वारा नित सत् धर्म में प्रवीण रहना चाहिये। जिससे मन सब उपाधियों से छूट कर समता शान्ति को प्राप्त हो जावे और ममता के अंधकार से छुटकारा हासिल करे।

२९. हर वक्त कर्म गति का विचार करना चाहिये। पाप कर्मों से मन को रोकना चाहिये। सत्संग द्वारा अपने जीवन को धर्म परायण बनाना चाहिये। निज स्वार्थ को त्याग कर ईश्वर की भावि में निश्चित होना चाहिये। हर घड़ी, हर लमह उस मालिके कुल की याद करनी चाहिये। दुखी, अनाथों और अशक्त पुरुषों की यथा शक्ति सेवा करनी चाहिये। कर्ता, हर्ता, सर्व स्वामी नारायण का पूर्ण विश्वासी होकर मार्ग धर्म में निश्चल होना चाहिये। ऐसी भावना ही सब तापों के नाश करने वाली है और धर्म का पूर्ण स्वरूप है। जो नित ही नित अपने मन को सत् मार्ग में लगाए रखता है वह ही धर्मात्मा है।

३०. एक ईश्वर को कुल दुनियाँ का आधार मानना और नित आनन्द स्वरूप जानना और हर एक के अन्दर उसका प्रकाश देखना, तमाम कर्मों के फल की वासना ईश्वर निमित्त त्याग करना, हर वक्त दीन भाव को धारण करना, सब जीवों का हितकारी होना, मन, वच, कर्म से सबका भला चाहना, अपने शरीर के मद को त्याग करना, हर एक गुणी पुरुष का सत्कार करना, हर वक्त अपने जीवन उद्धार की खातिर यत्न धारण करना नाशवान् शरीर से जीवित में ही उपरम हो जाना और आत्म आनन्द में हर वक्त मग्न रहना, यह धारणा ही असली धर्म है। इसको प्राप्त करके जीव सम भाव ब्रह्म शब्द में लीन हो जाता है जो सब संसार का मूल है और आनंन्द धाम है।

३१. शान्ति की खातिर तमाम धर्म कर्म हैं। जिसके मन में ईश्वर विश्राम नहीं आया और न ही जिसने अपनी अन्तिम दशा का विचार

किया वह स्वार्थवादी पुरुष मार्ग धर्म को न जान सकता है और न उस पर कारबन्द हो सकता है। सत् नियमों के धारण करने से बुद्धि बलवान होकर सत् स्वरूप में निश्चल हो जाती है। इस वास्ते बड़ी से बड़ी कोशिश करके मन को मार्ग धर्म में लगाना चाहिये जिससे नित्य आनन्द अवस्था प्राप्त होवे और तमाम संकट से जीव मुक्ति हासिल करे।

३२. मलीन कर्मों में तो जीव हर वक्त अमता रहता है यह प्रकृति का नियम है। सत्कर्मों में यत्न करके मनको लगाना यह धर्म का विश्वास है। ऐसी दृढ़ता ही जीव को परम पद देती है। गुणी पुरुष हर वक्त अपने कल्याण का यत्न करते रहते हैं। और बन्धन स्वरूप पाप कर्मों में मन को आसक्त होने नहीं देते। यह ही आत्मिक उन्नति का स्वरूप है।

३३. तृष्णा रूपी बड़वाग्नि से शान्त होने की खातिर एक धर्म का ही मार्ग है। इस वास्ते सत्पुरुषों की सत् शिक्षा द्वारा अपनी कल्याण करनी चाहिये। मानुष जन्म का असली सिद्धान्त यह ही है। हर वक्त अपने मन को आत्म परायण बनाना चाहिये और दृढ़ निश्चय से कर्म जंजाल को आसक्ति को त्यागना चाहिये। अपने मानसिक रोग का उपाय निज ही करके अभय पद को प्राप्त होना चाहिये यह ही असली धर्म स्वरूप की धारणा है।

३४. जब तक मन पाप कर्मों में बन्धा हुआ है यानी इन्द्रियों के भोगों में मन असत् का विचार नहीं करता है, तब तक धर्म मार्ग से बहुत दूर है यानी जड़ बुद्धि में हर वक्त मलीन हो रहा है और संसारी पदार्थों की कामना में पलक पलक चलायमान होता रहता है वह ही परम दुखी और अधर्मी है।

३५. इस मिथ्या संसार में जिसने एक ईश्वर का भरोसा लिया है। और तमाम शरीर भोगों से जिसने छुटकारा पाकर एक अविगत नाम का पान किया है। तन, मन, धन करके लोक सेवा में जो प्रवृत्त

हुआ है। दुखी जीवों की खातिर जो अपना सुख त्याग करता है। हर वक्त निर्मान और प्रेम स्वरूप को जिसने धारण कर रक्खा है। एकान्त में बैठ कर जो आत्म चिन्तन करता है और तमाम संसारी पदार्थों से जो वैराग्यवान रहता है। शरीर का आधार एक आत्मा ही जो देखता है, कर्म फल हर वक्त जो नारायण के अर्पण करता है और साक्षी स्वरूप को साक्षात् करके अन्तर विषे जो लीन रहता है। तमाम शरीर की गति से ऊँचा हो कर शब्द स्वरूप में जो स्थित हुआ है। द्वन्द्व विकार में जिसकी बुद्धि चलायमान नहीं होती है, वह ही महापुरुष सर्व उपमा योग्य धर्म के जानने वाला है। और परम ज्ञानी है, उसकी शिक्षा और रहनी साधारण जीवों के वास्ते कल्याणकारी है। वह ही नमस्कार करने योग्य है। समता धर्म के भेद को उसी ने जाना है। धर्म की प्राप्ति का फल उस महापुरुष ने अपना निज स्वरूप "समता आनन्द" प्राप्त कर लिया है और इस संसार से पूर्ण होकर चला है। उसी के जीवन आनन्द से धर्म की महिमा अनन्त स्वरूप में पाई गई है। सत् बुद्धि करके विचार करें और सत् धारणा में मन को लगायें इसी में असली खुशी है।

३६. तमाम पन्थ, भेद और मज़ाहब का झगड़ा अज्ञान में है। वास्तव में मज़हब का कोई स्वरूप नहीं है। केवल समता आनन्द ही एक निर्मल धर्म है। जीव शरीर की कैद में आकर पन्थ व मज़हब का अभिमानी हो जाता है। वास्तव में जीव का कोई मज़हब नहीं है। जीव को बन्धन सिर्फ अपनी कल्पना का ही है। कल्पना ही को माया भ्रम कहते हैं। निर्बन्ध अवस्था ही असली खुशी और आनन्द है। उसी तत्व को समता कहते हैं यानी हर हालत में पूर्ण तमाम संसार का वह ही जगह मर्कज़ है और जीव की आनन्दमयी हालत भी वह ही है और सत्पुरुषों की सार प्राप्ति भी वह ही अवस्था है।

३७. निर्वाण अवस्था की प्राप्ति के जो यत्न सत पुरुषों ने बताए हैं यानी अपने सतविचार प्रगट किये हैं वह ही मज़हब की सूरत में

जाहिर हैं। उन शुभ गुणों पर सही अमल करने से कल्याण होती है जिस तरह कि सतपुरुषों ने खुद अमल किया है।

३८. जीव को वास्तव में आज़ादी की चाहना है, मगर अज्ञानवश होकर कर्म फल भोग में आज़ादी चाहता है इस नासमझी को लिए हुए आवागवन के चक्र में फिरता रहता है। असली आनन्द को प्राप्त नहीं हो सकता है; यानी तमाम प्रकृति का जाल कर्ममयी है। जीव प्रकृति के मोह में फंसकर कर्मों की कैद में आ जाता है और कई जन्म तक भरमता रहता है। इस भ्रम अन्धकार को नाश करने की खातिर समता ज्ञान है, जिसको प्राप्त करके जीव पूर्ण रूप हो जाता है यानी अपने आप में लीन हो जाता है।

३९. जिस गुणी पुरुष ने अपने कल्याण की खातिर किसी सतपुरुष के सत उपदेश को धारण किया है और हर घड़ी ईश्वर प्राप्ति का यत्न करता है। और मज़हबी वादमुबाद से जो मुतलक आज़ाद रहता है, वह किसी वक्त ज़रूर ही पूर्ण आनन्द को प्राप्त हो जावेगा।

४०. सत विश्वास करके जिसने अपने साक्षी पुरुष का चिन्तन किया है और अपने आप को कर्म जंजाल से हर वक्त जो आज़ाद करता है यानी निष्काम कर्म को धारण किये हुए है, स्वार्थ अंधकार को जिसने हृदय से नाश कर दिया है और हर वक्त परोपकार और पर सुख में जो लगा रहता है। अपने मन को ईश्वर नाम के साथ जिसने एक कर दिया है वह ही गुणी पुरुष अपने अंतर विषे ब्रह्म प्रकाश को प्राप्त हुआ है और इन उपाधि से मुक्त हुआ है उसने असली धर्म को जाना है और वह ही सत पुरुष है। उसकी हिदायत आनन्द के देने वाली है। इस वास्ते वादमुबाद को छोड़ कर अपनी आत्मिक उन्नति करनी चाहिए। सत श्रद्धा से सत धर्म को धारण करके समता आनन्द को प्राप्त होना ही परम तप है हर वक्त कोशिश करनी चाहिये।

४१. तमाम बज़ुर्गों का जीवन स्वरूप तो धर्म के स्वरूप में असली

मालूम होता है यानी निष्कामता, निर्मानता उदासीनता, निश्चलता और परोपकार आदि गुणों सहित है तो फिर यह दुनियाँ में मज़हबी कशमकश का कारण क्या है ? असलियत यह है कि शरीर सम्बन्धी जो रिवाज क़ायम है, वह धर्म की सूरत में जानकर हरएक छोटी अक़्ल वाला तास्सुब और बुग़्ज को अख़्त्यार कर लेता है।

४२ शरीर सम्बन्धी जो धर्म संस्कार हैं वह आरज़ी हैं। इन पर झगड़ा करना महज़ नादानी है। असली धर्म जिससे मन पवित्र होता है। जिस तरीका को अख़्त्यार करके मन ईश्वर विश्वासी हो जावे और मान, मद, ईर्षा से छुटकारा पाए वह धर्म निजात के देने वाला है। शरीर सम्बन्धी संस्कार अलहदा २ स्वरूप में हर एक मज़हब के हैं। यह वक्त के मुताबिक महापुरुषों ने ज़ाहिरी धर्म के चिन्ह क़ायम किये हैं। विचार तो इस बात का करना है कि जाहिरा तो किसी पन्थ के चिन्ह अख़्त्यार कर लिए मगर अन्दरूनी वह बिलकुल असलियत से बेबहरा होकर मलीन कर्मों में विचर रहा है वह किसी सूरत में भी धर्मवान नहीं हो सकता ख़्वाहे ज़ाहिरी कितने भी रूप क्यों न बनाये।

४३. शरीर सम्बन्धी जो धर्म संस्कार हैं यानी कोई केसधारी है, कोई रुण्ड मुण्ड, कोई तिलकधारी है। कोई कुछ भेष धारण करता है कोई कुछ, कोई शरीर का अंग चीण करके बुन्यादी चिन्ह अख़्त्यार करता है। इन सब से बिलकुल आत्मिक उन्नति नहीं हो सकती। यह सिर्फ दिखलावा है और अपने आप को ज़ाहिर करना है कि मैं फलाँ मत और पेशवा को मानने वाला हूँ।

४४. सिर्फ पेशवाओं के ज़ाहिरी चिन्ह अख़्त्यार करने से असली खुशी समता प्राप्त नहीं होती। जब तक कि सही तौर पर पेशवाओं के नक्शे क़दम पर न चले और अपने अन्दर से स्वार्थ अंधकार का त्याग न करे और निष्काम कर्म की धारणा न करे। ज़ाहिरी चिन्ह अख़्त्यार करने सिर्फ उतने ही माने रखते हैं जिस तरह कि बच्चा को विद्या की खातिर स्कूल में बिठाया जाता है। आगे जब तक बच्चा पूरी कोशिश

विद्या हासिल करने की न करेगा, तब तक कभी भी विद्वान् नहीं हो सकता ख़्वाह सारी उमर स्कूल में क्यों न जाता रहे।

४५. ज़ाहिरी चिन्ह वक्त, देश और जनता के ख्याल के मुताबिक जारी होते आये हैं और तबदील भी हो जाते हैं। इस वास्ते यह असल धर्म नहीं है बल्कि रिवाज है। इन पर झगड़ा करना असली मानुषपने से विरुद्ध है। हरएक का गुण धारण करना चाहिए न कि वादमुबाद में अपनी बुद्धि को भ्रष्ट किया जावे।

४६. जिस पन्थ या मज़हब में जो है वह अपनी ज़िन्दगी को सही असूलों पर ले जाकर राहते अबदी हासिल करे। यह असली कोशिश उस मज़हब की और उसके पेशवाओं की हिदायत उसको हो रही है। अगर अपनी सफ़ाई क़ल्ब को छोड़कर महज़ ज़ाहिरी चिन्ह के अख्त्यार करने से जो मज़हबी लाफ़ मार रहा है वह असली जाहिल है और अपने बजुर्गों की सही तालीम से नावाकिफ़ है। वह कभी भी मालिके

अज़ाब दे रही है । इन ही दो रास्तों पर चलकर बुद्धि निर्मल होती है और समताआनन्द को हासिल कर सकती है ।

४९. लाग़र्ज़ी फेल यानी निष्काम कर्म का निर्णय यह है कि तमाम कर्मों के फल को ईश्वर अर्पण करना और ख़ुशी व ग़मी से मुबर्रा हो जाना, यह हालत ही समताआनन्द की है । दूसरा रास्ता जो महज़ ईश्वरीयतत्व का विज्ञान है उसमें अपनी अनानियत को छोड़कर अपनी ज़ात को ही मालिके कुल जानना है । इसको ज्ञानयोग करके महापुरुषों ने विचार किया है । एक रास्ता में मालिके कुल को फ़ाइल जानकर इबादत करनी है । दूसरे रास्ता में ज़ाते आला को ग़ैर फ़ाइल जानकर इबादत करनी है । यह दोनों तसव्वर एक आमिल के अन्दर होते हैं । इन तसव्वरों की ताक़त से तमाम दुर्मत के जाल से अबूर पा जाता है ।

५०. जिसने सही कोशिश करके अपनी ग़फ़लत का इलाज नहीं किया, वह किसी मज़हब को अख़्त्यार करने से कभी ख़ुशी हासिल नहीं कर सकेगा । तमाम मज़हब और पन्थ यह ही बतलाते हैं कि इस फ़ना होने वाली दुनिया में आकर लाफ़ानी हस्ती की तहक़ीक़ात करो जो असली ख़ुशी है और रंजोग़म से बालातर है । अपनी जिन्दगी को हर वक्त साबर व साकिन हालत की तरफ़ राग़िब करना असली धर्म है और तमाम बुज़ुर्गों का जीवन यह ही है । हर एक मनुष्य को चाहिए कि ख़्वाबे ग़फ़लत से बेदार होकर ख़्वाहिश रूपी अज़ाब से मुख़्लिसी हासिल करे । और समता धर्म में अपने आपको वक्फ़ करके समता-आनन्द को प्राप्त करे, जो इस जीव का असली मुक़ाम है । हर वक्त सही कोशिश इख़्त्यार करना ही असली ख़ुशी के देने वाला है ।

(ख) समता मार्ग सन्देश

१. समता मार्ग में आत्म निश्चय और लोक सेवा मुख्य साधन हैं।

२. समता मार्ग में सत्संग सम्मेलन एक अधिक ज़रूरी नियम माना गया है जिसमें हाज़िर होकर अपनी कमज़ोरियों का विचार करना और सत् नियमों को अपनाने की खातिर यत्न करना लाज़मी है।

३. समता मार्ग में देवी देवताओं और मूर्ति पूजा उनके सही आदर्श अनुकूल गुण व कर्म की धारणा असली पूजा मानी गई है।

४. समता मार्ग में सूतक पातक की निवृत्ति की ख़ातिर सत्संग का सम्मेलन मुख्य साधन माना गया है।

५. समता मार्ग में सुबह व शाम ईश्वर स्मरण व ध्यान करना लाजमी निश्चित किया गया है।

६. समता मार्ग में सादगी, सेवा, सत्य सत्संग सत्स्मरण की धारणा पूर्ण भाव से धारण करनी लाजमी मानी गई है।

७. समता मार्ग में जो पुस्तक आत्म सम्बन्धी विचार वाली हो उसका स्वाध्याय करना लाजमी है।

८. समता मार्ग में वक्त की पाबन्दी, नुमायश और मुनश्शी चीजों से परहेज करना सार साधन माना गया है। यानी धर्म युक्त काम में पूरी वक्त की पाबन्दी होवे। नुमायश गाहों और नशों से मुख़लिसी हासिल करनी।

९. समता मार्ग में तीर्थ यात्रा असली सत्संग ही माना गया है।

१०. समता मार्ग में एक ईश्वर विश्वास परम धर्म माना गया है। और किसी चीज़ का भरोसा करना दुर्मति है।

११. समता मार्ग में अपनी उन्नति का पूर्ण यत्न करना असली निश्चय है। किसी की गति करने का हक रखना और किसी से गति चाहना यह मन्द निश्चय है। यानी सत्पुरुषों की हिदायत के मुताबिक अपने अन्तःकरण की शुद्धि करना परम सिद्धि है।

१२. समता मार्ग में निष्काम कर्म की साधना मुख्य यत्न है यानी तमाम कर्मों को ईश्वर विषे समर्पण करना और उसी की आज्ञा में दृढ़ विश्वासी होना। सुकाम बुद्धि यानी कामना रख कर ईश्वर की शक्ति को छोड़कर कई देवी, देवताओं और ग्रहों की पूजा करनी और याचना करनी बिलकुल मना है। प्रारब्ध कर्म को कोई शक्ति बदल नहीं सकती, इस वास्ते ईश्वर विश्वास को छोड़ कर दूसरे का भरोसा रखना कल्याण के देने वाला नहीं है।

१३. समता मार्ग में हर एक सुकृत कार्य के शुरू करने में ईश्वर की स्तुति करनी लाज़मी है और किसी चीज़ का आधारी होना मना है।

१४. समता मार्ग में दुनियावी रस्मोरिवाज को बिलकुल साधारन करना और शुद्ध रीति वाली रस्म का बर्ताव में लाना लाज़मी है। दीगर तमाम तोहमात का त्याग लाज़म है।

१५. समता मार्ग में हर एक अधिकारी की यथा योग्य सेवा करनी लाजमी है। लोक दिखलावे की खातिर प्रपंच बिलकुल मना है।

१६ समता मार्ग में, सही वक्त, सही कोशिश, सही विश्वास और सही संगत को धारण करना लाज़मी है।

१७ समता मार्ग में शारीरिक अवस्था का विचार और उसके मुताबिक धर्म मार्ग में बड़ी से बड़ी कोशिश करना लाज़मी है।

१८. समता मार्ग में तमाम प्रेमी अपने २ परिवार को समता

अनुकूल बनाएँ यह हर एक समतावादी का पहला फ़र्ज़ है और छोटे बच्चों को शुरू से समता की तालीम में प्रवृत करना परम धर्म है।

१६. समता मार्ग में ईश्वर आज्ञा को दृढ़ करके धारण करना परम साधन है। कर्म और नेह कर्म भेद को जानना विशेश सत्संग है।

२०. समता मार्ग में आत्मचिन्तन करना और सतकर्म को धारण करना सार भक्ति है।

२१. समता की तालीम आम हिन्दू सम्प्रदाय में और दीगर मजाहब में इस तरह है जिस तरह माला के मनकों में धागा।

२२. समता की तालीम हर एक मजहब की परस्तिशगाह में जाने की इजाजत देती है ताकि उस जगह जा कर सही वाक़यात को हासिल करें और अपने सत्संग में भी तमाम भाव की जनता को प्रेमपूर्वक स्वागत करने की और सत्‌विचार सुनाने की इजाजत देती है।

२३. दुनयावी रस्मोरिवाज जिस तरीका के जिस सम्प्रदाय में रायज हैं उन पर चन्दां वादमुवाद करने की कोई ज़रूरत नहीं।

२४. समता की तालीम इख़्लाकी जिन्दगी, रूहानी ज़िन्दगी और देशभक्ति में हर तरह से कुर्बानी करके अपने जीवन को अमली बनाना सिखलाती है।

२५. समता की तालीम सही कानूने कुदरत का मुताल्या करने में और अपने आपको कुदरती जीवन बनाने के वास्ते हिदायत करती है।

२६. समता की तालीम तमाम ईखलाकी बज़ुर्गों के जीवन आदर्श का विचार सुनना और इस पर कारबन्द होना सिखलाती है।

२७. अगर कोई नासमझी से सही ईश्वरी कानून से नावाकिफ़ और कई तरह के तोहमात में फँसा हुआ है उसको प्रेमपूर्वक अच्छी तरह समझाना हर एक समतावादी का प्रथम धर्म है।

२८. अगर सही ग़ौर करके अपने जीवन स्वरूप को सही धर्म में ले

आवे तो उसकी मर्ज़ी, नहीं तो ज्यादा वादमुबाद करना समता के असूल के खिलाफ़ है।

२६. समता मार्ग में निष्काम भाव से सत्कर्म की धारणा असली कल्याणकारी यत्न माना गया है। तमाम गुणी पुरुषों का मार्ग यही है।

३०. समता की तालीम धर्म मार्ग पर पाबन्द करती है और तोहमात से निजात दिलाने वाली है। इस वास्ते हर एक प्राणी मात्र सही विचार करके समता के असूलों पर चल कर अपनी ज़िन्दगी को मुकम्मिल करे जिससे इस संसार में आने का असली समर यानी परम शाँति प्राप्त हो जावे।

(ग) बुद्धि की पूर्ण व अपूर्ण अवस्था का निर्णय

१. जीव की बन्धन और मुक्त हालत का विचार करना और बंधन स्वरूप कर्म का त्याग करना और निर्बन्ध अवस्था की प्राप्ति का सत्यत्न धारण करना इन भावों का विचार सम्मिलित होकर करना असली सत्संग है।

२. समता सत्संग में हर एक व्यापारिक और परमार्थिक कमज़ोरी का विचार करना और सत्‌नियमों को धारण करने का पुरुषार्थ करना हर एक सत्संगी का मूल साधन है। यानी मलिन कर्मों का त्याग करना जो परमार्थिक बुद्धि को नाश करने वाले हैं।

३. वक्त की पाबन्दी अधिक जरूरी समझ कर हर एक दुनियावी कार्य और परमार्थिक कार्य बरमौका करने चाहियें यानी सोना, जागना, खाना, पीना, सत्संग, दान, तप, भजन वग़ैरा वक्त के मुताबिक होने चाहिए।

४. कर्म गति का विचार करना चाहिये यानी कर्मों का प्रगट और लय होना किन किन भावों से होता है जब तक कर्म के मार्ग का चित्त में पूर्ण निर्णय न होवे तब तक कभी भी जीव अपनी उन्नति नहीं कर सकता।

५. सत्संग द्वारा बुद्धि के पूर्ण रूप को विचार करना चाहिये क्योंकि कुल संसार का चक्र बुद्धि की कमीबेशी में चल रहा है। बुद्धि की लीन अवस्था सत्स्वरूप आत्मा है। बुद्धि की विचरित हालत कर्म फल की वासना है। विचरित हालत में कल्पना द्वारा संसार को अनुभव

करती है और लीन अवस्था यानी समाधि में केवल आनन्द स्वरूप को अनुभव करती है।

६. बुद्धि सात प्रकार की हालतों में बिचरती है और रंग रंग की कल्पना को धारण करके दुख व सुख में चलायमान होती है और अनेक स्वरूप को धारण करती है। यह ही भव दुस्तर मार्ग है, इसी से पार होने के वास्ते मानुष जन्म है।

७. बुद्धि की चार अवस्था अंधकार की हैं और तीन प्रकाश की, अंधकार की अवस्था में जब तक बुद्धि गिरफ़्तार है, तब तक कभी भी कामना और कल्पना से नहीं छूट सकती।

८. बुद्धि की पहली अवस्था अन्धकार की यह है कि अति देह के मद में गिरफ़्तार होकर अपने स्वार्थ कर्म में लीन रहना और स्वार्थ की खातिर अधिक से अधिक यत्न करना। अन्तर से न किसी की सीख मानना और न ही ईश्वर की हस्ती पर विश्वास रखना। जो कुछ भी करना अपनी गर्ज़ की ख़ातिर। यह भावना चण्डाल स्वरूप की है यह अधिक मलीन अवस्था है। इस अवस्था में संसार के भोगों में अग्नि की मानिन्द जलना रहता है।

९. बुद्धि की दूसरी अन्धकार अवस्था यह है कि स्वार्थ की खातिर अनेक प्रकार के जादू, यन्त्र, मड़ी, मसान, भूत प्रेत आदिक इष्ट देव बना कर पूजना और पाप कर्म में अधिक प्रीति रखनी। निज स्वार्थ की ख़ातिर हर प्रकार के पाप कर्मों को धारण करना और अपने आप को बहुत चतुर बुद्धि जानना। अन्तर से ईश्वर की हस्ती को न मानना और इन अति तोहमात में गिरफ़्तार रहना और लोगों को भी अंधकार की तरफ़ रागिब करना। बड़े २ पाखण्ड को धारण करना। यह हालत भी अति दुखदाई है। जीव हर वक्त जलता रहता है और पाप-कर्मों के ज़रिये अधिक कष्ट उठाता है।

१०. बुद्धि की तीसरी हालत अंधकार की यह है कि स्वार्थ की ख़ातिर अनेक प्रकार की साधना धारण करनी और देवी देवताओं को

बलियाँ चढ़ा कर अपने स्वार्थ की याचना करनी और दान पुण्य भी स्वार्थ की ख़ातिर करना। और हर वक्त संसारी पदार्थों के एकत्र करने में मग्न रहना। परमार्थ से बिल्कुल प्रीति न रखनी। ईश्वर पर विश्वास कभी भी न होना और अपनी चतुराई में अपने समान किसी को न देखना अपनी मान बड़ाई की खातिर बड़े २ ढंग विचार करने। किसी हालत में परहित और परोपकार को धारण न करना। इस अवस्था में भी जीव अधिक दुखी रहता है।

११. बुद्धि की चौथी अंधकार अवस्था यह है कि अपने स्वार्थ की ख़ातिर ग्रहों और गुरु पीर अवतारों की पूजा करनी। लोक दिखलावा ज़्यादा प्रगट करना। संसारी भोगों की ख़ातिर कुछ तप जप भी करना और कुछ दान भी करना। तीर्थ यात्रा आदिक अनेक साधन धारण करना मगर अन्तर से निज स्वार्थ में लीन रहना। संसारी ऐश्वर्य का ज्यादा लोभ रहना। और लोक यश की ख़ातिर कुछ धर्म के कार्य भी धारण करने। कुछ २ सत्पुरुषों के जीवन हालात को भी विचार करना और मौत का भी विचार करना। मगर स्वार्थ अन्धकार को भी त्यागना और न ही ईश्वर विश्वासी होना। इस अंधकार अवस्था में भी जीव परम दुखी रहता है। प्रथम की दो अवस्था अधिक अंधकारमयी हैं। इन ही को राक्षसी स्वरूप जानना चाहिये और बाकी दो अवस्थाओं के मानुष धर्म मार्ग को प्राप्त कर सकते हैं अगर उनको सत मार्ग चिताने वाला महापुरुष हासिल हो जावे।

(i) बुद्धि की तीन अवस्था प्रकाश की यह हैं

१२. पहली अवस्था सत्य असत्य का पूर्ण निर्णय समझना और सत् कर्मों में प्रीति रखनी। मौत से डरना और स्वार्थ की आग से मुख़लिसी चाहनी। किसी सत् पुरुष की शिक्षा द्वारा अपनी आत्मिक उन्नति करनी और लोक सेवा का अधिक प्रेम रखना, न्यायकारी होना, अपने सत् विश्वास में दृढ़ रहना, हर एक जीव की भलाई चाहनी, सत्

व्यवहार धारण करना और अपने देह मद का त्याग करना, ईश्वर विश्वासी होना, गुरु बचन को सत् करके मानना, हुज्जतबाज़ी और ममख्वरी का बिल्कुल त्याग कर देना। हर घड़ी हर लमह परम शान्ति का विचार करना। सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग और सत स्मरण आदि महा गुणों का धारण करना। अच्छी तरह अपने मन की उपाधि को समझना और बार २ सत पुरुषों की शिक्षा द्वारा अपने अन्तःकरण को शुद्ध करना। जब ऐसी भावना जीव को प्राप्त होती है। तब इसको कुछ शान्ति का पता लगता है और संसार में आने का सार निर्णय विचार करता है। इस अवस्था में आकर जीव सत्पुरुषार्थ को धारण करता है और अपने जन्म जन्म के पापों से छूटने की खातिर साधना में प्रवृत्त होता है। इस अवस्था वाले जीव को असली भक्त जानना चाहिये। उस वक्त उस गुणी पुरुष ने सब तोहमात का त्याग करके एक आत्म चिन्तन की तरफ मन को लगाया है, किसी वक्त अपने सत् यत्न के द्वारा वह गुणी पुरुष परम सिद्धि को प्राप्त हो जावेगा।

१३. दूसरी अवस्था बुद्धि के प्रकाश की यह है कि ईश्वर को सत्य जानना और संसार को भ्रमरूप जानना। अन्तर से सब संसारी पदार्थों से वैराग्यवान् रहना। सत् गुरु उपदेश को धारण करके ईश्वर भक्ति में दृढ़ होना और संसारी सुख दुख सब ईश्वर की आज्ञा में देखना। हर एक जीव का भला चाहना और तन मन धन से सेवा करनी। दूसरे का कष्ट बरदाश्त करना और खुद किसी को दुख न देना। हर वक्त उदार चित्त और क्षमावान रहना। दृढ़ निश्चय से ईश्वर नाम का अभ्यास करना और तमाम शरीर के कर्म ईश्वर आज्ञा में अर्पण करना ऐसा परम तप जिस गुणी पुरुष ने धारण किया है वही देवता है और परम शान्ति आत्म स्वरूप को अन्तर विषे अनुभव करके उसके परायण हो गया है। आनन्द अवस्था को उस ही गुणी पुरुष ने जाना है। वह ही भक्त और ज्ञानी है संसार की असलियत को उसी ने जाना है और अपने कल्याण की खातिर परम साधन को धारण किया है।

एक ईश्वर के बिना किसी की चित्त में चाह नहीं रखता है वह पुरुष धन्य है ईश्वर के स्वरूप में जल्द ही लीन हो जावेगा और परम सिद्धि को पावेगा।

१४. तीसरी अवस्था बुद्धि प्रकाश की यह है कि तमाम शरीर विकारों से मन का उपरम हो जाना और बुद्धि का आत्म स्वरूप में स्थित हो जाना और अन्तर विषे सत् शब्द को प्राप्त कर लेना। हर वक्त ईश्वरानन्द में मखमूर रहना। होना और न होना दोनों भावों में आसक्त न होना। विशाल बुद्धि को धारण करके एक ईश्वर में हर वक्त लवलीन रहना और परमानन्द रस का अन्तर विषय पान करना। इस अवस्था को उसी महात्मा ने जाना है। सब संसार की बाज़ी को उसने जीत लिया है और काल के भय से मुक्त होकर चिरंजीव पद को प्राप्त हुआ है। यह ही अवस्था असली शाँति है। इस अवस्था को प्राप्त करने की खातिर तमाम धर्म कर्म है। जिस गुणी पुरुष ने इस धाम को प्राप्त करने का यत्न धारण नहीं किया है उसने मानुष जन्म को अकार्थ त्याग किया है और संसार से तृषित होकर गया है। तमाम गुणी पुरुषों का परम धर्म यही है कि इस परम प्रकाशमयी अवस्था को प्राप्त करने में हर वक्त निश्चल रहें। यह अवस्था ही असली धाम है जिसको प्राप्त करके जीव ब्रह्म स्वरूप हो जाता है और अपने आपको सर्वानन्द स्वरूप जानता है। जिस पुरुष को यह अवस्था प्राप्त हुई है उसे ही अवतार जानना चाहिये। सब संसार का खेल उसने यथार्थ रूप से जाना है और अपने निज स्वरूप में हर वक्त मग्न रहता है यही परम शाँति है। हर वक्त इसकी प्राप्ति की कोशिश करनी चाहिये।

(घ) समदर्शी और समवृत्ति मार्ग का उपदेश

ज़बानी कोई मानुष न समदर्शी हो सकता है और न ही समवृत्ति। यह आत्म स्थिति की हालतें हैं। जिस वक्त अन्तर विषय आत्म स्थिति प्राप्त होती है उस वक्त इस आनन्दमयी हालत का पता लगता है। अगर इसका विस्तार किया जावे तो कई ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं मगर न वक्त है और न ही विस्तार की ज़रूरत है। सिर्फ चन्द लफ्ज़ों में हालात लिखे जाते हैं सो अनुभव कर लेवें।

समदर्शी—खुशी व ग़मी से मुबर्रा हो जाना, कर्म फल की कामना से मुक्त हो जाना हर वक्त आत्म स्वरूप में स्थित रहना, इन्द्रियों के चलायमान होने से बुद्धि का चलायमान न होना। एक आत्मसत्ता ही अन्तर बाहिर प्रतीत होना सब कुछ संसार का चक्र आत्मा के आधार देखना। देह की ममता से मुक्त होकर आत्मपरायण होना। वैरी, मित्र, लाभ, हानि आदि द्वन्द्व कल्पना से न्यारा हो जाना। यह लक्षण समदर्शी पुरुष के हैं। सार यह है कि कर्मों के होने और न होने में समभाव आत्मा में दृढ़ रहना। जीवन मुक्त अवस्था भी इसी को कहते हैं। ऐसी धारणा वाला संसार के वास्ते दुर्लभ है।

समवृत्ति—ग्रहण और त्याग की कामना से मुक्त होना आत्म आनन्द में अति आरूढ़ हो जाना देह से विदेह हो जाना आकार स्वरूप का दृष्टि न होना। कर्त्तापन यानी फ़ाइलियत (कर्त्तापन) का बिलकुल अभाव हो जाना। कर्म और कर्मफल के वरतने में बिलकुल बेसुध होना और केवल ब्रह्म स्वरूप का ही अनुभव करना। ऐसी हालत को प्राप्त

हुए महापुरुष न कुछ संसार का भला कर सकते हैं और न कुछ कह सुन सकते हैं। बिलकुल अपने निज आनन्द में मुस्तग़र्क रहते हैं।

प्रेमी जी मुख्तसिर सा हाल लिखा गया है विचार कर लेवें। प्रेमी जी समदर्शी होना कोई सहल बात नहीं है। यह आखिरी स्टेज योग की है और समवृत्ति हालत इससे भी अधिक मुश्किल है। जबानी कथनी से न समदर्शी हो सकता है और न समवृत्ति पद को प्राप्त हो सकता है। इस समता के मेराज को पहुँचने के वास्ते निष्काम कर्म की सीढ़ी दरकार है। निष्काम कर्म करते-करते आत्म स्थिति को प्राप्त हो जाता है जो समदर्शी और समवृत्ति का धाम है। जब आत्मा का अन्तरविषय अनुभव ही नहीं किया। देह के भोगों में बिलकुल आसक्त जो है वह भोगों की खातिर अगर समवृत्ति वाला बनता है वह सख्त जाहिल है और अति नीच बुद्धि वाला है पहले समदर्शी पद को प्राप्त हो करके ही समवृत्त हालत विदेह अवस्था को प्राप्त हो सकता है। इस वास्ते निष्काम कर्म द्वारा समदर्शी पद में स्थिति हासिल करनी चाहिए फिर खुद बखुद ही समवृत्ति हो जाता है। जो आत्मतत्व के अनुभव बग़ैर समदर्शी और समवृत्त का अभिमानी है वह सख्त पाखण्डी और दुराचारी है। प्रेमी जी यह परम शुद्ध अवस्था उस जीव को प्राप्त है जो देह के विकारों से मुक्त होकर आत्म स्थिति को प्राप्त हो चुका है।

समता स्थिति अपना मेराज समझ कर हर वक्त कर्मों के फल से मुक्त होकर निष्काम कर्म में दृढ़ होना चाहिये। ज्यों २ आत्मानन्द प्राप्त होवेगा त्यों त्यों समदर्शन रूप में लीन होता जावेगा। आखिर विदेह मुक्त अवस्था को प्राप्त हो जायगा जो परमानन्द स्वरूप है। समदर्शी और समवृत्ति आत्म स्थिति की हालत है। देह अभिमान और देह के भोगों से आत्मा पवित्र है कोई ही पुरुष इस हालत को प्राप्त होता है।

सार खुलासा यह है कि पहले निष्काम कर्म साधन करना चाहिये जिससे कर्म फल की आशा से मुक्ति मिले जिस वक्त ऐसी साधना परिपक्क हो जावे उस वक्त आत्म स्वरूप में अन्तर विषय निश्चल हो जाता है। यही अवस्था समाधि की है। सब कामना और कल्पना चित्त की नाश हो जाती है। वह सत पुरुष फिर संसार के कल्याण की खातिर कोशिश करता है। अपना सब मनोरथ पूर्ण कर चुका है। यही हालत समदर्शी यानी जीवन मुक्ति की है। इससे ज़्यादा जिस वक्त आत्म आरूढ़ हो जाता है उस वक्त समवृत्ति हालत यानी विदेह मुक्ति को प्राप्त होता है। पहले समदर्शी अवस्था को प्राप्त करना चाहिये जो ख़्वाहिश और ग़ज़ब से बिलकुल पवित्र है। बिना समदर्शी होने के सम-वृत्ति बिलकुल नहीं हो सकता। जो भोगों को भोगने में समवृत्ति बनता हैं वह अति पशु है। जीव की असली शांत अवस्था समभाव ही है मगर इस असल मकसद को भूल कर कई मज़हबी बादमुबाद में दुनियाँ खराब हो रही है। इस वास्ते फिर समता की तालीम ईश्वर आज्ञा से प्रगट हुई है इसको असली जामा पहना कर अपने निज आनन्द स्वरूप को प्राप्त होना चाहिये। जिससे संसार का दुख दूर हो जावे। हिन्दू धर्म का असली मेराज समता ही है। तमाम बज़ुर्गों का जीवन समता का आदर्श दिखलाता है। बताओ आजकल क्या अन्धेर-गर्दी मची हुई है। क्या आलिम, क्या मूर्ख, क्या गुरु, क्या पन्थ आचार्य सब बादमुबाद की आग में जल रहे हैं असल समता धर्म को भूल गये हैं जो जीव का असल ठिकाना है। इस लिये ईश्वर आज्ञा से फिर यह विचार प्रगट हुआ है। इसको धारण करके अपनी आत्मिक उन्नति करें और अंधविश्वास से मुखलिसी हासिल करें जिससे मानुष जन्म सफल हो जावे।

(ङ) ममतायोग सिद्धि

(1) पहला स्मरण अंग

बचन १. मम बुद्धि यानी आत्मानन्द को प्राप्त करने की खातिर प्रथम ईश्वर स्मरण परिपक्व होना चाहिये। अन्तरगत हृदय में नाम का स्मरण जो किया जाता है वह असली स्मरण है। जबान होंठ बिलकुल बन्द होने चाहियें। ऐसी निर्मल धारणा से मन मिथ्या कल्पना को छोड़ कर नाम आधारी हो जाता है और परम विवेक को प्राप्त होता है।

बचन २. मन की निश्चल भावना ज्यों २ नाम में दृढ़ होती है त्यों २ मन वृति रहित होकर एकाग्र होता जाता है। मन की एकाग्रता ही असली स्मरण है। ऐसी हालत को प्राप्त करने की खातिर प्रथम आहार, व्यवहार और संगत पवित्र होना चाहिये क्योंकि मन शुद्ध हो कर ही नाम आधारी होता है।

३. मिथ्या नाम रूप कल्पना मन को हर वक्त अशाँत करती रहती है। किसी हालत में भी तसव्वरंफानी यानी संकल्प विकल्प से आजाद नहीं होने देती है यह ही बेकरारी दुख व सुख और जन्म व मरण का कारण है। जब तक यथार्थ भावना से सत्स्मरण में मन को दृढ़ न किया जावे तब तक कभी भी इस अनर्थ कल्पना के क्लेश से आज़ाद नहीं हो सकता है।

बचन ४. ईश्वर श्रद्धा प्रेम की दृढ़ता से मन मिथ्या नाम रूप कल्पना को छोड़ कर सत्नाम की जब प्रतीत करने लग जाता है उस

वक्त अन्तर हृदय में शाँति प्रगट होती है। इस वास्ते सब तरीकों की साधना में मुख्य नाम स्मरण ही है। नाम स्मरण का असर अधिक मन पर होता है और वृत्ति जल्दी शुद्ध हो जाती है।

बचन ५. जिस वक्त ईश्वर नाम में पूर्ण निश्चल हो जाता है उस वक्त संसारी पदार्थों से वैराग्य प्राप्त होता है और ईश्वर प्रेम में मग्न होने की कोशिश करता है और तमाम शारीरिक कर्म निष्काम भाव से ग्रहण करता है।

६. निर्मल भक्ति का अंकुर उस वक्त उस गुणी पुरुष के अन्दर उत्पन्न होता है। ऐसी श्रेष्ठ भावना ही असली कल्याण के देने वाली है। तमाम कथा प्रसंग, तीर्थ, दान, यज्ञ करने में भी यह हालत प्राप्त नहीं होती। केवल नाम स्मरण ही एकाग्रता प्रगट करता है इसलिए तमाम सत्पुरुषों ने नाम स्मरण की बड़ी वडयाई की है।

बचन ७. जो कोई अपना कल्याण करना चाहे यानी संसारी पदार्थों से छुटकारा हासिल करने की कोशिश करे तो उसके वास्ते प्रथम नाम स्मरण ही परम साधन है यह एक खास यत्न आनन्द को प्रकाश करने वाला है।

८. स्मरण का तरीका दुरुस्त होना चाहिये यानी कोई माला से स्मरण करता है, कोई जबान से ऊँचा शब्द उच्चारण करके स्मरण करता है, कोई राग की सूरत में स्मरण करता है। अपनी अपनी हालत में थोड़ी थोड़ी तृप्ति इनमें भी है मगर असली मन को शाँति इन तरीकों से नहीं मिलती है जब तक कि अंतरमुख बिलकुल अडोल होकर स्मरण न किया जावे।

बचन ६. इस वास्ते सही तरीका और सही कोशिश के बगैर मन शान्त नहीं होता है। कई एक गुरु लोग कान में उपदेश देते हैं मगर शिष्य को कुछ भी समझ में नही आती है और कई एक पाँच शब्द का उपदेश देते हैं मगर पता एक शब्द का भी नहीं है। यह अधूरापन कभी भी पूर्णानन्द को नहीं दे सकता है। महज़ मारफ़त के जानने

वाले फकीरों ने परम धाम यानी शब्र की हालत को कई तरीकों से ब्यान किया है मगर वास्तव में भाव एक ही है सिर्फ स्तुति करके कई सूरतें दिखाः हैं एक ही नाम का निश्चय कल्याण के देने वाला है और जो जिज्ञासुओं को ज्यादा नाम स्मरण की हिदायत करते हैं वह एक को भी परिपक्क नहीं कर सकते हैं। ज्यादा कहाँ दृढ़ कर सकेंगे ? सिर्फ भ्रम में ही वक्त गंवा देते हैं असली स्मरण वह ही है जो मन और पवन की सन्धि कर अन्तर गति और बाहिर गति में पूर्ण होवे।

बचन १०. सबसे पहले स्मरण की दृढ़ता, दूसरी हालत में भजन की प्राप्ति, तीसरी हालत में ध्यान अवस्था और चौथी हालत में समाधि यानी हालतें महवियत है। जो आदमी स्मरण की दृढ़ता को छोड़कर पहले ही ध्यान शुरू करने लगता है वह कभी भी निर्विकल्प ध्यान को प्राप्त नहीं हो सकता। वैसे नेत्रों के दबाने से कई रंग की रोशनियाँ देखता है मगर वह सब तत्वों का स्वरूप है असली ब्रह्मनाद को अनुभव नहीं कर सकता है।

बचन ११. जो कथनी मात्र अन्तर की हालतें दूसरे फ़कीरों के शब्द विचार करके दिखलाते हैं और खुद अनुभव नहीं है और न ही अनुभव की कोशिश करते हैं सिर्फ़ जाहिरी नुमायश में गुरूडम फैलाते फिरते हैं ऐसे पाखण्डी न तो खुद किसी शान्ति को प्राप्त हो सकते हैं और न ही दूसरों को कल्याण दे सकते हैं। अगर कोई असली भक्ति को चाहे तो कामिल उस्ताद की शरण ले।

बचन १२. पांच शब्दों का उपदेश जो गुरू देते हैं पुरातन बजुर्गों का विचार करके वह भी असलियत से बेबहरा है। असली शब्द एक है अवस्था उसकी कई हैं यानी ज्यों २ अन्तरगत में लीन होता है त्यों २ कई अवस्थाओं को अनुभव करता है यह नहीं कि उस जगह जो नाम स्मरण करता है वह तबदील हो जाता है। अगर कोई एक नाम का स्मरण छोड़कर कई नामों का स्मरण अन्तरविषय करने लगता है वह असली मेराज तक कभी भी नहीं पहुँच सकेगा।

बचन १३. इस अखण्ड अबिनाशी शब्द की कई ध्वनि होती हैं। मगर नाम एक ही अन्तर विषे निश्चल करना चाहिये जिस वक्त एक नाम को छोड़ कर दूसरा नाम पकड़ेगा वह असली हालत से गिर जायेगा। वैसे कामिल लोगों ने उस परम धाम यानी मेराज को कई नामों से जाहिरी जबान में ब्यान किया है लोगों की रुचि की खातिर मगर अन्तर विषय वह खुद एक ही नाम के आधारी बने रहे। यह खास विचार हर एक जिज्ञासु को पता होना चाहिये।

बचन १४. जिस जिस अवस्था को आमिल अबूर करता है उस कुदरते कामेला का अजीब खेल देखता है मगर नाम एक ही में वृत्ति को डालता है। ऐसी करनी वाला पुरुष एक दिन परम धाम को प्राप्त हो जाएगा। और जो एक नाम को छोड़ कर दूसरे नाम को पकड़ेगा और दूसरे को छोड़कर तीसरे को पकड़ेगा और इस तरह भिन्न-भिन्न नामों का स्मरण करेगा वह कभी भी मुकम्मिल शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकेगा यह ही कामिल फ़कीरों का राज़ है। जो गुरु जिज्ञासुओं को एक नाम की बजाय पाँच नामों का उपदेश देते हैं जो शब्द की अवस्था है वह किसी हालत में भी नाम में परिपक्व नहीं हो सकते हैं और न असली शब्द को अनुभव कर सकते हैं।

बचन १५. नाम के स्मरण से अनाम पद को प्राप्त हो जाता है। यानी अखण्ड शब्द में लीन हो जाता है इस वास्ते एक ही नाम का विश्वासी होना और अभ्यासी होना कल्याणकारी है उस पारब्रह्म परमेश्वर के अनेक नाम सिद्धों ने कल्पित किये हैं मगर साधना में एक नाम का स्मरण कल्याणकारी है। एक नाम का निर्णय यह है कि प्रथम में जो-जो महावाक्य मन में निश्चल किया जावे उसी में मन को लीन कर देना निर्मल साधन है।

बचन १६. मन ऐसा चञ्चल धार वाला है जिस वक्त एक धारणा को छोड़ता है उस वक्त फिर मुश्किल से दूसरी धारणा में दृढ़ होता है

यानी एक नाम को परिपक्व करते-करते अगर दूसरे नाम को अन्तर स्मरण शुरू कर देवे तो फिर वह निश्चलता नहीं रहती। चञ्चल होकर कर्म अभिमानी हो जाता है इस वास्ते एक ही नाम में मन को जज़्ब करना चाहिये यह ही निश्चय परम सिद्धि के देने वाला है।

बचन १७. कई एक गुरु लोग पहले ही ध्यान को सिखलाते हैं मगर यह असली कामयाबी को देने वाला साधन नहीं है। जब तक परम तत्व अन्तर प्रगट ही नहीं और न ही बुद्धि अनुभव कर सकती है तो ध्यान किसका करेगा ? जो अन्तर बीनाई में रोशनियाँ देखी जाती हैं वह तत्वों की रोशनियाँ हैं मन इनमें निश्चल नहीं होता है जब तक कि स्मरण की भट्ठी में मन लीन न हो जावे।

बचन १८. तमाम कामिलों का प्रथम साधन स्मरण ही है। स्मरण के बल से बुद्धि पवित्र होकर भजन ध्यान और समाधि अवस्था को प्राप्त हो सकती है। स्मरण की हालत में खामोशी लाज़मी है और बोलने के वक्त भी बेहूदा विचार भी उच्चारण नहीं करना चाहिये बल्कि शुद्ध और आनन्ददायक विचार होना चाहिये। इससे मन पर अच्छा असर पड़ता है।

बचन १९. स्मरण भी ऐसा होना चाहिये कि शरीर की हर हालत में नाम स्मरण बना रहे। ऐसे दृढ़ निश्चय वाला पुरुष अन्तर विषय ब्रह्म शब्द को अनुभव कर सकेगा। मन को रोक-रोककर नाम में लगाना चाहिये तब ही मन नाम आधारी हो सकता है। अगर मन को रोका न जावे तो फिर नाम स्मरण को छोड़कर मिथ्या कल्पना में राग द्वेष की आग में जलने लगता है और अति चञ्चल हो जाता है।

बचन २०. दृढ़ निश्चय करके एक नाम में तन मन को लगाना चाहिये और अपनी अनानियत का त्याग करना चाहिए। सब कुछ उस ईश्वर को समझ कर प्रेम करके स्मरण करना ही कल्याणकारी है और कई जन्म की मैल को थोड़े ही अरसा में पवित्र कर देता है। ऐसा स्मरण करने वाले पुरुष अपने अंतरविषय ब्रह्म शब्द को अनुभव करते हैं।

(ii) दूसरा अंग भजन

बचन २१. जब अन्तर विषय ब्रह्म शब्द अनुभव होता है और सुरति उसमें एकाग्र होती है उस हालत को भजन कहते हैं, यानी निश्चल होकर ईश्वर-रस को पान करना और संसारी विषयों से विरक्त होना।

बचन २२. भजन करते-करते यानी ब्रह्म शब्द में एकत्र होते-होते ध्यान की हालत प्राप्त होती है यानी मन तमाम वृत्तियों को त्याग कर ब्रह्म शब्द में एकाग्र होता है और कई रंग के शब्द अन्तर विषय अनुभव करता है। उस वक्त सब कुछ ईश्वर आज्ञा में देखता है और अपनी खुदी को मिटाता जाता है।

बचन २३. शरीर के निचले हिस्सा को छोड़कर सुरीत अंतर मस्तक और नाक की जड़ में स्थित होती है और ब्रह्म शब्द को अनुभव करती है यह ही हालत असली ध्यान की है। तमाम शरीर के कर्मों से बुद्धि निर्मल होकर ब्रह्म शब्द में स्थित होती है।

बचन २४. देह अभिमान इस हालत से गिराने वाला है, इस वास्ते परम गुणी पुरुष जिसको यह अवस्था प्राप्त होती है वह तन, मन, धन करके लोक सेवा में दृढ़ होता है और काफी वक्त निकाल कर ईश्वर भजन में स्थित रहता है। और शारीरिक कर्मों से आजादी हासिल करता है।

बचन २५. अगर कोई आमिल अपनी मेराज हालत का इस अवस्था में ब्यान कर देवे या रिद्धि-सिद्धि दिखलाने लगे तो वह फिर मुश्किल से असली आनन्द को प्राप्त हो सकता है। स्मरण भजन की दृढ़ता से ध्यान दृढ़ होता है।

बचन २६. इस अवस्था में गुणी पुरुष को चाहिये कि अपने मन को बिलकुल संसारी पदार्थों में न जाने देवे बल्कि ईश्वर की रजा (इच्छा) में अपने आपको खत्म करे।

बचन २७. ज्यों-ज्यों अभ्यास में निश्चल होता है त्यों-त्यों अंतर्गत विषय ब्रह्म प्रकाश को अधिक अनुभव करता है और संसारी वासनाओं से मुक्त होकर ईश्वर प्रेम में मग्न रहता है। इस हलात को प्राप्त हुए पुरुष को चाहिये कि क्षमा, दया, शील, निर्मानता, निष्कामता और उदासीनता आदि गुणों को दृढ़ करता रहे। क्योंकि मन ईश्वर आनन्द को छोड़कर फिर शरीर के भोगों में आसक्त न हो जावे। खुराक थोड़ी, निद्रा थोड़ी, व्यौहार थोड़ा ईश्वर भजन में ज्यादा से ज्यादा प्रीति करनी चाहिये।

बचन २८ दृढ़ निश्चय से शब्द को अन्तर विषय पलक-पलक करके अनुभव करना और कर्म वासना को ईश्वर आज्ञा में अर्पण करना ही शब्द स्थिति यानी ध्यान के देने वाला है। भजन में जो आनन्द या सरूर प्राप्त होवे उसको जज़्ब करना चाहिये और निर्मान होकर संसार में विचरना चाहिये।

बचन २९. तमाम संसारी पदार्थों से अधिक प्रीत ईश्वर स्मरण भजन में जिसको प्राप्त हुई है वह शुद्ध अन्तःकरण वाला पुरुष जल्दी ही ब्रह्म में लीन हो जायगा। मन की कल्पना दीर्घ रोग है किसी हालत में भी जीव को शांति नहीं मिलती है, इस वास्ते दृढ़ पुरुषार्थ करके अपने मन को जो सत्‌शब्द में स्थित करता है वह ही अकर्मपद अखण्ड शान्ति को प्राप्त होवेगा।

बचन ३०. क्षण-क्षण जो मन को अखण्ड शब्द में दृढ़ करता है और अभिमान को छोड़ता जाता है वह ही असली ध्यान को प्राप्त हो सकता है।

(iii) तीसरा अंग ध्यान

बचन ३१. जिस वक्त तमाम कल्पना से मन न्यारा हो कर ब्रह्म शब्द में स्थित होता है आकार इष्ट की कल्पना नाश हो जाती है और केवल ब्रह्मानन्द को अनुभव करता है इस अवस्था को ध्यान कहते हैं। वह बड़े भाग्य वाला पुरुष है जिसको यह हालत प्राप्त हुई है।

बचन ३२. इस हालत में प्राप्त होकर ब्रह्म शब्द को निश्चल हो कर अनुभव करता है तब कई रंग की ध्वनि में नाद सुनाई देता है और बिजली की रोशनी भी देखता है और परम सुख का अनुभव करके संसारियों से असली ताल्लुक छोड़ देता है निर्मल स्वरूप में पूर्ण निश्चल होने की कोशिश करता है।

बचन ३३. ईश्वर आज्ञा में तमाम शरीर के कर्मों को निश्चय करके अर्पण कर देता है। कर्म फल द्वन्द्व में समचित्त रहता है और अपने जीवन को कुदरती बना देता है यानी हर हालत में निर्वास होता जाता है।

बचन ३४. ध्यान अवस्था में जो स्थित हुआ है वह ही योगी है और वह ही ज्ञानी है। तमाम कामना और कल्पना से मन न्यारा होकर सत् स्वरूप में स्थित होता है। किसी वस्तु की उसको न कल्पना रहती है और न ही किसी से वह द्वेष है बल्कि प्रेम सरूर में मग्न रहता है।

बचन ३५. ज्यों २ ध्यान में दृढ़ होता है। अन्तर विषय अखण्ड नाद का झिङ्कार सुनाई देता है और उसमें अपने जीवन को प्रवेश करता है। तमाम दुनियाँ को उस परम तत्व का ही प्रकाश

निश्चय करके देखता है। शरीर के भोगों से बिलकुल विरक्त हो जाता है। ईश्वर नाम के बग़ैर और कोई चीज़ उसको मोहित नहीं कर सकती है।

बचन ३६. ईश्वर ध्यान ही असली कल्याण है मगर तमाम कामनाओं के नाश होने से ईश्वर ध्यान प्राप्त होता है। जिस पुरुष ने शरीर के तमाम दुख व सुख को ईश्वर अर्पण कर दिया है। और हर घड़ी अपने मन को सत्शब्द में स्थित करता है वह ही उसका कल्याण अवस्था को प्राप्त होना है ऐसी अवस्था को प्राप्त हुए पुरुष को बिलकुल निर्मान भाव में रहना चाहिये। अगर किसी कर्म का भी अभिमान हुआ तो फिर उस आनन्दमयी हालत से गिर जायगा।

बचन ३७ तकरीबन कोई ही इस अवस्था में आकर ग़लती खाता है नहीं तो इस हालत को प्राप्त हुए पुरुष ज्ञान विज्ञान में पूर्ण होते हैं और ईश्वर परायण हो कर संसार में विचरते हैं केवल एक नाम का ही आधार उनको है।

बचन ३८. रिद्धि सिद्धि की तरफ़ मन को बिलकुल न राग़िब करे निर्मान भाव और सेवक रूप में अपने जीवन को व्यतीत करे। संसारी पदार्थों से हर वक्त निर्वास रहे दृढ़ निश्चय ईश्वर स्वरूप में रखे। शरीर के दुख व सुख को सहन करे। तब ही पूर्ण ज्ञान को प्राप्त हो सकेगा।

बचन ३९ तमाम मन की वृत्तियों को त्याग करके एक अखण्ड शब्द में स्थित होना और सुरती का हर वक्त अकल्पित होना और तमाम कर्मों के फल को ईश्वर समर्पण करना ऐसी धारणा वाला पुरुष ब्रह्मध्यान को प्राप्त हो सकता है।

बचन ४०. तमाम कर्मों की वासना जब नाश हो गई और अपने जीवन को नित ही परोपकार में जो खत्म करता है और तमाम दुनियाँ को ईश्वर का ही स्वरूप जो देखता है अन्तर विषय बिलकुल जो नेह कर्म है यानी ब्रह्म आनन्द में निश्चल है वह ही धैर्यवान-पुरुष ब्रह्म स्थिति यानी समाधि को प्राप्त हुआ है।

(iv) चौथा अंग समाधि

बचन ४१. जिस वक्त बुद्धि ब्रह्म शब्द में दृढ़ हुई और तमाम कल्पना नाश हो गई। अहंभाव बिलकुल मिट गया अपने आपको ब्रह्म स्वरूप ही जानने लगी उस प्रकाश मयी हालत को समाधि कहते हैं।

बचन ४२. इस हालते महवियत को जो प्राप्त हुआ है उसको केवल ब्रह्म ही ब्रह्म अनुभव होता है और वह काल कर्म के चक्र से आजाद हो जाता है। शरीर से बिलकुल न्यारा अपने स्वरूप को देखता है। तमाम कर्म प्रकृति में देखता है उसको ही ब्रह्म ज्ञानी और जगत गुरु कहते हैं। तमाम माया के जाल से विलग होकर अपने सत्स्वरूप में स्थित हुआ है और अपने आपको अकर्म स्वरूप जानता है। इस स्थिति को जो प्राप्त हुआ है सब कुछ उसने जान लिया है और बुद्धि पूर्ण संतोष को प्राप्त हुई है।

बचन ४३. शरीर के कर्मों में किसी हालत में भी समाधि अवस्था को प्राप्त हुआ पुरुष चलायमान नहीं होता है। हर वक्त नेह कर्म स्वरूप ब्रह्म नाद में स्थित रहता है और अपने आप को सब जगत में मुहीत देखता है और तमाम जीवों से अधिक प्रीत करता है। अंतर से बिलकुल असंग रहता है। यह ही विज्ञान अवस्था परम धाम है। इस अवस्था में वह महाज्ञानी अखण्ड नाद में लीन हो जाता है।

बचन ४४. ब्रह्म शब्द में आरूढ़ होकर तमाम कर्मों से उसको समता प्राप्त हुई है यानी हर हालत में एक ही जैसा है खुशी, गमी के चक्र से मुक्त होकर अपने परमानन्द को प्राप्त हुआ है। वह ही असली परम संत और सिद्ध है।

बचन ४५. अन्तर विषय क्या बाहर एक नाद ही नाद उसको अनुभव हो रहा है और हर वक्त अपने मरूर में मग्न रहता है। तमाम शरीर की नाड़ियाँ, हड्डी और रोम में से नाद ही नाद की प्रभुता को पाता है। वही समदर्शी पुरुष है। उसने तमाम कर्मों से मुक्त हो कर नेह कर्म, अवस्था हासिल की है।

बचन ४६. तमाम शरीर के कर्मों से अपने स्वरूप को भिन्न करके अन्तर विषय अनुभव किया है। वह आनन्दमयी अवस्था जिस को प्राप्त हुई है वह ही जानता है। कहने कथने का मुकाम नहीं है।

बचन ४७. समाधि अवस्था को प्राप्त हुआ पुरुष हर वक्त अपने आपको अकर्म, असंग, निर्धार, सर्वज्ञ, निर्वास, अचल, अछेद और गुणातीत जानता है। और शरीर को महज़ छाया स्वरूप देखता है। ऐसी दृढ़ स्थिति को जो प्राप्त हुआ है वह ही सर्व का मानी और सर्व का आधारी है उस ब्रह्म नेष्टी का दर्शन दुर्लभ है।

बचन ४८. तमाम वासनाओं से न्यारा होकर शरीर के दुख व सुख में अचल वृत्ति रहता है। यानी अपने स्वरूप में सावधान रहता है। तमाम शारीरिक कर्म और गुणों का खेद उसको चलायमान नहीं कर सकता है यानी केवल स्वरूप में लीन हो जाता है। उस हालत को अनामपद और निर्वाचपद कहते हैं। कोई विरला ही परम सिद्धि इस पूर्ण गति को प्राप्त होता है।

बचन ४९. निमिष २ करके जिसने ईश्वर स्वरूप में दृढ़ता हासिल की है और तमाम संसारी पदार्थों से जो अन्तर विषय विरक्त हुआ है और एक ही परम तत्व अबिनाशी नाद का जिसको आधार हुआ है वह ही इस परम प्रकाश और निर्द्वन्द्व अवस्था को प्राप्त हो सकता है।

बचन ५०. इन्द्रियों के भोगों में मन पलक-पलक करके लुभायमान होता है वह परम तपीश्वर इस मन को इन्द्रियों से विलग करके एक ईश्वर के नाम में दृढ़ करता है और तमाम शारीरिक वासनाओं को ईश्वर इच्छा में अर्पण करता है। चौंसठ घड़ी अन्तर विषय ब्रह्म शब्द

में जाग्रत होता है ऐसी अधिक प्रीत वाला पुरुष ही समाधि को प्राप्त हो सकता है।

बचन ५१. जो असली परम अवस्था को प्राप्त नहीं हुए और मुख से ब्रह्म ज्ञान का व्याख्यान करते हैं और अपने आपको जगत् गुरु या अवतार मानते हैं वह कपटी पुरुष कई जन्म तक इस कर्म चक्र से छूट नहीं पावेंगे। ब्रह्म स्थित यानी निर्वाम अवस्था को प्राप्त करने की खातिर परम प्रयत्न, श्रद्धा, वैराग्य और सतपुरुषों की संगत धारण करनी लाज़मी है तीन काल में शरीर को जो नाश देखने वाला है और आत्म-चिन्तन में निश्चल होकर तमाम शरीर की वासनाओं से जो मुक्त हुआ है वह ही ब्रह्म नाद में स्थिति पाता है।

बचन ५२. सबसे पहले अनर्थक कर्म जो अधिक पाप रूप है उनको त्यागना चाहिए। फिर गुरु उपदेश करके निष्काम कर्म की साधना और ईश्वर भक्ति स्मरण भजन में दृढ़ होना चाहिए यानी तमाम वासनाएँ ईश्वर समर्पण करके निर्वाम होकर स्मरण करना चाहिए। अधिक प्रीति जिस वक्त नाम स्मरण में प्राप्त होवेगी उस वक्त काल-कर्म के चक्र का अभाव होता जावेगा। और अन्तर विषय ब्रह्म शब्द का अनुभव होवेगा। फिर शब्द की प्रतीत ही शब्द में लीन कर देवेगी। ऐसा निर्मल निश्चय धारण करना चाहिए।

बचन ५३. सत् धाम की प्राप्ति परम श्रद्धा और परम यत्न से होती है जो महज़ कथनी में ही वक्त गंवाते हैं और पुरातन फ़कीरों के शब्द सुना २ कर ही अपने आपको सिद्ध बनाते हैं वह महज़ नादान हैं और इन्द्रियों के भोगों में हर वक्त जल रहे हैं और धर्म की सत्ता को नाश करने वाले हैं। ऐसे कथनी ज्ञानी कई जन्म तक नीच योनियों में प्रवेश करते हैं।

बचन ५४. कल्याण अपने आपका प्रथम चाहिए। जब तक अपने अन्तर का दोष नाश नहीं हुआ तब तक निश्चय करके असली तत्व को

न जान सकता है और न ही सत् व्याख्यान कर सकता है। जो महज़ पाखंड को धारण करके संसारी साधारण जीवों को कथनी ज्ञान का जाल फैला कर अपना उपासक बनाते हैं और उनसे भोग पदार्थों का लाभ हासिल करते हैं। ऐसे कपटी गुरु खुद नर्क के गामी हैं और शिष्यों को भी नर्क निवास दिलाते हैं।

बचन ५५. जिसने अपने मन को निर्दोष किया है और तमाम संसारी पदार्थों की वासना से जिसने विजय हासिल की है! हर वक्त जो ब्रह्मनाद में स्थित रहता है और सेवक रूप में जो विचरता है। निष्कपट और निर्विषाद जिसका आन्तरिक बाहिर जीवन है। किसी वस्तु की भी कामना जिसके हृदय में नहीं है। अन्तर से अपने आप में जो किसी मज़हब की कैद में नहीं है। केवल ईश्वर परायण जिसका जीवन है। वह ही ज्ञानी सत् पद को प्राप्त हो सकता है।

बचन. ५६. सत् उपदेश को सुन करके मन में धारण करना, फिर बार २ निध्यास करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है। तब नाम स्मरण भजन, ध्यान, समाधि की अवस्था को आहिस्ता २ प्राप्त होता है।

बचन ५७. कर्म का कर्तापन ही अधिक अन्धकार है जब तक इसका अभाव नहीं होता तब तक ब्रह्मशब्द में स्थिति प्राप्त नहीं होती। इस वास्ते हर घड़ी अपने अन्तर विषय जो नाम में मन को लगाए रखता है और कर्म अभिमान से बुद्धि जिसकी निर्मल हो चुकी है। केवल अखण्ड, अविनाशी तत्व का निश्चय ही जिसका आधार है वह ही परम पुरुष परम समाधि को प्राप्त हुआ है और आइन्दा के जन्म मरण से छूट पाई है।

बचन ५८. कर्म जंजाल जो संसार भासता है इसको यथार्थ भक्ति और ज्ञान के हथियार से जो छेदन करता है वह ही परम गति को प्राप्त होता है यानी अखण्ड शब्द में लीन हो जाता है। हर घड़ी हर लमह अपने पूर्ण धाम को प्राप्त करने का यत्न करना ही मानुष जन्म का परम धर्म है।

बचन ५९. मन बड़ा विकराल है। इसको बड़े यत्न से ही नाम स्मरण में लगाया जावे तो वैराग्य से तृप्त होकर अन्तर्मुख में विश्राम करता है और कर्मों की वासना से विरक्त होकर परमानन्द को प्राप्त होता है इसी अवस्था को समाधि कहते हैं। जिस अवस्था में दुर्मति आदि का अभाव हो जाता है केवल परम तत्व ईश्वर ही ईश्वर अनुभव होता है।

बचन ६०. मिथ्या शरीर का अभिमान त्याग कर जो ईश्वर का नाम स्मरण करता है और सब कुछ ईश्वर आज्ञा में देखता है। पलक २ करके नाम ध्यान में जो दृढ़ होता है वह ही परम भक्त ब्रह्म शब्द को अन्तर विषय प्राप्त करके उसमें ही लीन हो जाता है। यह ही यत्न मानुष के वास्ते दुर्लभ है, जिसको प्राप्त करके अपने पूर्ण स्वरूप में स्थिति मिलती है। वह ही परम ज्ञानी है जिसको ईश्वर चरणों की प्रीति प्राप्त हुई है। वह आप परमानन्द को प्राप्त हुआ है और कई जीवों का आधार उसके जीवन आदर्श से हो गया है।

बचन ६१. अति सूक्ष्म बुद्धि गुणों से रहित होकर आत्मतत्व में स्थित होती है और तमाम कामना कल्पना से मुक्त होकर परम आनन्द को हासिल करती है। तब सब मिथ्याकार कर्म जाल का अभाव हो जाता है। केवल आनन्दस्वरूप ब्रह्म शब्द हो प्रतीत होता है। ऐसी दृढ़ता ही परम धाम और अखण्ड शान्ति है।

बचन ६२. तमाम तत्वों के विकारों से बुद्धि निर्मल होकर ही सत्नामस्मरण में दृढ़ होती है और सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव को विचार करके अपने आप में धैर्य को प्राप्त होती है। एक अखंड शब्द आत्मा के बगैर तमाम प्रकृति स्वरूप को मिथ्या जान करके अपने अन्तर विषय दृढ़ निश्चय से पार ब्रह्म परमेश्वर में लीन हो जाती है यह ही मार्ग और यत्न-सत्पुरुषों का है।

बचन ६३. सत्पुरुषों के बचन पर दृढ़ विश्वास रखने वाला और अपने बन्धन को अच्छी तरह प्रतीत करने वाला और आत्मानन्द की

प्राप्ति की खातिर मन, वचन कर्म में दृढ़ पुरुषार्थ धारण करने वाला पुरुष ही माया के घोर जाल से निकल कर ईश्वर स्मरण, भजन, ध्यान और समाधि को प्राप्त होता है।

वचन ६४. यह जगत संग्राम अति आश्चर्य है। बिना सत् विचार और सत्पुरुषों की शिक्षा के कोई भी इससे पार नहीं हो सकता है। कर्म वासना पलक पलक में बुद्धि को चलायमान करती रहती है। वह महा तपीश्वर जिसने सत्पुरुषों की शिक्षा द्वारा एक आत्मस्वरूप में निश्चय पाया है और चौंसठ घड़ी अपने मन की वृत्तियों को ईश्वर नाम में लीन करता रहता है देह के भोगों से जो नित्य ही वैराग्यवान् रहता है ऐसी निश्चल बुद्धि वाला पुरुष ही परम तत्व को प्राप्त होकर परमानन्द को पाता है। इसकी जीवन कीर्ति दुर्लभ है।

वचन ६५. इस मार्ग संसार में निर्मल विचार करके अपनी कल्याण के निमित्त यत्न करना ही परम साधन है। एक ईश्वर का दृढ़ विश्वासी होना और तमाम तोहमात के बन्धन से मन को निर्मल करना, कर्त्ता हर्त्ता महा प्रभु जानकर तमाम शरीर की प्रभुता उसकी दयालुता जानना, आहार, व्योहार को पवित्र करना और निश्चल चित्त करके परम परमेश्वर का स्मरण करना और देह अभिमान से बुद्धि को निर्मल करना स्वार्थ अंधकार से निर्मल होकर परमार्थ में अपने आप को निश्चल करना ही असली भक्ति है।

वचन ६६. लोक सेवा मुख्य धर्म जानकर हर घड़ी अधिकारी को सुख देने का यत्न करना, शरीर के दुख व सुख नारायण की आज्ञा में दृढ़ निश्चय से देखना, सुबह व शाम नाम अभ्यास में दृढ़ होना और एकाग्र चित्त होकर अपने अन्तर विषय सूक्ष्म तत्व ब्रह्म शब्द को अनुभव करना, नौ द्वार के भोगों से मन को त्याग करके एक ईश्वर के स्वरूप में स्थित करना यानी अन्तर विषय शब्द की धारा में अपने

आप को लीन करना, सब संसार की अन्तर्गति और बाहिर्गति का प्रकाशक एक ईश्वर को देखना ही दिव्य दृष्टि है।

बचन ६७. हर घड़ी, हर लमह अपनी बुद्धि का निश्चल ध्यान अन्तर विषय दृढ़ करना, तमाम वासनाओं को त्याग करके ईश्वर भावी पर दृढ़ रहना, निष्काम कर्म की धारणा से तमाम जीवों को सुख देना ऐसा निर्मल त्याग और विवेक जिस पुरुष को प्राप्त हुआ है वह ही त्रिगुण माया के जाल से छूटकर आत्म स्वरूप में अपने अन्तर विषय स्थित हुआ है। और नित आनन्द अवस्था को अनुभव करके तृष्णा के जाल से मुक्त हो गया है। यह निर्वाण, अचल, अडोल अवस्था ही समाधि है। जो इस पूर्ण अवस्था को प्राप्त करके संसार में विचरता है वह ही समदर्शी पुरुष तमाम संसार को कल्याण के देने वाला है। उसका बचन और कर्म आश्चर्य हैं। नाम ही उसका आधार है। नाम ही उसका परिवार है। नाम ही उसका व्योहार है। ऐसी दृढ़ स्तिथि वाला पुरुष ही जीवन मुक्त है और जानने योग्य तत्त्व को उसने जाना है। सर्व ज्ञाता होकर पूर्ण स्वरूप में लीन हुआ है। ऐसी रहनी ही अखण्ड शान्ति और परम पद है।

बचन ६८. अपनी आत्मिक उन्नति करनी ही परम धर्म है। नहीं तो मन माया के मोह में गिरफ़्तार होकर अति पाप कर्म में प्रवृति हो जाता है। फिर कई जन्म तक आवागवन के चक्र में फिरता है। इस वास्ते मानुष जन्म को धार कर परम यत्न करके परम पद की प्राप्ति करनी चाहिये। यह ही उपदेश सत्पुरुषों का है और इस उपदेश को अपनाना ही उनकी पूजा है।

बचन ६९. जो हर घड़ी अपनी अन्तिम दशा का विचार करके अपने साची स्वरूप आत्मा का चिन्तन करता है और अपने निर्मल विचार से तमाम जीवों का अधिकारी होता है। अपनी कामना को त्याग करके निष्काम वृति करके जो दूसरे की सेवा करता है और अन्तर विषय

निमिष-निमिष करके सत् नाम का स्मरण करता है वह परम भक्त सहज ही परमानन्द को प्राप्त हो जावेगा। सत्पुरुषों की शिक्षा में अपने आप को जो मिटाने वाला है वह ही निज स्वरूप आतमा का दर्शन पा सकता है जो परमानन्द अवस्था है।

बचन ७०. परम धाम की प्राप्ति तमाम संसार में जीवित में ही निर्वास होने से होती है। सो निमिष निमिष जो सत्स्वरूप में दृढ़ होते हैं। वह ही गुणी पुरुष परम पद को प्राप्त होते हैं। संसार में उनका जीवन दुर्लभ है और कल्याणकारी है वह ही ईश्वर तत्व को चिताने वाले हैं और संसार की अग्नि से शाँति दिखाने वाले हैं। उनका दर्शन दुर्लभ है। और उनका बचन जो निश्चय करके धारण करता है वह सत्पद को प्राप्त होता है जो असली आनन्द स्थान है। इस वास्ते हर एक प्राणी मात्र को चाहिये कि बादमुबाद को छोड़कर अपने आप को पवित्र करें और आनन्दमयी अवस्था को प्राप्त करने को खातिर क्षण-क्षण विषय अपने मन को ईश्वर नाम में दृढ़ करें और लोक सेवा को धारण करें ऐसे निश्चय से ही परम पद प्राप्त होता है ?

बचन ७१. जितने भी सत्पुरुष, गुरू, पीर, अवतार दुनियाँ में आये हैं। उन्होंने पहले सत्पद को खुद प्राप्त किया है फिर दूसरों के वास्ते कल्याणकारी हुए हैं। सब का सार विचार यह ही है कि जीव अपनी कुबुद्धि से माया के मोह में दुखी होता है इस दुख की निवृति की खातिर सत्स्वरूप की उपासना भक्ति और ज्ञान है सो जो गुणी पुरुष सत्शिक्षा को धारण करके अपने अन्दर सत्यतन दुर्मति नाश करने का यत्न करेगा वह ही परम शाँति को प्राप्त होवेगा।

बचन ७२. यह संसार देखने में परम सुखदाई मालूम होता है मगर अन्तर में विष स्वरूप है यानी बग़ैर रञ्ज व ग़म के कुछ हासिल इसमें नहीं है। गुणी पुरुष हर वक्त परम धाम की प्राप्ति का यत्न करता है क्योंकि क्षण भंगुर शरीर किसी वक्त नाश हो जावेगा। जीवन में ही परमानन्द को जो प्राप्त होवेगा वह असली कल्याण को पावेगा

जो अविनाशी अडोल पद है।

वचन ७३. हर घड़ी अपने मन को अन्तर मुख करके सत्नाम का स्मरण करना और तमाम का कामनाओं विरोध करना ही जिज्ञासुओं का परम धर्म है। आहार, व्योहार विचार और संगत का निर्मल व्रत धारण करने से आत्म तत्त्व प्राप्त होता है यह ही मुख्य साधन हर एक महापुरुष का जीवन है।

वचन ७४. पवित्र आहार भूक निवृत्ति की खातिर खाना और बाज़ २ मौका पर निराहार रहना यह आहार का व्रत है। अपने कारोबार में पवित्रता हासिल करनी और अपनी कमाई सत्कर्मों में लगाना, किसी के साथ धोका न करना, सब इन्द्रियों पर काबू पाना। मर्यादा से कारोबार करना वक्त मुकर्रर करके, यह व्यवहार व्रत है। अपने विचार की आन्तरिक सोच और मुख से उच्चारण करने में पवित्रता हासिल करनी और किसी से कपट न करना और बार बार सत्पुरुषों के इतिहास विचार करना और अपने जीवन में सत अनुराग को धारण करना और हर एक की भलाई विचार करना यह विचार का व्रत है।

वचन ७५. सत्पुरुषों की संगत करनी और उनके सत्वचन को अपनाना, अपने मन की दूषित वासनाओं को त्याग करके निष्काम भक्ति धारण करनी, ईश्वर विश्वास और लोक सेवा को हृदय में दृढ़ करना, संसारी ऐश्वर्य प्राप्ति के मान गुमान का त्याग करना। सब कुछ ईश्वर का ही जानकर निश्चय से स्मरण करना और अधिक प्रीति से अधिकारी की सेवा करनी यह सत्संग का व्रत है। ऐसे महाव्रतों को जो धारण करता है वह ही असली स्मरण, भजन, ध्यान और समाधि को प्राप्त हो सकता है। इस वास्ते अपने जीवन को पवित्र करने की कोशिश करनी चाहिये जिससे ज़िन्दगी में ही अपने बन्धन काटकर निर्भय धाम को प्राप्त हो जावे।

ईश्वर सत् प्रतीत देवे जो इस अगोचर कथा का विचार करके अपने जीवन को निर्मल करने की भावना जिज्ञासु की दृढ़ होवे।

(च) गुरुपद का सिद्धान्त

बचन १. गुरु शब्द का अर्थ यह है कि अन्धकार को नाश करने वाला। वास्तव में तो गुरु एक शब्द स्वरूप परमेश्वर ही है जो तमाम भ्रम अन्धकार से निर्मल है और तमाम भ्रम अन्धकार को नाश करने वाला है अखण्ड प्रकाश घट घट व्याप रहा है उस परम तत्व को जब बुद्धि अनुभव करती है तब सब अन्धकार से पवित्र होकर प्रकाश स्वरूप में लीन हो जाती है।

बचन २. संसार की विचरित हालत में संसारी नीति का ज्ञान भी जिससे प्राप्त होवे वह संसारी गुरु माना जाता है। यानी इस जीव को हर वक्त शिक्षा की जरूरत है बगैर शिक्षा के सांसारिक तथा परमार्थिक बोध नहीं हासिल कर सकता है।

बचन ३. परमार्थिक गुरु वह ही हो सकता है जिसने परम तत्व अविनाशी परमेश्वर में स्थिति हासिल की हो और तमाम तृष्णा विकार से जो पवित्र हो चुका हो यानी हर वक्त अपने अन्तर विषय परम प्रकाश में जो लीन रहता हो।

बचन ४. सिर्फ ईश्वर प्राप्ति का रास्ता जानने वाले को गुरु नहीं कहते बल्कि ईश्वर स्वरूप में जो आनन्दित हुआ हो वह असली गुरु है सिर्फ रास्ता जानने से गुरु कहलाने का मुस्तहिक नहीं हो सकता है जब तक कि वह अपनी मन श्रद्धा और प्रेम भक्ति से अन्तर्गति में परमेश्वर में लीन न हो जावे।

बचन ५. ऐसे कथनी गुरु जो ईश्वर तत्व को प्राप्त नहीं हुए हैं वह विद्या के मान में आकर बड़े बड़े अनर्थिक पाप कर्म करके खुद असली शान्ति को न प्राप्त हो सकते हैं और न ही शिष्यों को पापों से छुड़ा सकते हैं। यानी गुरु व शिष्य दोनों दुराचारी होकर लोक व परलोक दोनों को बिगाड़ देते हैं।

बचन ६. जो कथनी ब्रह्म ज्ञानी हैं, और देह के मद में गिरफ़्तार हैं, और शिष्यों से अपनी देह की पूजा करवाते हैं, वह शिष्यों का धन-माल लूट-कर अपने भोगों में सर्फ़ करते हैं वह गुरु नहीं बल्किः धर्म के नाशक हैं और दुनियाँ में पाप को फैलाने वाले हैं।

बचन ७. जो कथनी मात्र अपने आपको कर्मों से विलग मानते हैं और शिष्यों को यह उपदेश करते हैं कि आत्मा निर्लेप है। पाप व पुण्य देह करके हैं। हम आत्म स्वरूप हैं, हमको कोई कर्म लेप नहीं कर सकता है। इस वास्ते हमारी करनी पर तुम गौर न करो। बल्किः तुम अपनी सत् श्रद्धा से गुरु को ब्रह्म स्वरूप जानकर पूजा करो। ऐसे कपटी गुरु इन्द्रिय भोगों की खातिर गुरुडम फैलाकर कई स्त्री और पुरुषों को चेले-चेलियाँ बनाकर खूब प्रकृति के भोगों का आनन्द हासिल करते हैं और तमाम धर्म की सत्ता को नाश कर देते हैं। उनके कथनी ज्ञान और पापयुक्त रहनी को विचार करके जनता दुराचारी हो जाती है और संसार में उपद्रव फैल जाता है और अत्यन्त कष्ट में हर एक जीव हो जाता है। कथनी गुरुओं की करनी का यह फल संसारी जीवों को प्राप्त होता है।

बचन ८. गुरुपद अति ही कठिन अवस्था है। कोई ही गुरमुख प्राप्त होता है। जिसने अपने तमाम शारीरिक भोगों से त्याग हासिल किया हो और हर वक्त आत्म स्वरूप में स्थित रहता हो। परोपकारी जीवन जिसका हो। हर एक जीव से अधिक प्रेम रखने वाला हो। लाभ-हानि, खुशी-ग़मी, सर्दी-गर्मी, मित्र-शत्रु, भय व भ्रम, से जिसकी बुद्धि बिलकुल न्यारी हो चुकी हो और शब्द स्वरूप ब्रह्म में स्थित हो

गई हो। वह ही गुरु है यानी प्रथम उसने अपना अंधकार दूर किया है और ईश्वर प्रकाश को प्राप्त हुआ है, उसका उपदेश दूसरों के वास्ते भी कल्याणकारी है।

बचन ९. जो कथनी गुरु तन मन धन की भेंट की प्रतिज्ञा शिष्यों से लेकर शिष्यों के धन से अपने भोग पूर्ण करते हैं और उनके तन से अपने शरीर की सेवा करवाते हैं और मन से अपनी देह की पूजा करते हैं और यह शिष्यों को हिदायत करते हैं कि तुम्हारा कल्याण सिर्फ गुरु की भक्ति में ही है। ऐसे कपटी गुरु क्या कल्याण दे सकते हैं? जो खुद माया में मोहित हो रहे हैं। यह सब ठगी है। अपनी बुद्धि द्वारा विचार करके यह सम्बन्ध धारण करना चाहिये।

बचन १०. असली गुरु तन मन धन की भेंट इस तरह शिष्यों से लेते हैं और उपदेश करते हैं कि अपनी ममता को त्याग करके अपने धन को सत्कर्म में लगाओ और तन से जीवों की सेवा करो और मन से परम परमेश्वर का स्मरण करो जो तुम्हारे अन्दर प्रकाश कर रहा है। हमारी गुरुभक्ति यह ही है कि तुम सत् उपदेश द्वारा अपनी कल्याण करो यानी असली गुरु शिष्यों को अपनी पूजा या सेवा नहीं सिखलाते हैं बल्कि: तमाम जनता की सेवा अपनी सेवा मानते हैं और शिष्यों को जगत सेवा का उपदेश करते हैं।

बचन ११. जो कपटी गुरु अपने चेले और चेलियों को यही हिदायत करते हैं कि गुरु की देह की पूजा करो। आरती करो। चर्णा-मृत लो और तमाम अपना धन-माल गुरु अर्पण गुप्त रूप में करो और बिलकुल दूसरे सत्संग में न जाओ। गुरु खुद तुम्हारा कल्याण करेगा। यह सब दम्भ है और धन लूटने का रास्ता है। इस अंधकार परस्ती में न किसी की कल्याण हुई है और न ही होगी बल्कि दीन व दुनियाँ दोनों में जिल्लत व ख्वारी हासिल होती है।

बचन १२. असली गुरु ईश्वर पूजा सिखलाते हैं और लोक सेवा अपनी सेवा समझा कर शिष्यों को लोक सेवा में लगाते हैं और

बिलकुल शिष्यों का धन अपने शारीरिक भोगों में इस्तेमाल नहीं करते हैं बल्कि खुद शिष्यों की सेवा प्रेमपूर्वक करते हैं। ऐसे गुरु धर्म के शिक्षक हैं और जीवों का उद्धार करने वाले हैं। उनका उपदेश असली त्याग सिखलाता है और अन्तर विषय परमानन्द को प्रकाश करता है।

बचन १३. जो गुरु माया इकट्ठी करने की खातिर या अपनी पूजा की खातिर अनेक जादू यंत्र, मंत्र इस्तेमाल करते हैं, और गुरुडम का जाल फैलाते हैं, और शिष्यों को हर वक्त गुरु भक्ति का उपदेश करते हैं, और हर तरीका की चालाकी करके शिष्यों पर रोब डालकर खूब अपने भोग हासिल करते हैं। ऐसे कपटी गुरु की सेवा नर्क के देने वाली है। यह बिलकुल नादानी है कि कपटी गुरु से कोई कल्याण होवेगा। बल्कि धर्म का निश्चय ही नाश हो जावेगा। ऐसे गुरु का कोई शाप नहीं लगता है। वह खुद अपनी खोटी भावना का फल पाता है। असली गुरु का अगर शरीर भी कोई नाश कर देवे, तो वह शाप नहीं देवेगा। यह निश्चय कर लेवें।

बचन १४. गुरु वह ही है जो द्वैत मिथ्या कल्पना से निर्मल हो कर ईश्वर स्वरूप में स्थित हुआ है। हर वक्त संसारी पदार्थों से वैराग्य-वान रहता है। जो ईश्वर भक्ति में अधिक प्रीति रखता है, अन्तर विषय अपनी सुरती को दृढ़ करके सत् शब्द में लीन करता है, और तमाम अन्तर व बाहर की गति को जानने वाला है और अति परोपकारी जिसका जीवन है। बड़े से बड़े कष्ट में धैर्यवान रहता है और सर्व दयालु जिसका स्वभाव है। एक आत्मा ही जिसका भोग है, आत्मा ही जिसका आधार है। आत्मा ही को जो सर्व जगत में अनुभव करता है। तमाम द्वन्द्व कल्पना से जो विरक्त हुआ है। सम स्वरूप आत्मा में जो लीन रहता है। वह ही तत्ववेत्ता पुरुष असली गुरु है। उसीने तमाम माया से मुक्ति पाई है। उसकी शिक्षा भी सर्व कल्याण के देने वाली है।

बचन १५. कपटी गुरु शिष्यों को जो उपदेश करते हैं कि तमाम संसारी पदार्थ गुरुओं के वास्ते हैं इस वास्ते तुम मन श्रद्धा से गुरुसेवा करो। यह ही तुम्हारी कल्याण है। यह सब पाखण्ड का जाल है। सब चीजें माया के चक्र में उत्पन्न होती हैं और नाश हो जाती हैं। गुरु व शिष्य के जो ताल्लुकात हैं वह रूहानी हैं न कि महज़ संसारी पदार्थों की भेंट लेने का जाल हैं। यह निश्चय होना चाहिये।

बचन १६. शिष्य को अपने कल्याण की ख़ातिर गुरु की ज़रूरत है और गुरु को जीव उद्धार की ख़ातिर शिष्य अधिकार देने की ज़रूरत है। यानी हर दो को अपना-अपना फ़र्ज़ मजबूर कर रहा है। किसी पर कोई एहसान नहीं है। यह ईश्वर की माया का नियम है।

बचन १७. शिष्य का फ़र्ज़ है कि मन उपदेश द्वारा अपनी आत्मिक उन्नति करनी कि जिस तरह से गुरु ने अपने आपकी कल्याण की है यह आदर्श दृढ़ होना चाहिये।

बचन १८. गुरु का फ़र्ज़ है कि शिष्य को उसकी बुद्धि के मुताबिक उपदेश देकर मार्ग परोपकार पर दृढ़ करना और परमार्थ निश्चय परपक्क कराना। शारीरिक विकारों से निर्बन्ध करके उपदेश देकर ईश्वर विश्वासी बनाना। ऐसा धर्म में निश्चिन्त कर देना कि फिर माया के मोह में न गिरफ़्तार होवे। गुरु और शिष्य का यह ही असली सम्बन्ध है।

बचन १९. ऐसे सम्बन्ध में संसारी पदार्थों के लेन देन का कोई झगड़ा नहीं है। गुरु का फ़र्ज़ है कि प्रथम अपनी कल्याण करनी और शिष्य को निष्काम लोकसेवा की भावना का उपदेश देना। इन भावों के उलट जो गुरु लोकसेवा के बजाय अपनी सेवा करवाते हैं, ईश्वर पूजा की जगह अपनी देह की पूजा करवाते हैं और शिष्य को खुद अपना असली जीवन बनाने की बजाय यह दावा करते हैं कि हम तुम्हारी कल्याण करेंगे यह सब पाखण्ड है। ऐसे गुरु व शिष्य दोनों मूर्ख हैं। दुनियाँ में अन्धकार फैलाने वाले हैं।

बचन २०. गुरु का फर्ज़ है कि निष्काम भावना से शिष्य का उद्धार करना और शिष्य से बिलकुल किसी वस्तु की चाहना न करनी। शिष्य का फर्ज़ है कि यथाशक्ति गुरु की सेवा करनी और सत उपदेश द्वारा अपनी आत्मिक उन्नति का यत्न करना। जो गुरु लोकसेवा की खातिर शिष्य को हिदायत करते हैं और अपने आप जीवन को निर्मल करने का मुख्य धर्म समझते हैं, वह गुरु कल्याणकारी हैं। इसके उलट जो महज़ अपनी देह का ही स्वार्थ शिष्य से चाहते हैं वह सब दम्भ है ऐसा विचार कर लेना चाहिये।

बचन २१. शिष्य को चाहिये कि गुरु की ऐसी तहकीकात करे जिस तरह लोहार लोहे की सार लेता है। असली गुरु जो होता है उसकी तहकीकात करने से धर्म निश्चय दृढ़ होता है और जो दम्भी गुरु होता है। उसकी तहकीकात करने से सब जाल का पता लग जाता है। यह जाँच अधिक ज़रूरी है। नुमायश में नहीं भूलना चाहिये।

बचन २२. गुरु उपदेश का सिद्धान्त यह है कि मिथ्या माया से उपरम होकर ईश्वर प्राप्ति का यत्न करे जो आनन्द स्वरूप है। शिष्य परम श्रद्धा और निर्मल प्रेम से इस मार्ग में कामयाब हो सकता है। जो सत् यत्न को छोड़ कर महज़ कथनी मात्र गुरु के आश्रय रहता है, वह कभी भी कल्याण को प्राप्त न हो सकता है और न ही गुरु भक्त हो सकता है यानी कथनी निश्चय कोई कल्याण नहीं दे सकता है। साधन से ही सिद्धान्त प्राप्त होता है। बगैर साधन के कोई कामयाबी हासिल नहीं कर सकता है।

बचन २३. गुरु का फर्ज़ है कि शिष्य की कल्याण की खातिर अपना सब कुछ निछावर कर देवे और शिष्य का फर्ज़ है कि गुरु बचन में अपने आपको मिटा देवे। अगर ऐसा प्रेममयी सम्बन्ध होवे तो कल्याणकारी है। इसके उलट जो गुरु अपने दाव में रहता है और शिष्य अपने दाव में, ऐसे निश्चय से कभी भी कल्याण नहीं हो सकती है।

वचन २४. गुरु का फ़र्ज़ है कि कल्याण की ख़ातिर शिष्य का अधिकार शिष्य को देवे न कि माया की ख़ातिर शिष्य बनावे। अगर माया के प्रेम की ख़ातिर जो शिष्य बनाता है। वह गुरु भी, चेला भी कई जन्म अधम योनियों को प्राप्त होते हैं।

वचन २५. जो गुरु अधिकारी शिष्य के बग़ैर उपदेश देते हैं, या कुंवारी कन्या या छोटे बच्चों को परमार्थ का उपदेश देते हैं, उसका नतीजा गुरुओं की बेइज़्ज़ती और धर्म का नाश है। क्योंकि जब तक सही श्रद्धा और समझ न होवे तब तक परमार्थ का उपदेश कल्याण नहीं दे सकता, इसके अलावा स्त्री उपदेश अपने पति के गुरु से या पति की आज्ञा लेकर पति सहित गुरु से परमार्थ का उपदेश लेवे तो वह दोनों के वास्ते सुखदाई है। अगर पति गुज़र गया होवे तो और किसी नज़दीक के रिश्तेदार को साथ लेकर परमार्थ का उपदेश गुरु से लेवे तो सुखदाई है। इसके उलट अपनी मनमानी करके और बग़ैर पूरी पहिचान के जो स्त्री किसी गुरु से उपदेश लेती है वह उसके वास्ते सफलता के देने वाला नहीं है बल्कि अपयशदायक है, और संसारी नीति के बरख़िलाफ़ है और कुंवारी कन्या को गुरु धारण करना भी धर्म नीति के विरुद्ध है, और गुरु को कुंवारी कन्या को शिष्य बनाना भी योग्य नहीं है और जगत मर्यादा के प्रतिकूल है। इसका नतीजा धर्म की हानि और पाप का फैलाव है।

वचन २६. जो गुरु स्त्रियों से अपनी आरती करवाते हैं वह भी धर्म के विरुद्ध है। किसी हालत में भी अकेली स्त्री को नज़दीक न बैठने देवे। और ज़्यादा अकेली स्त्रियों की संगत में जिसमें कोई पुरुष न होवे गुरु उपदेश न करे। इन नियमों के विरुद्ध जो गुरु चाल चलते हैं यानी ज़्यादा स्त्रियों को उपदेश करते हैं और अपनी देह की आरती वग़ैरा करवाते हैं, वह एक दिन कलंक को पावेंगे और गुरुपद को नाश कर देवेंगे। ऐसी उलट धारणा से दुनियाँ में अधर्म प्रगट हो जावेगा।

गुरु का फ़र्ज़ है कि परमार्थ बुद्धि वाले को परमार्थ का उपदेश करे और स्वार्थ बुद्धि वाले को शुद्ध आचरण का उपदेश देवे, जिससे हर एक जीव को अपनी बुद्धि के मुताबिक धर्म उपदेश सुनकर शाँति होवे।

बचन २७. गुरु को ज़्यादा उपदेश पुरुषों को देना चाहिये और स्त्रियों को पुरुषों के ज़रिये हिदायत करवानी चाहिये या स्त्री पुरुष दोनों को बैठा कर उपदेश करना चाहिये। सार यह है कि खुल्लमखुल्ला स्त्री को उपदेश करना या याचना किसी वस्तु की करनी गुरु के वास्ते बाइसे कलंक है और धर्म नीति के विरुद्ध है।

बचन २८. जो गुरु जिह्वा की बहुत रसना चाहने वाला है और पहनावे का बहुत शौकीन है और कामना पूर्ण करने की खातिर बहुरंग के विचित्र उपदेश देता है और वह उपदेश उसके जीवन में मौजूद नहीं है ऐसे कपटी गुरु के नजदीक तक नहीं जाना चाहिये इसका नतीजा कलंक और क्लेश है।

बचन २९. गुरु पूर्ण रहनी वाला, पूर्ण कहनी वाला, पूर्ण सहनी वाला, और दृढ़ आसन वाला होवे तो वह कल्याणकारी है यानी पूर्णज्ञान को पहचानने वाला होवे। और जो बचन कहे उस पर पूर्ण अमल करने वाला होवे। अन्तर बाहिर एक ही भाव वाला होवे। दुख व सुख में अचल रहने वाला होवे और बैठक जिसकी बहुत होवे। और किसी वस्तु की चित्त में कामना जिसको न होवे वह गुरु धर्म की मर्यादा को कायम करने वाला है और जीवों को कल्याण देने वाला है।

बचन ३०. सार निर्णय यह है कि गुरु रहनी वाला अपने उदार आत्मा से शिष्य के कल्याण की खातिर हर वक्त सत्धर्म उपदेश शिष्य को देवे। और भली प्रकार करके शिष्य की उन्नति की खातिर यत्न करे और चित्त में रंचक भी शिष्य से सेवा का भाव न रखे, यानी दयालु होकर हर वक्त कृपा करे। शिष्य का फ़र्ज़ है कि अपने ऐसे उपकारी गुरु के बचन में अपने जीवन को मिटा देवे, और आज्ञाकारी पद

हासिल करे। तब संसार में धर्म का सूर्य प्रकाश होता है और सब जीव धर्मवान हो जाते हैं। ऐसी भावना ही असली कल्याणकारी है। ईश्वर गुरु को गुरु पद का निश्चय देवे और शिष्य को शिष्य का अधिकार बख्शे। सब प्रेमी सत्बुद्धि द्वारा यह विचार निश्चय में धारण करें।

(ख) गुरु स्वरूप लखना

शब्द तत्त गुरु मूरत पेख। महिमा गुरु की घट २ देख ॥
इन्द्री संजम गुरु का व्योहार। शुद्ध विवेक गुर का नित आहार ॥
परोपकार गुर बस्त्र ओढ़े। निर्वाम गति अनुभव चित्त जोड़े ॥
दुख सुख परे सत् गुर बिराजे। अकाल स्वरूप हो सर्व निवाजे ॥
ज्ञान ध्यान क्षमा सन्तोषा। भक्ति प्रेम तत परम अनोखा ॥
अन्तरगत में गुर रहे लवलीना। नित प्रकाश उपरम रस चीन्हा ॥
अडोल अचाहक गुर की रहनी। सत प्रतीत है गुर की कहनी ॥
द्वन्द्व त्याग करनी गुरु धारी। दीन भाव गुर चरण विचारी ॥
आत्म निश्चय गुरु आरती पहिचान। अकल्प ध्यान चर्णामृत गुर जान ॥
आपा त्याग गुर पूजा सोध। सर्वहितकारी मन्त्र गुर बोध ॥
पाँच पचीस से रहे अतीत। गुर का धाम खोज गुणी मीत ॥
ऐह बिधि गुर की जो लखना करे। सो शिष्य ओहड़ नहीं जन्मे मरे ॥
दुर्मत त्याग पद परसे निर्वाना। गुर की महिमा जिस करि पहिचाना ॥
ज्ञान गुरु का नित लखावे। सो साजन परम गत पावे ॥

अखण्ड अछेद गुरु धाम है परमानन्द की खान।
मंगत जो लखना करे सो तीन लोक परवान ॥

(ज) समतावाद

१. समतावादी सज्जन ईश्वर के सत नियमों का पालन करना अधिक ज़रूरी फ़र्ज़ जानकर हर एक मज़हब के साथ निर्वैर हो कर बर्ताव करना ही अपना मुख्य धर्म जाने और अपने आपको ईश्वर आज्ञा में निश्चित करके समभाव में स्थित होना ही परम साधन समझे।

२. जिस जिस मज़हब या पन्थ में जो समतावादी सज्जन होवे उसको अपना जीवन निर्विकार बनाना और दूसरों की कल्याण चाहनी अपना मुख्य उद्देश्य जाने।

३. भिन्न २ मज़हबी व मुल्की रस्मोंरिवाज के तंग दायरों से अपने आप को आज़ाद करके उनके वादमुवाद से मुखलिसी हासिल करे और निष्काम भाव से सत्कर्मों में अपने आपको दृढ़ करे।

४. समभाव ही कल्याण है। समभाव ही जीव का वास्तव स्वरूप और परम धाम है। समभाव ही धर्म है। समभाव की प्राप्ति में यत्न करना ही गुरमुख मार्ग है। इस वास्ते अपने आपको मज़हबी खुदगर्ज़ी से आज़ाद करके सत उसूलों में पाबन्द होने का सत्साधन धारण करे। और हर घड़ी हर लमह अपने आप पर काबू पाने की कोशिश करे। इस में ही असली शांति है।

(झ) उत्तरायण व दक्षिणायण मार्ग के सम्बन्ध में विचार

इस संसार की विचरित हालत के दो पहलू हैं। इन दो हालतों को कई नामों से वज़ह (व्यक्त) किया गया है। आखिर जितने भी नाम हैं दो हालतों का निर्णय दिखलाते हैं। गौर करके विचार करें।

ज्योतिर्मयी अग्नि यानी ब्रह्म स्वरूप

इस से दो हालतें प्रगट होकर संसार के स्वरूप में भासती हैं और जीव इन दो हालतों का विचार करे तो असलियत को पहुँच जावेगा।

दो हालतों का निर्णय एक दूसरे के उलट है दिन के मुकाबिला में रात, शुक्ल पक्ष के मुकाबिला में कृष्ण पक्ष। पक्षों के हिसाब पर साल के दो हिस्से किये गये हैं। एक हिस्सा अन्धेरे से ताल्लुक रखता है दूसरा चान्दने से, यानी तमाम दुनियाँ की उत्पत्ति और नाश बारह महीनों में ही होती है। छः महीने अन्धेरे के और छः महीने चान्दने के। तमाम दुनियाँ की पैदायश व फना कोई चान्दने में होती है और कोई अन्धेरे पक्ष में होती है। आखिर में निर्णय यह है। यह दो पहलू संसार की जो हालतें हैं हर एक से गुज़रती हैं। ऐसे ही शरीर की अन्तर्गति और बहिर्गति की भी दो हालतें हैं। उत्तर दिशा के मानी ऊँचाई और दक्षिण दिशा के मानी नीचाई। इस जगह यह निर्णय होता है कि शुक्ल पक्ष मानिन्द उत्तरायण दिशा यानी अन्तर्गति मानिन्द दिन जो प्रकाशमयी हालत अन्तर स्वरूप है। इस वास्ते अन्तर्मुख

अवस्था में वृत्ति को लीन करके जो शरीर छोड़ता है वह अखण्ड अविनाशी स्वरूप जो सूर्य की तरह अखण्ड है उसमें लीन हो जाता है। इसके बरअक्स कृष्ण पक्ष मानिन्द रात्रि बहिर्गति हालत जो धुआँ के समान कर्म वासना का अम्बार है, इसमें जो शरीर छोड़ता है वह चन्द्रमा सरीखी हालत जो घटने बढ़ने वाली है उसमें प्रवेश करता है यानी जन्म मरण में आता है। अर्थात् उत्तरायण दिशा जो अन्तर्गति है उसको शुक्ल पक्ष दिन और सूर्य से तशबीह देकर समझाया गया है और छः माह के मानी यह हैं कि कुल दुनियाँ की पैदायश बारह महीने साल के अन्दर होती है, कोई चान्दने पक्ष में पैदा होता है और मरता है, कोई अन्धेरे में, तमाम की पैदायश व फ़ना छः माह अन्धेरे पक्ष में होती है और छः माह चान्दने पक्ष में होती है। यानी साल में किसी वक्त भी कोई मरे, उस जगह निर्णय अन्तर्गति सूर्य स्वरूप और बहिर्गति चन्द्रस्वरूप का आया है। अन्तर्गति ब्रह्म प्राप्ति और बहिर्गति कर्म वासना। अन्तर्गति बहिर्गति तशबीह देकर समझाया गया है।

तशबीह

अन्तर्गति	बहिर्गति
उत्तरायण	दक्षिणायण
सूर्य	चन्द्रमा
शुक्ल पक्ष	कृष्ण पक्ष
साल की तकसीम छः माह शुक्ल पक्ष	छः माह कृष्ण पक्ष
अखण्ड प्रकाश स्वरूप	धुआँ समान तबदीली युक्त।

इन ही दो हालतों का बयान किया है कि अन्तर्गति जो ऐसी ही है, इस में शरीर छोड़ने से मोक्ष मिलता है और बहिर्गति जो हालत है इसमें शरीर छोड़ने से आवागवन में फिरता है। यह निश्चय कर लेवें। असली सिद्धान्त यह है। भीष्मपितामह के हालात कवियों ने उत्तरायण दक्षिणायण का अलङ्कार देकर उसकी बुज़ुर्गी जाहिर की है। मगर यह

मुक्ति और बन्धन के हालात जीव की अन्तर्गति और बहिर्गति में घटते हैं, यह ही दो रास्ते हैं। अन्तर्गति निष्काम कर्म, विज्ञान स्वरूप, देवयान मार्ग और बहिर्गति सकामकर्म, पितृयान मार्ग हैं। जीव के बन्धन और मोक्ष के दो रास्ते हैं। मूर्ख बुद्धि वाले बाहिर कहीं सड़क तलाश करते हैं। यह सब हालात शरीर के हैं। योगी लोग ही अन्तर्गति में प्रवेश करके बहिर्गति जो भ्रम स्वरूप है, उसका निर्णय करते हैं। बन्धन और मोक्ष की हालत ब्यान करते हैं। इसका निश्चय कर लेवें। तमाम दुनियाँ का इल्म इन ही दो हालतों में मौजूद है। अन्तर्ज्ञानी योगी ही जान सकता है। इस वास्ते हर वक्त अपने मन को अन्दर समेट कर नाम में दृढ़ करना चाहिये तब ब्रह्म प्रकाश अन्दर प्रगट होकर जीव को शान्त कर देता है, यानी कर्मों से निर्बन्ध कर देता है यह ही मोक्ष है। इस के उलट जब तक बहिर्मुखी है तब तक कर्म वासना में गिरफ़्तार होकर कई प्रकार के शरीर धारण करता है और चन्द्रमा के समान तबदीली में रहता है।

—:०:—

(ञ) पवित्र जीवन

भव सागर के तरन को निर्मल करे विचार।
सत संगत सत सीख को निश्चय मन में धार ॥
सत पढ़िये सत सुनिये सत कीजिए निध्यास।
इह विध यत्ना जो धरे तिस मन हो परगास ॥
मार्ग सहज कल्याण के सकले दिए बताए।
मंगत जो साधे नित प्रेम से सो निश्चय तर जाए।

बचन १. पवित्र जीवन के भेद को जानना ही मानुष जन्म की उच्चता है। वैसे तो सब जीव शारीरिक पवित्रता को तो बहुत अच्छा समझते हैं, मगर अन्तःकरण की पवित्रता को न समझते हुए नाना प्रकार के विलक्षण कर्म करके नित ही अधीर रहते हैं। इस वास्ते अन्तःकरण की पवित्रता को समझना और श्रेष्ठ कर्त्तव्य धारण करना ही असली पवित्रता है। जब तक अन्तःकरण की पवित्रता को न समझा जावे, तब तक कभी भी निर्मल कर्म में उत्साह पैदा नहीं होता है, और निर्मल कर्म के न धारण करने से मलीन कर्म अवश्य करने पड़ते हैं, जो परम दुख और अशान्ति के देने वाले होते हैं। इस वास्ते अधिक से अधिक यत्न करके मानसिक पवित्रता के भेद को समझना ही परम कल्याण के देने वाला साधन है।

बचन २. शरीर रूपी संसार में यह खास शक्तियाँ नित्य ही काम कर रही हैं—और इन ही शक्तियों के अनुकूल काम करने का स्वरूप जीवन है—पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ, पाँच कर्म इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और

प्राण। ज्ञान और कर्म इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा को मनन करने वाली शक्ति को मन कहते हैं, और मन के दोषों को अच्छा या बुरा समझने वाली शक्ति को बुद्धि कहते हैं, यानी बुद्धि की समझ के मुताबिक ही मन दौड़ता है और मन की दौड़ के मुताबिक ही इन्द्रियाँ कर्म करती हैं। इस वास्ते इन्द्रियों के कर्म अनुकूल या प्रतिकूल का होना बुद्धि की पवित्रता पर मुनहसिर (निर्भर) है। जितनी बुद्धि निर्मल होती है, उतनी ही इन्द्रियों द्वारा निर्मल कर्म करके सत शान्ति को प्राप्त होती है और जितनी बुद्धि मलीन होती है, उतनी ही इन्द्रियों द्वारा मलीन कर्म करके नित्य अशाँत रहती हैं। इस वास्ते तमाम जीवन का आधार बुद्धि की पवित्रता के मुताबिक है और बुद्धि की पवित्रता को ही असली पवित्रता कहते हैं।

बचन ३. बुद्धि की पवित्रता सत विचार, सत आचार, सत विश्वास और सत यत्न से ही हो सकती है। वास्तव में परम पवित्र स्वरूप तो एक जीवन शक्ति आत्मसत्ता ही है, जो तमाम खेदों और विकारों से न्यारी है और नित्य ही परिपूर्ण आनन्द स्वरूप है। उसी शक्ति को परमेश्वर, ब्रह्म, ज्ञान आदि अनन्त नामों से सिद्धों ने उच्चारण किया है और वह ही शक्ति बुद्धि के परे प्रकाश कर रही है। ऐसी महान शक्ति के परायण जब बुद्धि होती है तब असली शुद्धि को प्राप्त हो सकती है और उस महाशक्ति के विचार को सत् विचार कहते हैं। और उस शक्ति के परायण हो कर के निर्मल कर्म शरीर द्वारा करने—इस को सत् आचार कहते हैं। और उसी शक्ति का अधिक से अधिक विश्वास दृढ़ होना ही सत् विश्वास है और उसी शक्ति के अनुभव करने का यत्न ही सत् यत्न है।

बचन ४. ऐसे महा प्रभु परम तत्व शुद्ध चेतन स्वरूप के अनुराग के बल से बुद्धि असली पवित्रता को प्राप्त होती है और सत शान्ति अनुभव करती है। बुद्धि त्रिगुण अहंकार कर्तापन को धारण करके त्रिगुणी वासना में नित्य ही चलायमान हो कर के इन्द्रियों के शुभ

बचन ८. जब तक बुद्धि मलीनताई में विचरती है, अर्थात् शरीर के भोग ही परम सुख रूप समझती है, तब तक कभी भी पवित्र स्थिति को धारण नहीं कर सकती है। अर्थात् ऐसी अन्ध भावना को धारण करके शरीर के भोगों में अति आसक्त होकर के काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की भयानक अग्नि में नित्य ही जलती रहती है और मलीनता की अधिकता को धारण करती रहती है। यह ही जीवन अधिक संकट स्वरूप है।

बचन ९. बुद्धि ऐसे असत् भाव को धारण कर के केवल शारीरिक भोग ही जीवन का कर्तव्य जब समझती है, तब शारीरिक सुखों की प्राप्ति की खातिर नित अधिक क्रूर कर्म धारण करती है, अर्थात् झूठ, चोरी, छल, कपट और पर नाश के यत्न में दिन रात रहती है। ऐसी मलीन वासनाओं के धारण करने से अधिक संकट में भ्रमती है और कई जनम धारण कर के परम दुःख को प्राप्त होती है। यह अवस्था ही परम मलीनताई अंधकार का स्वरूप है। इस वास्ते जीवन यात्रा के सही (ठीक) भेद को समझना ही असली कल्याण है।

बचन १०. सार विचार यह है कि बुद्धि सत् स्वरूप परम तत्व आत्मा को भूल करके अहं भाव को धारण करके त्रिगुणी माया के ज़ेरे असर (प्रभावित) होकर के नाना प्रकार के कर्मों को धारण करती है और कर्म फल द्वन्द की प्राप्ति में अधिक भयभीत रहती है। यह तमाम चक्र ही मलीनताई यानी अविद्या का स्वरूप है।

बचन ११. ऐसे अन्धकारमयी जीवन के भेद को समझ कर नित्य ही सत् यत्न द्वारा जब बुद्धि सत्य परायण होने का यत्न करती है, यानी एक परमेश्वर को ही सत्य और आनन्द स्वरूप समझती हुई और तमाम शारीरिक भोग वासना को खेद रूप जानती हुई नित्य ही अपनी उन्नति का यत्न करती है। तब ही असली पवित्रता के मार्ग को जान सकती है।

प्रभु का विश्वास धारण करके जो अपनी तमाम मलीन वासनाओं का त्याग करते हैं और सत्य, शील, क्षमा, दया, सन्तोष और प्रेम को धारण करते हैं, वह ही गुणी परम पवित्रता को प्राप्त हो करके निःखेद स्थिति को प्राप्त होते हैं—उन का जीवन ही आदर्श स्वरूप है।

बचन १६. नित्य ही एक प्रभु विश्वास को धारण करके अपनी जीवन-उन्नति की ख़ातिर यत्न करना ही मानुष जन्म की सफलता है। सो इस वास्ते केवल सत् आनन्द स्वरूप एक परमेश्वर को ही जानते हुए और शारीरिक अवस्था महज़ (केवल) उस परम तत्व के बोध के वास्ते ही समझते हुए जो बिचरते हैं वह ही परम पवित्रता और परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

बचन १७. सत्य परायणता के बग़ैर बुद्धि कभी भी शुद्धि को प्राप्त नहीं हो सकती है। और मलीनताई में अधिक विकारों को धारण करके नित्य ही नाश और दुःख को प्राप्त होती है। क्योंकि शारीरिक भोगों की अधिकता परम दुःख और मलीनताई के देने वाली है। इस वास्ते निर्मल बुद्धि द्वारा जीवन के सही चरित्र को समझ करके नित्य ही सत् अनुराग को धारण करना चाहिये, जो परम शुद्धि के देने वाला है।

बचन १८. वास्तव में एक परमेश्वर ही शुद्ध स्वरूप और तीनकाल आनन्दमय है। और तमाम प्रकृति जाल मलीनता और खेद के स्वरूप में बिचर रहा है। ऐसा तब ही प्रतीत होता है, जब उस महाप्रभु की शक्ति का अनुभव किया जाता है। जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार के खेद को समझा जाता है और प्रकाश की महानता को अनुभव किया जाता है। ऐसे ही प्रभु की अनुभवता से प्रकृति के अन्धकार को समझा जाता है।

बचन १६. नित्य ही आत्म तत्व महाप्रभु के परायण हो कर के तमाम शारीरिक दोषों से पवित्रता हासिल करनी चाहिये क्योंकि

उतनी आसुरी वृत्तियों को धारण करके परम दुःखी रहती है। इस वास्ते अधिक यत्न करके सत्य के परायण होना चाहिये, जिससे तमाम दोषों का नाश होवे और पवित्र आचरण की प्राप्ति करके परम शुद्धि और सत् शाँति प्राप्त हो सके।

बचन २३. सत्यग्रही भावना ही मूल उन्नति का साधन है, यानी संसार और शरीर की तबदीली को निश्चय समझ करके और तमाम शारीरिक सुखों का अन्त दुःख रूप समझ करके नित्य ही अपने जीवन में सत्य कर्त्तव्य पालन करने का यत्न करना ही परम पवित्रता के देने वाला है। यानी अपने शारीरिक सुखों में निर्मल मर्यादा धारण करके दूसरों की उन्नति की खातिर अपने शारीरिक सुख त्यागना ही मानसिक शुद्धि का साधन है।

बचन २४. सत्यग्रही भावना को धारण करके नित्य ही परहित, परसेवा और अधिक प्रभु चिंतन में प्रेम दृढ़ करना ही कल्याण स्वरूप है—ऐसे पवित्र निश्चय को धारण करके निष्कामता, निर्मानता, परोपकार और परम वैराग्य को बुद्धि प्राप्त होकर के सत् स्वरूप में निश्चल होती है जो परम शुद्ध और निर्विकार अवस्था है।

बचन २५. हर वक्त झूठ का परित्याग करना और सत्य का ग्रहण करना और अपने स्वार्थ का अधिक मोह त्याग करके दूसरों की सेवा करनी निष्काम स्वरूप में; और अपने मानसिक दोषों को पवित्र करने का नित्य ही यत्न करना; पर निन्दा, पर धन, पर नारी को नित्य ही दुःख स्वरूप जान करके त्याग करना ही श्रेष्ट आचरण के देने वाला साधन है यानी अधिक भयानक वासनाओं की ऐसे आचरण से शुद्धि होती है और बुद्धि धैर्य को प्राप्त होती है—एसा यत्न ही देवमार्ग और कल्याण स्वरूप है।

बचन २६. जिस वक्त बुद्धि सत् आचरण में दृढ़ होती है, उस वक्त तमाम दोष खुद-बखुद ही नाश हो जाते हैं। जैसे प्रकाश के होने से अन्धकार का नाश होता है, ऐसे ही सत् आचरण से मलीन वासनाओं

जो कि नित्य शाँति को देने वाली है—ऐसा यत्न ही मानुष जन्म की सार है।

बचन ३०. शारीरिक भोगों की वासना कभी पूर्ण नहीं हो सकती है। अगर अधिक से अधिक भोग प्राप्त कर भी लिए जाएँ तो? बल्कि जितने अधिक भोग प्राप्त होते जावेंगे उतनी ही वासना बढ़ती जावेगी और शरीर नाश को प्राप्त होता जावेगा, मगर वासना का अन्त न हो सकेगा—यह ही भयानक माया का चक्र है। इसको सत-विचार द्वारा समझ करके नित्य ही सत्य परायण होने का यत्न करना ही वासना पूर्ति का साधन है, और यह ही मार्ग केवल मानुष-पन की सार है।

बचन ३१. अधिक भोग वासना के वेग को धारण कर के अति ही क्रूर कर्म करने में दृढ़ता प्राप्त होती है जो परम दुःख का स्वरूप है, यानी अपनी वासना की ही क़ैद में आ करके बड़े बड़े उपद्रव जीव करता है। मगर आखिर वासना भी पूर्ण नहीं होती है, बल्कि उलटे क्रूर कर्म अधिक दुःख का स्वरूप हो जाते हैं—यह ही अद्भुत जीवन का चक्र है। बड़े-बड़े गुणी इस चक्र में भ्रमते हुए अपनी मानसिक तृप्ति की खातिर विलक्षण कर्म करते हुए इस संसार की यात्रा से निहायत तृषावन्त ही हो करके शरीर की नाश को प्राप्त हुए हैं। इस वास्ते ऐसे संसार के चक्र को समझ कर के नित्य ही सत् सूझी को धारण करना चाहिये।

बचन ३२. सार विचार यह है कि हर एक जीव शारीरिक भोगों की वासना को धारण करके दूसरे जीवों का बधिक बनता है—यह ही प्रकृति का बन्धन है। इस अन्धकार से छूटने के वास्ते केवल सत् स्वरूप परमेश्वर के परायण होना और उसकी उपासना करनी और उसी के जगत की निष्काम भाव से सेवा करनी और शरीर के अन्त का नित्य विचार करना—ऐसी श्रेष्ठ विचार की धारणा से बुद्धि पवित्रता को

नही होता है, जो दोबारा फिर जन्म देता है। राजा से लेकर रङ्क तक, धनी से लेकर दरिद्री तक, परिवारी से लेकर निर्परिवारी तक, गुणी से लेकर मूर्ख तक, तथा ऐसे ही और तमाम जूनियों के जीव इस भोग वासना को पूर्ण करने की खातिर बिचर रहे हैं, मगर बगैर तत्त्व ज्ञान के इस सफ़र में मुक़ाम हासिल होना अति कठिन है। अच्छी तरह से इस जीवन यात्रा को अनुभव करके अपनी निर्मल उन्नति करनी चाहिये।

बचन ३७. चूँकि तमाम शरीर के भोग क्षण कारक हैं—और शरीर भी क्षण भंगुर है, इसमें मन शाँति प्राप्त होनी जानना यह अधिक मूढ़ता है। इस मूढ़ता को धारण करके हर एक जीव विकराल कर्म करता हुआ अपने बन्धन दर बन्धन को धारण करता है। आखिर बन्धन में यानी शारीरिक भोग वासना में ही शरीर को छोड़ता है—यह ही जीवन की असचर्ज यात्रा है।

बचन ३८. शरीर भी अपूर्ण है और शारीरिक भोग भी अपूर्ण हैं। इनमें तृप्ति का भ्रम त्याग करके निर्मल जागृत अवस्था को धारण करना चाहिये, जिस से मन तत्त्व आत्मा का प्रेम उत्पन्न होवे, जो तमाम खेदों के नाश करने वाला है। निश्चय करके शारीरिक भोग दुःख रूप जानने चाहियें, और निश्चय करके तमाम शारीरिक कर्म बन्धन स्वरूप जानने चाहियें, और निश्चय करके एक परम तत्त्व आत्मा को निःकर्म निःखेद शुद्ध शाँत स्वरूप जानना चाहिये—ऐसी निर्मलवृत्ति को धारण करके नित्य ही यथार्थ लाभ के मार्ग पर चलना चाहिये जो निर्भय शाँति के देने वाला है।

बचन ३९. शारीरिक भोगों से उपरमता प्राप्त करके महा रस आत्म आनन्द को पान करने का यत्न प्रयत्न धारण करना ही यथार्थ लाभ का मार्ग है। ज्यों ज्यों बुद्धि आत्म सत्ता को ग्रहण करती है त्यों-त्यों शारीरिक बासना का सफ़र पूर्ण होता जाता है, यानी अन्तर मन शाँति को प्राप्त करके तमाम शारीरिक वासनाओं से पवित्रता हासिल करती है—ऐसा यत्न ही गुणी पुरुषों का मार्ग है।

बचन ४०. नित्य ही अपनी निर्मल उन्नति को करते हुए एक प्रभु प्रेम की धारणा में निश्चित हो करके तमाम मानसिक विकारों को जो त्याग करते हैं, वह परम सज्जन सर्वउन्नति और सर्वकीर्ति को प्राप्त होते हैं। उनका मत यत्न एक आदर्श स्वरूप है।

बचन ४१. जब निश्चय करके तमाम शारीरिक भोग दुःख स्वरूप प्रतीत हुए, उस वक्त निर्मल वैराग्य को प्राप्त करके मत मार्ग में दृढ़ता प्राप्त होती है, यानी एक प्रभु ही सत् आनन्द और जानने योग समझ करके नित्य ही अपनी मानसिक अवस्था को पवित्र करने के मत यत्न को प्राप्त होते हैं। वे ही परम गुणी जीवन यात्रा की सम्पूर्णता प्राप्त करते हैं, यानी निज आनन्द नित्य स्वरूप को अनुभव करके सर्व विघ्न से पवित्र हो जाते हैं।

बचन ४२. नित्य ही मत यत्न को धारण करके एक प्रभु परायणता को दृढ़ करना चाहिये, और नित्य ही सत्संग द्वारा अपनी मानसिक उन्नति का विचार धारण करना चाहिये। और नित्य ही अनाथ अभ्यागत की सेवा में दृढ़ रहना चाहिये। और नित्य ही शारीरिक अंतिम दिशा विचारते हुए निर्मल प्रभु भक्ति में दृढ़ होना चाहिये, जो सब तापों को हरने वाली है।

बचन ४३. शारीरिक भोगों की बासना को पवित्र करने के वास्ते शरीर का साक्षी स्वरूप जो परम तत्व चेतन स्वरूप आत्मा है, उस से अधिक प्रेम रखना चाहिये। ज्यों ज्यों सत् स्वरूप में प्रेम उत्पन्न होता है, त्यों त्यों शारीरिक मान मोह जो तमाम दुःख और बिकारों का मूल है, वह नाश को प्राप्त होता है। ऐसे निर्मल यत्न से ही निर्भय शाँति प्राप्त होती है।

बचन ४४. तमाम शारीरिक भोगों की वासना अधिक बन्धन, अधिक दुःख और अधिक मलीनताई के देने वाली है। इस वास्ते मत् विश्वास को धारण करके शारीरिक भोगों में निर्मल मर्यादा धारण करके यानी आहार निर्मल, व्यवहार निर्मल, संगत निर्मल और

निर्मल यत्न में प्रवीन होकर के नित्य ही अपने परम धाम को प्राप्त करने का यत्न धारण करना ही निर्मल कल्याण के देने वाला है। भोग वासना में जले हुए जीव आत्म शान्ति को प्राप्त करके ही परम प्रसन्नता को हासिल करते हैं, क्योंकि आत्मा ही परम शान्त और सुख रूप है—ऐसा निश्चय दृढ़ करना चाहिए।

बचन ४५. जानने योग्य एक प्रभु का स्वरूप है, और स्मरण योग्य एक प्रभु का नाम है। त्यागने योग्य अहंभाव है, जो तमाम विकारों की जड़ है और समझने योग्य अपनी उन्नति और अपनी विनाश का भेद है। मान करने योग्य सत्पुरुषों का जीवन है और ग्रहण करने योग्य नित्य ही सत् शिक्षा है। संग करने योग्य सत्गुरु और सत्पुरुषों का संग है और ध्यान करने योग्य केवल आत्म स्वरूप का ध्यान है, जो नित्य प्राप्त है। और यत्न करने योग्य केवल सत् पद प्राप्ति का यत्न श्रेष्ठ है—ऐसे उत्साह को धारण करके नित्य ही अपनी मलिनताई को त्यागना ही श्रेष्ठ कर्त्तव्य है।

बचन ४६. एक प्रभु का भरोसा रखते हुए जो गुणी तमाम मानसिक विकारों का निरोध करते हैं, और श्रेष्ट आचरण को धारण करते हैं वे ही परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं। ऐसे यत्न में नित्य ही प्रवीन रहना चाहिये, क्योंकि शरीर के विनाश का समय नित्य ही निकट आ रहा है।

बचन ४७. शरीर की विनाश से पहले पहले अपने मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करके निर्भय पद को प्राप्त कर लेना ही परम उच्चता है। शारीरिक भोग नित्य अपूर्ण और दुःख रूप हैं। शारीरिक ममता अधिक अन्धकार है। अपने शरीर द्वारा ही प्रत्यक्ष संसार को अनुभव किया जाता है। इस वास्ते अपना अपना शरीर ही सब का संसार है। चूँकि शरीर आदि अन्त होने वाला है। इस वास्ते इसके मान मोह को त्याग करके शरीर का जो जीवन रूप परम तत्त्व आत्मा है, उसका विश्वासी और निश्चयी होना ही पवित्र निश्चय है।

वचन ४८. पवित्र निश्चय को धारण करके शरीर का जीवन स्वरूप जो परम सखा, नित्य रक्षक और नित्य सहायक है उसका स्मरण और ध्यान तमाम मानसिक दोषों के नाश करने वाला है। और मन शाँति निर्भय पद के देने वाला है—नित्य ही ऐसे निर्मल विश्वास को धारण करना ही परम कल्याण है।

वचन ४९. इस संसार चक्र को सही समझते हुए यानी जिस का आदि है उसका अन्त भी जरूरी है, जो सुख है वह दुख रूप हो जाएगा, जो बनी है सो बिगड़ जाएगी, जो अपना है सो बेगाना हो जाएगा, जहाँ पूर्ण आशा के यत्न में लगा हुआ है, वहाँ अन्त को निराश हो जाना है, जिस शरीर के अधिक सुखों का चितन दिन रात किया जाता है अन्त में वह शरीर ही छोड़ना पड़ता है—ऐसे संसार के अचरज खेल को समझते हुए नित्य ही सत् पद प्राप्ति का यत्न करना ही परम पवित्र साधन है।

वचन ५०—क्षण भंगुर इस जीवन यात्रा को अनुभव करके अधिक से अधिक कोशिश करके सत् स्वरूप के स्मरण ध्यान में निःचलता धारण करनी चाहिए। यह ही अधिक विशेष यत्न जीवन उन्नति का है। प्रभु के स्मरण से तमाम असत् नाम रूप की स्मृति का अभाव होता है। प्रभु के निज सुख को प्राप्त होने से तमाम दुःख रूप वासना का जाल अभाव हो जाता है। प्रभु के परायण होने से देह की परा-यणता जो परम अन्धकार का स्वरूप है, उसका नाश होता है और बुद्धि बलवान हो करके अहम् विकार जो मूल भ्रम का स्वरूप है, उसका त्याग करती है। तब ही निर्मल शान्ति को अनुभव करती है जो अकथ और अलेख है।

वचन ५१. जो कुछ श्रेष्ठ कर्तव्य करना होवे, वह स्वतन्त्र जीवन यात्रा में कर लेना चाहिए, क्योंकि शरीर के विनाश का समय निश्चित नहीं है। अपने शारीरिक सुखों को दूसरों के दुःखों में जो समर्पण करता है और निर्मान भाव में जो स्थित हुआ है, तमाम संसार को

जो काल का चक्र देखता है, और केवल अकाल स्वरूप एक आत्म शक्ति को जो समझता है और अनन्य प्रेम से उस परम तत्व के स्मरण में दृढ़ रहता है, ऐसे पवित्र निश्चय को जिसने धारण किया है, उसने इस मिथ्या संसार में सब कुछ प्राप्त कर लिया है, और परम तृप्ति निर्भय पद को प्राप्त हुआ है।

बचन ५२. इस जीवन यात्रा के यथार्थ लाभ को प्राप्त करना ही परम उत्तम है। असत शरीर जिसकी शक्ति से सरजीत हुआ है और तमाम तत्व आकार सृष्टि जिसके बल से खड़ी है, ऐसे उस महा प्रभु का स्मरण और उसकी निर्मल आज्ञा पालन करते हुए अपनी जीवन यात्रा को जो व्यतीत करता है, वह ही अधिक स्वार्थ की अग्नि से ठण्डा होकर निर्मल त्याग को प्राप्त होता है जो परम पवित्रता का स्वरूप है।

बचन ५३. अपने पवित्र निश्चय से एक प्रभु के परायण हो कर अपने सुख को जो दूसरों के दुःखों में समर्पण करता है और हृदय में नित्य ही सत् स्वरूप का निध्यासन करता है और क्षण भंगुर जीवन यात्रा में नित्य ही उदास रहता है, मान-अपमान, लाभ और हानि, सुख दुःख में जो धैर्यवान रहता है—ऐसी निर्मल स्थिति वाला पुरुष ही असली पवित्रता के भेद को जानने वाला है और उसका जीवन कर्तव्य परम कल्याणकारी है।

बचन ५४. जो अपना जीवन महज़ दूसरों के कल्याण की खातिर जानता है और अटल विश्वास से प्रभु परायणता में जो दृढ़ हुआ है, और तमाम शारीरिक कर्म जो प्रभु आज्ञा में समर्पण करता हुआ निर्मल जीवन क्रिया में विचरता है—ऐसे निश्चय वाला पुरुष ही तमाम दुर्मति वासना की मलीनताई को त्याग कर के शुद्ध आत्म आनन्द को प्राप्त होता है। ऐसे सत् यत्न को धारण करना ही गुणी पुरुषों का परम धर्म है, जिस करके अपने आप का भी कल्याण प्राप्त होवे और दूसरे जीवों के भी उद्धार का आश्रय बने।

बचन ५५. ज्यों ज्यों जो गुणी अपनी श्रेष्ठ उन्नति करता है यानी

प्रभु चिंतन में दृढ़ होना चाहिए। नित्य ही सुख व दुःख प्रभु आज्ञा में देखने चाहिए। नित्य ही अपने सुख दूसरों के दुःख के वास्ते समझने चाहिए। नित्य ही निर्मान भाव को ग्रहण करना चाहिए। नित्य ही सत विचार प्राप्ति की खातिर सत्संग में प्रेम रखना चाहिए। नित्य ही अन्तर्ध्यान में निःचल होने का यत्न करना चाहिए, क्योंकि अन्तर में ही सुख सागर प्रभु स्वरूप विराजमान हैं।

बचन ५९. जिस वक्त बुद्धि शारीरिक विकारों से निर्मल हो कर के केवल सत नाम के परायण होती है, उस वक्त तमाम वासना के अन्धकार से निर्मल हो कर शुद्ध निर्विकल्प स्वरूप अखण्ड शब्द आत्मा को अनुभव करती है, जो त्रिकाल वासनातीत, कर्मातीत और कालातीत है। ऐसे परम पद को प्राप्त होकर के फिर आवागवन के चक्र से शान्ति प्राप्त होती है।

बचन ६०. नित्य ही सत स्वरूप के परायण हो करके सत् नाम का स्मरण अनन्य भाव से करना चाहिए और परोपकार के मार्ग में दृढ़ रहना चाहिए। ऐसे सत यत्न के धारण करने से तमाम प्रकृति के बन्धन से छुटकारा प्राप्त होता है और नाम की दृढ़ उपासना से अन्तर में सत स्वरूप का साक्षातकार अनुभव होता है। जो केवल जानने योग्य और पूजने योग्य पद है। ऐसी अवस्था का जब बुद्धि अनुभव करती है, तब ज्ञान विज्ञान के अखण्ड भंडार को प्राप्त हो कर के तमाम कर्म वासना के जाल से निर्मल हो जाती है। ऐसी शुद्ध अवस्था को प्राप्त कर के नित्य आनन्द स्वरूप में लीन हो जाती है, जो वास्तविक अपना ही निज स्वरूप है। यह ही अवस्था जानने योग्य है। वह पुरुष धन्य है जिसने तमाम वासना की मलीनता को त्याग कर के निर्द्वन्द्व स्वरूप निज आत्मा में विश्राम पाया है। उस ने संसार के मार्ग में पूर्णता प्राप्त की है, और उसका अति निर्मल जीवन कर्तव्य चिरकाल तक दूसरे जीवों के वास्ते एक कल्याणकारी आदर्श स्वरूप रहता है।

बचन ६१. वास्तविक जीवन यात्रा के निर्मल भेद को जान कर के नित्य ही अमतवाद से पवित्रता हासिल करनी ही परम कल्याण है, क्योंकि अहंभाव की अति जड़ता से बुद्धि विचारहीन होकर के नित्य ही शरीर द्वारा अति मलीन कर्म करके परम दुःख को प्राप्त होता है, और जितने भी संसार में देह धारी विचर रहे हैं वे अहंभाव के जेरे-असर हो कर विचरते हैं। जैसा २ अहं भाव जिस २ बुद्धि में दृढ़ है उस के मुताबिक ही अपनी शारीरिक सृष्टि का फैलाव फैलाती है—यह ही अद्भुत संसार की रचना है।

बचन ६२. अधिक प्रयत्न करके अहंभाव यानी कर्तापन की दुर्मति मैल से पवित्रता हासिल करनी ही परम कल्याण है और मानुष जन्म का उच्च कर्तव्य है। निर्मल विवेक द्वारा जितनी बुद्धि सत्य के परायण होती है उतनी ही अहं भाव की मलिन से शुद्ध होती है और निर्मल कर्तव्य कर के निर्भय शान्ति को प्राप्त होने का यत्न करती है। बुद्धि अति अहंभाव की दृढ़ता से ही शारीरिक भोग परम सुख जान करके नित्य ही शारीरिक विकारों में तप्त रहती है, मगर सत् शान्ति का मार्ग समझ में नहीं आता है, क्योंकि अहंभाव की अधिक दृढ़ता की छाया में बुद्धि बिल्कुल अन्धी हो करके दुःख को सुख प्रतीत करती है - ऐसे अज्ञान से छूटने का यत्न ही परम साधन है।

बचन ६३. पाँच तात्त्विक शरीर विकारों का एक अथाह सागर है। बुद्धि इसमें अति आसक्त हो कर के विकारों को ही सुख रूप प्रतीत कर के नित्य ही चलायमान होती रहती है चूँकि तमाम इन्द्रियों के भोग क्षण भंगुर और वासना के वेग को अधिक तीव्र करने वाले हैं, इस वास्ते नाना प्रकार के अन्दरूनी और बैरूनी तापों में बुद्धि तपन को धारण करती हुई नित्य ही भयभीत रहती है। न ही इन्द्रियों के भोगों से संतुष्टि प्राप्त होती है और न ही वासना की जलन से छुटकारा हासिल हो सकता है—इस मन्द और अपवित्र निश्चय से बुद्धि को सावधान करना ही कल्याण कारी यत्न है।

बचन. ६४. शारीरिक भोगों का अन्त परम दुःख रूप है और शरीर भी अंत में भयानक कष्ट रूप को प्राप्त होता है—ऐसी जीवन यात्रा में जिसने शारीरिक भोगों की मर्यादा धारण नहीं की है और शारीरिक मद का त्याग करके एक परम तत्व चेतन स्वरूप जीवन शक्ति का विश्वास प्राप्त नहीं किया है, वह अपने आपका असली घातक है और अन्त को अपने मलीन कर्मों के अनुसार अति पश्चाताप को प्राप्त होता है—ऐसा निश्चय होना चाहिए।

बचन ६५. शारीरिक यात्रा एक तुच्छ समय के लिए है। इसका नाश होना आवश्यक है। और इस के सुख भोग परम क्लेश के स्वरूप में अन्त को अधिक प्रतीत होते हैं—ऐसा जीवन का असली भेद जानना चाहिए और निर्मल मत यत्न इस जीवन यात्रा में धारण करना चाहिए, जिससे परम शान्ति प्राप्त हो सके।

बचन ६६. शरीर परम दुःख रूप है। आत्मा परम सुख रूप है। शरीर विनाश को प्राप्त होने वाली वस्तु है, आत्मा नित्य है। शरीर कर्म संयुक्त होने के कारण क्षण क्षण विषय नाश को प्राप्त हो रहा है। इस वास्ते इस जीवन चक्र से स्वतन्त्र हो कर के सत स्वरूप की प्राप्ति का यत्न करना ही महा कार्य है।

बचन ६७. नित्य ही पवित्र विश्वास को धारण कर के बुद्धि को सत्य तत्व की खोज में दृढ़ करना ही तमाम विकारों से पवित्रता को देने वाला नियम है। इस वास्ते नित्य ही एक आत्मा के परायण होने का यत्न करना चाहिए। परम तत्व आत्मा की दृढ़ परायणता से बुद्धि बहिर्मुखी इन्द्रियों के भोगों की वासना से पवित्र होकर के अन्तर्मुख में निःचल होने का यत्न करती है और अन्तर्मुख होने से ही परम शुद्ध निराधार अविनाशी तत्व का बोध प्राप्त होता है जो अखण्ड शान्ति है।

बचन ६८. एक आत्मा को जब बुद्धि कर्ता हरता जान करके अधिक दृढ़ निश्चय से मन और पवन के साथ अनन्य प्रेम से चिन्तन

वासना से पवित्र हो करके निज स्वरूप में निःचल होती है और— शारीरिक कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति से निर्बन्ध हो करके स्थिर होती है।

बचन ७३. जब बुद्धि निश्चय करके आत्मा को अन्तर में निराकार और निर्लेप करके अनुभव करती है, तब आकार मई सृष्टि से असंग हो करके एक परम तत्व आत्मा में समता को प्राप्त होती है और तमाम शारीरिक और मानसिक दोषों से पवित्र हो करके सत् स्वरूप में एकाग्र होती है—यह ही आनन्द मई अवस्था है।

बचन ७४. जब बुद्धि अधिक दृढ़ निश्चय से आत्म चिन्तन को धारण करती है तब तमाम शारीरिक भोगों की वासना से पवित्र हो करके अन्तमुंख में निज स्वरूप अविनाशी शब्द को अनुभव करती है, जो अनन्त महिमा और अनन्त शक्ति का भण्डार है। जिस के अनुभव करने से तमाम संसार जड़ स्वरूप छाया सम प्रतीत होता है और केवल एक अखण्ड आत्मा ही सर्व प्रकाशी और सर्व स्वरूप जान पड़ता है—ऐसा जानना ही केवल सार है।

बचन ७५. जब बुद्धि अन्तरात्मा को असंग और गुणातीत करके अनुभव करती है, तब तमाम गुण मई सृष्टि की कामना और कल्पना से निर्बन्ध हो जाती है। और शारीरिक कर्मों की तमाम आसक्ति से विजय हासिल करती है—यानी राग द्वेष से रहित हो करके शारीरिक कर्मों में निमित्त मात्र विचरती है—यह ही अवस्था वासनातीत और परम पवित्र है।

बचन ७६. जब बुद्धि आत्मा को निर्द्वन्द्व करके अनुभव करती है, तब तमाम शारीरिक कर्मों की द्वन्द्वता से पवित्र हो करके नित्य स्वरूप में निःचल होती है—ऐसी अखण्ड समाधि की अनुभवता को धारण करके नित्य ही आनन्द स्वरूप में विचरती है। यानी शारीरिक सुख व दुःख की कल्पना से पवित्र हो करके अन्तर में अविनाशी शब्द में स्थिर होती है।

बचन ७७. जब बुद्धि तमाम इन्द्रियों के भोगों से उपरस हो कर

बचन ८१. इस संसार यात्रा में केवल सत्पुरुषों के सत् आदर्श जीवन को विचार कर के अपने आप की निर्मल कल्याण का यत्न करना ही सब विकारों से पवित्रता के देने वाला है। हर समय एक अखण्ड अविनाशी परमेश्वर का पूर्ण निश्चय धारण करके इस नाशवान् शरीर को नित्य ही निर्मल कर्तव्य में स्थित करना चाहिये।

बचन ८२. निर्मल कर्तव्य की धारणा से बुद्धि निष्पाप हो करके सत स्वरूप की भक्ति और उपासना में दृढ़ होती है, यानी आहार, व्यवहार और संगत अति पवित्र रूप में धारण करके नित्य ही एक अखण्ड अविनाशी परमेश्वर के स्मरण ध्यान में निःचल होती है और शरीर द्वारा निष्काम परोपकार में स्थित होने का यत्न करती है। ऐसा यत्न अन्तःकरण की अशुद्धि को हरने वाला यथार्थ साधन है। इस वास्ते परम उत्साह से इस क्षण भंगुर शरीर से परमार्थ महा प्रसाद का लाभ प्राप्त कर लेना चाहिए, क्योंकि एक समय यह शरीर नाश को प्राप्त हो जावेगा। ऐसे निर्मल पुरुषार्थ की दृढ़ता सब को प्राप्त होवे।

इस अगोचर प्रसंग को श्रवण, मनन और निध्यासन कर के अपने आप का सुधार करना ही गुरमुखों का परम कर्तव्य है। और अपने सुधार से ही तमाम मानुषों का सुधार होता है—ऐसा पवित्र निश्चय दृढ़ करना चाहिये।

समता बोध

(पाँचवाँ अनुभव)

ओ३म ब्रह्म सत्यम् निरंकार, अजन्मा, अद्वैत पुरुषा
सर्व व्यापक, कल्याण मूर्त, परमेश्वराय नमस्ते

(पहिला निधान)

(क) वासना विवेक

बचन १. इस दृश्यमान संसार का जब तक पूर्ण निर्णय न प्राप्त होवे, तब तक जीव को कोई कल्याण का मार्ग नहीं सूझता। इस वास्ते इस आश्चर्य स्वरूप संसार की लीला का भेद जानना ही सत विचार है—और मनुष्य जन्म का परम धर्म है। वैसे तो हर एक मनुष्य जीवन क्रिया में हर वक्त लवलीन रहता है ख्वाह उसको उस क्रिया में सुख प्राप्त होवे ख्वाह दुख—यानी एक लम्हे भी निःकर्म नहीं होता।

बचन २. इस अधिक अशान्ति का विचार करना और फिर अनुकूल यत्न धारण करना, जिससे निःकर्म अवस्था प्राप्त होवे—यह ही सत पुरुषार्थ है। गहरी गौर करके विचार किया जावे तो हर एक जीव तृषावन्त होकर भरम रहा है और अधिक से अधिक यत्न करके भी फिर अशान्त है—और इस ही अशाँतमयी हालत में शरीर को छोड़कर फिर किसी दूसरी सूरत को अख्तयार करके फिर अपनी पूर्ण अवस्था प्राप्ति का यत्न करता है। यह ही चक्र आवागवन है—यानी जब तक पूर्ण आनन्द प्राप्त न हो जावे, तब तक अनेक शरीरों को धारण करके आर्थिक-अनार्थिक क्रिया को करता है, और दुख व सुख पाता है यह ही असली संसार की रचना है। हर एक जीव अपनी २ कल्पना का बाँधा हुआ अनेक कर्मों को धारण करके शरीर यात्रा में विचर रहा है।

बचन ३. वास्तव में अन्तर से हर एक जीव अटल शान्ति को प्राप्त करने का यत्न करता है। मगर सत विचार और सत निध्यास के न होने से यह यत्न अकार्थ हो जाता है यानी अनार्थिक क्रिया का

साधन करके अपने आपको फिर अशान्ति के ही भंवर में ले जाता है और आखिर में अपनी अन्ध-मति पर बड़ा पश्चाताप करता है। मगर जो कुछ भी सत-असत् जीवन में कर लिया है। उसका दंड अवश्य मिलता है यह ही माया का आश्चर्य चक्र है।

बचन ४. हर एक जीव को इस संसार की यात्रा का भली प्रकार से विचार करना चाहिये, कि इस मार्ग में आने का कारण क्या है? और आकर कौनसा साधन धारण किया जावे जिससे सब मनोर्थ पूर्ण हो जावे। अगर बगैर विचार के ही शारीरिक क्रिया को पूर्ण करने का यत्न धारण कर लिया जावे तो पूर्ण शान्ति प्राप्त होनी मुश्किल है। आखिर इस संसार से अति दुखी होकर ही जाना पड़ता है। इस वास्ते जीवन के हर एक पहलू को विचार करना चाहिये और फिर सही पुरुषार्थ धारण करके अपना कल्याण करना चाहिये। ऐसा विचार और साधना ही जीवन का सार है।

बचन ५. जीव की अशान्ति का कारण एक वासना ही है, जिसकी कैद में आकर अनेक प्रकार के कौतुक को देखता है, और भोगने के यत्न में लगा रहता है। वासना का बन्धन ही भ्रम मूल है और यह ही भव दुस्तर है। जब तक पूर्ण सत् भाव से यत्न न किया जावे तब तक निर्वास होना कठिन है। प्रथम इस भ्रम में फंसे हुए जीव को पता ही नहीं लगता कि वासना दुख का कारण है या सुख का, यानी वासना ही को पूर्ण करते-करते अनेक प्रकार के सत्-असत् कर्मों के भोग में हर वक्त चलायमान रहता है मगर शान्ति प्राप्त नहीं होती। इस अधिक दीर्घ रोग का सही विचार करना और फिर सत् उपाय करना ही असली ज्ञान है।

बचन ६. इस वासना रूपी संसार के अद्भुत चक्र का कोई वार-पार नहीं है। यानी जीव अनेक प्रकार की कल्पना द्वारा सूक्ष्म स्थूल सृष्टि को पलक २ में अनेक स्वरूप में धारण करके दुख व सुख पाता है, यानी स्थिर नहीं होता। यह ही चलायमान हालत संसार का स्वरूप है।

जब तक वासना रूपी अंधकार का नाश नहीं होता, तब तक सच्चिदानन्द स्वरूप को अनुभव नहीं कर सकता जो अखण्ड शान्ति है।

वचन ७. अपनी अज्ञान स्वरूप वासना ही अनेक प्रकार का चक्र जीव को दिखलाती है। मगर सत बोध न होने के कारण इस वासना स्वरूप अंधकार को अधिक से अधिक यत्न करके बढ़ाता है, और इस जाल में ही असली खुशी तलाश करता है। मगर इस बेबुनियाद और क्षणभंगुर कल्पना के समुद्र में शान्ति कहां ? आखिर इस अधिक वासना अंधकार में ही कई प्रकार की रचना को देख २ कर मोहित होता रहता है। यह ही माया का खेल है।

बचन ८. इस तरह जीव अनेक वासना के तुरंग देख २ कर कामना के वश में होकर अनेक प्रकार के यत्न संतोष की खातिर करता है। मगर इस वैतरनी रूपी वासना के सागर में शान्ति प्राप्त नहीं होती। इसी भ्रम अंधकार में नित्य ही अनेक प्रकार की शरीर रूपी सृष्टि को धारण करता है, और त्याग करता है। यानी जन्म-मरन के चक्र में भरमता रहता है। यह ही अद्भुत लीला है। इससे पार होना ही परम धाम की प्राप्ति यानी अविनाशी स्वरूप में स्थिति है।

बचन ९. वासना की कैद जीव को एक पलक भी शान्त नहीं होने देती यानी कर्म फल द्वन्द्व के दुख व सुख में नित्य ही चलायमान रहता है। अधिक से अधिक चतुराई धार कर के भी फिर अज्ञान वश होकर उलटा अपने आपको कर्म फल द्वन्द्व में फंसा कर नित्य ही दुखी रहता है। यह ही भवदुस्तर मार्ग अति गहन है। इस से पार होना ही मानुष जन्म का पूर्ण फल है।

बचन १०. जब जीव कर्म अभिमानी हुआ—यानी कर्तापन के बन्धन में आया तब कर्म फल द्वन्द्व जो पाँच तत्वों का विकार है—उसकी वासना में भरमने लगा। और वह अभिमानयुक्त अवस्था ही जीव का स्वरूप है। कर्तापन के बन्धन में आने का कोई कारण नहीं है। इस वास्ते यह कल्पना ही माया का स्वरूप है। इसका निर्णय

यथार्थ स्वरूप से होना कठिन है। निर्णय हमेशा सत् वस्तु का होता है। जो चीज़ वास्तव में है ही नहीं, और प्रत्यक्ष स्वरूप में भासती है जब उसकी सार विचार की गई तो उसका स्वरूप अभाव हो जाता है। सार निर्णय यह है कि माया भ्रम ही जीव की कल्पना है। जब जीव अकल्पित हुआ तब सब भ्रम से निर्मल होकर केवल स्वरूप हो जाता है। जो जीव का नित्य स्वरूप है और यह निर्वाच्य अवस्था अपने अनुभव करके ही जानने योग्य है न कि वाद-विवाद से कुछ हासिल हो सकता है। इस वास्ते प्रथम अपने अज्ञान को जो अशान्ति का कारण है—इस को दूर करना चाहिये। जब ममता भ्रम का नाश हो गया तब खुद ही अपने अनुभव में समता आनन्द प्राप्त हो जाता है जो केवल स्वरूप है और कहन कथन से बाहर है।

बचन ११. कर्तापन का अभिमान ही वासना रूपी जाल को उत्पन्न करता है। जब तक इस मूल भ्रम का अभाव न हो जावे तब तक वासना निवृत्त नहीं होती और जब तक वासना में जीव बंधा हुआ है, तब तक जन्म मरण के दुख से छुटकारा नहीं मिलता। इस वास्ते निर्मल विचार के द्वारा अपने भ्रम का छेदन करना ही कल्याणकारी यत्न है और मानुष जन्म का योग धर्म है।

बचन १२. कर्तापन अभिमान से तीन गुण स्वरूप वासना प्रगट होकर चराचर भूत संसार को रचती है, और हर एक जीव इस त्रिगुणी वासना में बाँधा हुआ अनेक प्रकार के कर्म करता है, और वासना के अद्भुत सागर में बारम्बार गोते खाता है। कोई ही विवेकी पुरुष इस कठिन जाल से मुक्त होकर सत्य स्वरूप में लीन होता है। सब जीवों का परम धर्म यह ही है कि मानुष जन्म में आकर अपनी उन्नति सत् पद की प्राप्ति की खातिर करनी, जिस से निर्भय सुख प्राप्त होवे।

बचन १३. त्रिगुणी वासना का स्वरूप ही कुल संसार है। और उत्पत्ति प्रलय का कारण भी वासना ही है। जो कुछ भी प्रकृति जाल प्रतीत हो रहा है, वह सब वासना का ही प्रकाश है। यह सब निर्णय

सत्य स्वरूप के अनुभव से होता है। इस वास्ते परम तत्व चेतन प्रकाश के अनुभव करने का यत्न ही वासना की निवृत्ति है, और अचल शान्ति है। हर एक मनुष्य में पूर्ण निश्चय सत्य स्वरूप की प्राप्ति का होना चाहिये। यह ही **आस्तिकपन** है।

वचन १४ जिस २ गुण के बन्धन में जीव बँधा होता है, उसी के मुताबिक ही संसार में कर्म क्रीड़ा करता है, और गुणों की तबदीली ही वासना अंधकार को फैलाती है। जीव वासना के वश होकर शारीरिक भोगों में आसक्त हो जाता है और शरीर के भोगों के बन्धन में आकर दृष्यमान संसार में मोहित होकर भरमता है। यानी जीव अपनी वासना से ही शरीर और प्रत्यक्ष संसार के मोह में गिरफ्तार रहता है। जब तक वासना रूपी चक्र का अभाव नहीं होता, तब तक समता अखण्ड शान्ति प्राप्त नहीं होती।

वचन १५. गुणों के वश में होकर जीव आश्चर्य से आश्चर्य खेल को रचता है और अपनी मनोकामना पूर्ण करने के भाव में रहता है। मगर यह नाशवान् माया का चक्र कहाँ शान्ति दे सकता है? अन्त को दुखित होकर ही शरीर को छोड़ता है। इस वास्ते जीवित काल में ऐसा पुरुषार्थ धारण करना चाहिये जिससे सत् स्वरूप की प्राप्ति हो जावे और वासना रूपी भ्रम जाल से रिहाई मिले।

वचन १६. जितने भी ऊँच-नीच कर्म जीव करता है, वह सब त्रिगुणी वासना के अनुकूल ही करता है। जीव का स्वभाव ही गुणों का स्वरूप है। जो जीव सात्विकी वासना को लिये हुए विचरता है वह अति ही निर्मल कर्म करता है। यानी सत्य, मैत्री, क्षमा, प्रभु विश्वास, शील, संतोष, सादगी, प्रेम आदि महागुणों को अपने सात्विकी स्वभाव में प्रगट करता है और जीवों को सुख देना ही, अपना परम धर्म समझता है। ऐसा पुरुष ही अपने सत पुरुषार्थ द्वारा निर्वाण पद को प्राप्त हो सकता है, जो समता आनन्द का सागर है।

वचन १७. जो जीव अधिक रजोगुणी वासना के बन्धन में विचरता

है। वह अति ही स्वार्थ भोग सम्पदा को एकत्र करने के यत्न में रहता है। यहाँ तक कि सब संसार को दमन करके अपने भोगों को पूर्ण करता है। मगर आखिर शरीर के विनाश के समय सब भोग अधिक दुख का स्वरूप दिखाई देते हैं और इस संसार से अति तृषावन्त हो करके ही जाता है। ऐसा पुरुष जो अधिक रजोगुणी स्वभाव वाला है। वह हर वक्त अपने शारीरिक भोगों में ही आसक्त रहता है। यानी अधिक कामी, क्रोधी, लोभी और अभिमानी होता है। किसी हालत में भी स्वार्थ अंधकार से रंचक-भर रिहाई नहीं पा सकता। अपने शरीर के सुख प्राप्त करने में ही परम धर्म जानता है। यह रजोगुणी वासना अधिक अंधकार है—एक पलक भी जीव निर्भय नहीं हो सकता।

बचन १८. जो जीव तमोगुणी वासना लेकर विचरता है वह अधिक अशान्ति में रहता है और अति ही मलीन कर्म करता है। यानी शरीर की नियम अनुकूल क्रिया को छोड़कर अति भोगों का भोगना ही जीवन धर्म समझता है, और उसी को असली आनन्द समझता है। अधिक से अधिक विकारों को धारण करता है। यानी छल, कपट, निर्लज्जा, चोरी, कत्ल, अन्ध विश्वास आदि महा अवगुणों में विचरना अपना धर्म समझता है। अन्त को वह अधिक क्लेशयुक्त होकर इस संसार से जाता है, और कई जन्म धार कर पाप कर्मों की सज़ा को भोगता है।

बचन १९. सब दुनिया का चक्र गुण अनुकूल चल रहा है। जब सात्विकगुण प्रधान होता है। तब सत् धर्म का प्रकाश होता है और तमाम जीव शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। और शारीरिक भोग वासना से त्याग हासिल करने का यत्न करते—मानसिक शान्ति को प्राप्त करना परम धर्म जानते हैं।

बचन २० जब रजोगुण प्रधान होता है, तब जीव अधिक सम्पदा एकत्र करते हैं। और अधिक भोगों में आसक्त रहते हैं और विचित्र

से विचित्र शारीरिक सुख के सामान प्रगट करते हैं। जीवन धर्म शारीरिक सुख ही जानते हैं। नाना प्रकार के भोग पदार्थों को प्राप्त करने की खातिर दिन रात लगे रहते हैं। शारीरिक उन्नति के साधन ऐसे-ऐसे धारण करते हैं जिनके जाल में आसक्त होकर ईश्वर हस्ती से मुनकिर हो जाते हैं। यानी सब कुछ शरीर का ही सुख जानते हैं। मानसिक शान्ति के विचार वाली बुद्धि को अधिक शारीरिक भोगों में फंस कर नाश कर देते हैं। और आखिर अधिक भोग विकारों में शारीरिक उन्नति भी नाश कर देते हैं। और आत्मिक उन्नति से पहले ही नास्तिक हो चुके हैं, ऐसी हालत में अधिक तमोगुणी वासना प्रगट होकर जीवों को अधिक संकट में घेर लेती है। और तमाम जीव मलीन वासना की पाबन्दी में आकर अधिक दुख पाते हैं। यह ही प्रभु की माया का खेल है।

बचन २१· जब तमोगुणी वासना प्रधान जीवों में आ जाती है, तब स्वार्थ अंधकार इस कदर बढ़ जाता है कि तमाम जीव आपस में कट कट करके मरते हैं—एक दूसरे का हक हासिल करने की खातिर। और कोई शान्ति का रास्ता दिखलाई नहीं देता। एक दूसरे की नाश की खातिर दिन-रात लगे रहते हैं। इस कदर वासना अंधमार हर एक जीव को घेर लेता है कि छल कपट के बगैर एक बचन भी करना कठिन हो जाता है। तब अधिक उपद्रव संसार में प्रगट होने लगता है। और तमाम जीव तमोगुणी वासना के जाल में आकर हर प्रकार की उन्नति को नाश करके अधिक दुखी होते हैं।

बचन २२· यह त्रिगुणी वासना का जाल ही कई सूरतें जीवों को दिखलाता है। हर एक जीव वासना की पाबन्दी में प्रेरित होकर शुभ-अशुभ कर्म करके उनका नतीजा दुःख या सुख पाता है। किसी हालत में भी अचल शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता। यह ही संसार का मार्ग है। मानुष जन्म में आकर जिसने इस भ्रम जाल का विचार नहीं किया, और न ही अपनी जीवन क्रिया का विचार किया, वह मानुष

स्वरूप में पशु ही जानें। मानसिक शान्ति की प्राप्ति की ख़ातिर ही मानुष जन्म है। शारीरिक भोगों में तो और योनियों में भी जीव आसक्त होकर सुख व दुःख पाता है। इस वासना रूपी घोर जाल से छूटने के वास्ते ही मानुष जन्म है, इस वास्ते नित्य ही सत् पुरुषार्थ द्वारा अपना कल्याण करना हर एक मानुषमात्र का परम धर्म है।

बचन २३. इस वासना रूपी भ्रम जाल का—जिसमें तमाम संसार लोत-पोत हो रहा है—अच्छी तरह विचार करके इससे छूटने के वास्ते जो यत्न करता है, वह ही प्रधान मानुष और धर्मवादी है। वासना से ही छूटने के वास्ते सत् धर्म की साधना है।

बचन २४. वैसे तो जीव शारीरिक क्रिया को वासना की पाबन्दी में आकर अच्छी तरह से जानता है। और शारीरिक भोगों की प्राप्ति की ख़ातिर हर तरीका की ग़ौरोफिकर में लगा रहता है। ख़ाहे धर्म-वादी है ख़ाहे अधर्मवादी है। एक लम्ह भी शान्ति करके बैठ नहीं सकता है। यह ही भ्रम चक्र है। अच्छी तरह से विचार करके वासना निवृत्ति की ख़ातिर पुरुषार्थ धारण करना ही सत् धर्म की दृढ़ता है।

बचन २५. धर्म मार्ग की सार यह है कि जिन साधनों से वासना का अंधकार अन्तःकरण से निवृत्त होता है, और आत्म-निश्चय प्राप्त होता है—वह साधना ही धर्म का स्वरूप है। इसके उलट जिस मलीन धारणा से वासना अंधकार बढ़ता है और पाप कर्मों में आसक्ति पैदा होती है, वह साधना अधर्म का स्वरूप है। इन ही धर्म-अधर्म दो मार्गों का विचार हासिल करना और धर्म मार्ग पर दृढ़ होना ही परम साधन है जो सत् शान्ति के देने वाला है।

(दूसरा निधान)

(ख) वासना छेदन विवेक

बचन २६. इस वासना रूपी भयंकर जाल की पहिले पहचान करनी और फिर निवृति की खातिर अनुकूल यत्न करना ही विशेष साधन है। इस वास्ते सत्पुरुषों की संगत द्वारा अपने बन्धन और मुक्त के भेद को जानना चाहिये और शुद्ध विवेक को धारण कर के वासना रूपी अंधकार की निवृत्ति करनी चाहिये। ऐसी साधना करते २ जीव को निर्मल शान्ति प्राप्त हो जाती है।

बचन २७. कर्म अभिमान और कर्म फल भोग की आसक्ति ही भ्रम जाल है। जब तक इसकी निवृत्ति न होवे, तब तक सत् तत्त्व की प्राप्ति होनी कठिन है। जो समता आनन्द का स्वरूप है। इस वास्ते कर्म अभिमान का त्याग करना ही परम त्याग है और इस निर्मल त्याग को प्राप्त करके जो सार स्वरूप अनुभव होता है, वह ही निर्भय धाम है।

बचन २८. सत्पुरुषों की सीख द्वारा अपनी उन्नति करनी ही मुख्य धर्म है। वासना जाल में तो हर एक जीव स्वाभाविक विचर रहा है और दुख व सुख पा रहा है। इस अन्धकार से छूटने के वास्ते यथार्थ साधन की ज़रूरत है। जो २ उपाय सत्पुरुषों ने धारण किये हैं उनका अपने जीवन में निध्यास करना ही सत् साधन है।

बचन २९. मन की विकराल अवस्था पर विजय हासिल करनी अति कठिन है। मगर निर्मल साधन से जीव निश्चलता को प्राप्त हो

जाता है। बुद्धि मन और पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ जब तक एक स्वरूप में न आवें तब तक कर्म अभिमान का नाश नहीं होता जो भ्रम का मूल है।

बचन ३०. सत्पुरुषों की सीख द्वारा प्रथम अपने स्वार्थ की शुद्धि होनी चाहिये। स्वार्थ की शुद्धि से परमार्थ बोध प्राप्त होता है। जीवन क्रिया की शुद्धि ही स्वार्थ शुद्धि है। यानी आहार, व्यवहार, संगत, विचार की हर वक्त पवित्रता हासिल करनी चाहिये। यह शुद्ध आचरण बुद्धि को बलवान करता है। और सत् स्वरूप का निश्चय देता है। सत् स्वरूप के दृढ़ निश्चय से जीव वासना अन्धकार को छेदन करके निर्भय हो जाता है।

बचन ३१. प्रथम शरीर के विवेक का हासिल करना ही सत्स्वरूप का निश्चय देने वाला है। यानी शरीर और जीवन-शक्ति के भेद को जानना ही निर्मल विवेक है। बुद्धि, मन, अहंकार और पाँच तत्वों का यह शरीर एक यंत्र बना हुआ है। और जीवन शक्ति यानी आत्मा नित्य इस को प्रकाश कर रही है। बुद्धि तमाम शरीर की क्रिया को जानती है मगर जीवन शक्ति को अनुभव नहीं कर सकती है। जीवन शक्ति का अनुभव करना ही बुद्धि की निश्चलता और वासना से निवृत्त होना है।

बचन ३२. बुद्धि हर वक्त कर्म अभिमान में आसक्त होकर कर्म फल भोग में विचरती रहती है, और दुख व सुख में चलायमान होती रहती है। यह ही तमाम शरीर की क्रिया है। यानी ग्रहण और त्याग के खेद में नित्य ही अधीर रहती है। एक तत्त्व स्वरूप आत्मा का जानना ही इस अंधकार से प्रकाश के देने वाला है, जो परम आनन्द स्वरूप है।

बचन ३३. सत् स्वरूप का विश्राम और सत् स्वरूप का निध्यास ही सब भ्रम गुबार से विजय देने वाला है—तमाम गुणी पुरुषों का सार निर्णय यह ही है। शरीर की ममता ही वासना का अन्धकार है

और आत्म समता ही परम योग और निर्भय शान्ति है। शरीर की ममता का छेदन करना ही वासना की निवृत्ति है।

बचन ३४. शरीर की ममता का छेदन करना अति ही कठिन है क्यों कि जीव कर्म अभिमान में आसक्त हुआ २ एक पलक भी शरीर के भोगों से छूट नहीं सकता। इस अद्भुत माया के बन्धन को तोड़ना ही सर्व विजय है। वह तत्त्व ज्ञानी सर्व सार के जानने वाला है जिसने नित्य ही निर्मल यत्न से अपने मानसिक दोषों को सत् स्वरूप के प्रेम में भस्म किया है। और समता आनन्द अति निर्मल गति को जो प्राप्त हुआ है।

बचन ३५. एक आत्मा का विश्राम और अभ्यास धारण करने वाला तमाम शरीर के भोगों को जो दुःख स्वरूप करके जानने वाला और तमाम सुखों को जो और जीवों की सेवा में अर्पण करने वाला है। ऐसा परोपकारी और सत् विश्रामी पुरुष ही इस वासना के गहरे जाल से निकल कर परमधाम को प्राप्त होता है।

बचन ३६. जिसने निश्चय करके शरीर को विनाश जाना है, और आत्मा को अविनाशी जाना है, और हर वक्त आत्म चिन्तन में जो यथार्थ स्वरूप से दृढ़ हुआ है और नित्य निर्माण भाव से जो संसार में विचरता है, और अधिक प्रेम से सब जीवों की सेवा करता है। और तमाम शारीरिक कर्म प्रभु आज्ञा में समर्पण करता जाता है। सुख दुःख में समान भाव धारण करता है, ऐसी दृढ़ उपासना को जिसने धारण किया है और निमख २ करके प्रभु नाम का स्मरण करता है, वह ही परम पुरुष समता बुद्धि को प्राप्त होकर निर्वाण पद में स्थित हो जाता है जो नित्य आनन्द स्वरूप है।

बचन ३७. दृढ़ निश्चय से जिसने निष्काम कर्म का मार्ग धारण किया है, यानी तमाम कर्मों के फल को ईश्वर इच्छा में जो देखता है, और एक नाम में चित्तवृत्ति को दृढ़ करता है और कर्मों के फल द्वन्द्व में निःखेद रहता है—उस महा पुरुष ने समता बुद्धि प्राप्त की है।

और अन्तर्गत विषय आत्म आनन्द में मग्न रहता है। पूर्ण यत्न से आत्म धुन में स्थिर होकर सब वासना के जाल से उस गुणी पुरुष ने विजय प्राप्त की हैं उसकी जीवन क्रीड़ा तमाम जीवों के वास्ते आनन्ददायक है।

वचन ३८. कर्म फल द्वन्द्व में हर वक्त जीव आसक्त रहता है। यानी किसी चीज़ की प्राप्ति में हर्षमान होता है और किसी की प्राप्ति में शोकमान। इसी राग द्वेष की अग्नि में हर वक्त जीव अशान्त रहता है। क्या बड़े-से-बड़े ऐश्वर्य वाला, क्या दरिद्री कंगाल—सब की मानसिक दशा ऐसे ही अधीर रहती है। यह ही अनाथिक कल्पना सत् स्वरूप का अनुभव नहीं होने देती—जो हर हालत में सम स्वरूप है।

वचन ३९. इस कर्म फल द्वन्द्व ममता रूपी घोर जाल से छूटने के वास्ते निष्काम कर्म का मार्ग सहज है। यानी तमाम शारीरिक कर्म प्रभु आज्ञा में समर्पण किये जावें और अन्तर्गत विषय सत्पुरुषों की सीख द्वारा एक नाम का चिन्तन किया जावे। बारम्बार मनोवृत्ति को एक नाम में लगाया जावे। होना और न होना प्रभु इच्छा में देखा जावे। यह अनन्य भक्ति ही सब अन्तःकरण के दोषों को नाश कर देती है, और अन्तर्गत विषय पारब्रह्म शब्द को अनुभव करके बुद्धि उसी में लीन हो जाती है। **यह ही समता तत्व का बोध है।** यानी बुद्धि तमाम कर्मों के फल में समानता को प्राप्त करके निःकर्म हो जाती है। एक पलक भी निःकर्म हालत में स्थिर होने से आत्म तत्व को अनुभव कर लेती है, जो अखण्ड शाँति का सागर है।

वचन ४०. कर्म अभिमान ही इस वासना रूपी अन्धकार को प्रगट करने वाला है। जब तक कर्म अभिमान नाश न हो जावे, तब तक वासना से निवृत्ति नहीं हो सकती है, ख़्वाह कितने ही और उपाय या साधन क्यों न करे। जिस तरह कि पल २ विषय जीव "मैं कर्त्ता" को कल्पता है और कर्मों में आसक्त होकर दुःख व सुख को ग्रहण करता

है। एक पलक भी इस अनार्थिक बाणी का त्याग नहीं करता—यानी अपना जीवन स्वरूप ही यह कर्तापन बना लिया है, और बारम्बार वासना के चक्र में भ्रमता हुआ नित्य ही भयभीत रहता है।

बचन ४१ कोई भी विवेकी पुरुष इस कर्म अभिमान से मुक्त होने का यत्न करता है, और कोई ही साधना युक्त पुरुष निःकर्म सिद्धि को प्राप्त होता है, यानी समता आनन्द को अनुभव करता है। बड़े-बड़े यज्ञ, तप, योग, दान, सेवा आदि कर्मों को अगर धारण कर लिया जावे और पलक-पलक विषय अपने शरीर को घायल किया जावे तो भी वासना अन्धकार का नाश नहीं होता। बल्कि ऐसे उग्र कर्म करने से बुद्धि ज्यादा अभिमानयुक्त होकर सत्मार्ग से पतित हो जाती है और अधिक स्वार्थ भोगों के बन्धन में आकर नित्य ही अशान्त रहती है।

बचन ४२. वासना निवृत्ति की खातिर तो इतने यत्न किये। मगर सब कुछ करके भी फिर वासना अन्धकार कई गुना बढ़ गया। यह ही आश्चर्य चक्र है। बग़ैर निर्मल विवेक के और सत्पुरुषों की सीख के कभी भी जीव निर्वास गति यानी आत्म आनन्द को प्राप्त नहीं हो सकता ख़्वाहे लोग दिखलावे की खातिर कितना ही ज़ाहिरी प्रपंच क्यों न बना लेवे।

बचन ४३. तप, ज्ञान, ध्यान, उपासना आदि सब कर्म वासना निवृत्ति की खातिर हैं अगर सत् विश्वास करके अपने जीवन कल्याण की खातिर इन साधनों को यर्थाथ स्वरूप से न धारण किया जावे, तो सब यत्न अकार्थ ही जानें। यानी मानसिक दोषों की निवृत्ति की बजाए इन साधनों का अधिक अभिमान प्रचण्ड होकर वासना के वेग को अधिक कर देता है।

बचन ४४. बड़े बड़े धर्म आचार्य और दानी पुरुष और कई विद्वान ज्ञानी देखने में अधिक-से-अधिक नित्य आ रहे हैं। मगर ऐसा पुरुष जो निर्वास गति में स्थिर हुआ हो, उसका दर्शन तो अति ही दुर्लभ

है। इसका सार यह है कि जितने भी यह श्रेष्ठ आचारी जाहिरी दिखलाई देते हैं, और बड़े २ धर्म के कामों में अपने जीवन को कुरबान करते हुए देखने में आते हैं—उनके अन्दर से कर्म अभिमान का नाश नहीं हुआ—जो निर्वास आनन्द के देने वाला है। यानी अधिक सत्कर्मों को धारण करने से उनके फल सुख स्वरूप प्राप्ति की चाहना अन्तःकरण में बनी रहती है, जो आवागमन का कारण है।

बचन ४५. जब तक कि शरीर के सुखों की खातिर सत्कर्म करता है और आत्म निश्चय को प्राप्त नहीं हुआ, वह स्वार्थवादी पुरुष सब कुछ करके भी अपने आपको बंधन में डाल रहा है। कर्म तो हर हालत में जीव को करना पड़ता है। ख़्वाहे आसक्ति रहित होकर ज्ञान बुद्धि से किया जावे, ख़्वाहे आसक्ति सहति होकर अज्ञान बुद्धि से किया जावे। आसक्ति रहित यानी अभिमान रहित होकर जो कर्म किया जावे उसके फल का बंधन जीव को नहीं है, और जो अभिमान युक्त होकर कर्म किया जावे, उसका फल फिर जीव को आवागवन के देने वाला है। सार निर्णय यह है, कि कर्मों की आसक्ति यानी अभिमान जब तक अन्तःकरण से नाश न हो जावे तब तक निर्वास आनन्द प्राप्त नहीं होता। ख़्वाहे कितने ही स्वार्थ बन्धन में आकर कठिन नियम क्यों न धारण किये जावें।

बचन ४६. ज्ञान निश्चय से ही कल्याण हो सकती है। इस वास्ते निर्मल भावना से कर्म निःकर्म मार्ग को विचार करके सत् पुरुषार्थ धारण करना चाहिये, जिससे मानुष जन्म में आकर कल्याण प्राप्त हो जावे। कर्म का फल तो अमिट है, ख़्वाहे ज्ञान भावना से किया जावे ख़्वाहे अज्ञान भावना से। सार निर्णय यह है कि जो कर्म ज्ञान भावना से यानी प्रभु इच्छा में समर्पण करके किये जावें, उन कर्मों के फल में बुद्धि अधीर नहीं होती, यानी आसक्ति रहित होकर विचरती है और जो कर्म अभिमान युक्त होकर किये जावें उनके फल प्राप्ति में बुद्धि अधीर हो जाती है और फिर उस दुख निवृत्ति की खातिर और यत्न

करती है। इस तरह कर्म जंजाल वासना स्वरूप बढ़ता जाता है और नित्य ही जन्म-मरण के मार्ग में जीव विचरता है।

बचन ४७. कर्म फल द्वन्द्व का त्याग ही असली त्याग है। जब तक कि इस निर्मल त्याग को प्राप्त न होवे, तब तक कभी भी बुद्धि स्थिर नहीं होती। ख़्वाहे ज़ाहिरी स्वरूप में सर्व अतीत हो जावे। बग़ैर दृढ़ उपासना के कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति नाश नहीं होती। जो कथनी मात्र ब्रह्मज्ञानी हैं और निर्मल उपासना से जिनकी बुद्धि निराभिमान नहीं हुई, वह कभी भी निर्वाण पद को प्राप्त नहीं हो सकते हैं ख़्वाहे कितने ही प्रमाण अनुमान से क्यों न व्याख्यान करें।

बचन ४८. ज्ञान की सार यह है, कि बुद्धि समभाव को प्राप्त होकर वासना के दीर्घ रोग से निवृत्ति हासिल करे। अगर कर्म फल द्वन्द्व की वासना अन्तर धारण की हुई है, तो ज़ाहिरी कथनी ज्ञान कुछ फ़ायदा नहीं दे सकता, जैसे कि जल की तृषा जल के पीने से जाती है न कि देखने से। ज्ञान का कथना सहल है, मगर धारना अधिक कठिन है। कोई ही पूर्ण विवेकी सत् विश्राम को धारण कर के जो अपने मानसिक दोषों की निवृत्ति करके ज्ञान स्वरूप में विचरता है, उसका जीवन दुर्लभ है।

बचन ४९. साधना अपने कल्याण की खातिर है, न कि खुद अन्धकार में और दूसरों का प्रकाश बनावटी दिखलाया जावे। इस अनर्थ से कुछ हासिल नहीं ख़्वाहे कोई गृहस्थी है, या विरक्ती, ख़्वाह कोई आचार्य है या दुराचारी, ख़्वाहे कोई धनी है या दरिद्री, ख़्वाहे कोई राजा है या प्रजा, ख़्वाहे कोई गुरु है या शिष्य, सबको अपने मानसिक दोषों की निवृत्ति करनी ही उनके जीवन की कीर्ति है। सत्मार्ग के बग़ैर कोई भी अपना कल्याण नहीं कर सकता। इस वास्ते निर्मल ज्ञान का मार्ग धार कर अपने जीवन की उन्नति करना हर एक प्राणी मात्र का धर्म है। जिससे जीवन-काल में भी पूर्ण आनन्द प्राप्त हो जावे।

बचन ५०. यह संसार का चक्र अति ही दुस्तर है। अधिक

पुरुषार्थ से ही जीव निर्भय पद को प्राप्त हो सकता है। स्वाभाविक जीव तो अपनी कल्पना के अनुसार ही क्रीड़ा करता है। इसके वास्ते अति ही कठिन है कि अपनी कल्पना को छेदन करके सत्मार्ग में अपने आप को दृढ़ करें। प्रथम जिस भाव को अनुभव करता है, उसके मुताबिक ही निश्चय कर लेना है और फिर निश्चय के अनुकूल ही यत्न और कर्म को धारण करता है, यह ही अन्तर में लीला बनी रहती है। इस वास्ते पहले सत्मार्ग का पूर्ण अनुभव होना चाहिए कि इस निर्मल साधना से यह सार प्राप्त होगा और इसके उलट चलने से यह कष्ट प्राप्त होगा। इसके वास्ते सत्पुरुषों की संगत अधिक जरूरी साधन है, जिससे सत्मार्ग की सार को श्रवण करके मनन और निध्यासन मन में लाया जावे। जिस तरह कि उन गुणी पुरुषों ने अपना उद्धार किया है। इस संसार में इन दो भावों को हर वक्त निश्चय में धारण करना चाहिए—एक जीव की बन्धन हालत, और दूसरी निर्बन्ध अवस्था।

बचन ५१. वासनायुक्त जीवन ही बन्धन स्वरूप है और निर्वासना स्थिति ही निर्बन्ध है। वासनायुक्त होकर तो हर एक जीव विचर रहा है, और निर्वासना स्थिति वाला कोई विरला ही ज्ञानी है, वह ही संसार का गुरु है और परम तत्व की श्रद्धा प्रेम को प्रकाश करने वाला है। उसकी जीवन कीर्ति कल्याणकारी है। अगर इस वासना रूपी गम्भीर रोग का उपाय न किया जावे तो यह अधिक वेग से प्रगट होकर जीवन को नष्ट कर देती है। इस वास्ते वासना निवृत्ति के जो साधन हैं उनको निश्चय से धारण कर अपना कल्याण करना चाहिए।

बचन ५२. यह शरीर जो कर्म का यन्त्र है और जिससे नाना प्रकार के कर्म पलक २ विषय प्रगट होते हैं, और जीव शरीर की ममता धारण किये हुए तमाम कर्मों के भोगों में आसक्त होकर हर वक्त चालायमान होता रहता है। किसी हालत में भी संतोष को प्राप्त नहीं हो सकता। इस अशान्ति की निवृत्ति का सहज उपाय यह ही है, कि पहले अनर्थक कर्म जो शारीरिक उन्नति को नाश करने वाले हैं, उनका त्याग किया

जावे। बाद में सत्कर्म जो बुद्धि को निर्मल करने वाले हैं, उनमें दृढ़ निश्चय धारण करके प्रभु इच्छा सम्बन्ध को निश्चित करके विचरना ही कल्याण का देने वाला है।

बचन ५३. सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग और सत् स्मरण आदि गुणों के साधनों को धारण करने से अधिक बुद्धि बलवान् होकर तमाम अनर्थक कर्मों का त्याग कर देती है। यानी इन साधनों के बगैर कई प्रकार के अवगुण हर वक्त बुद्धि को भरमाते रहते हैं। अच्छी तरह से विचार करने से सब सार का पता लग जाता है। एक प्रभु विश्वासी होकर तमाम शरीर के दुख व सुख उसकी आज्ञा में निश्चित करना ही असली कल्याण का मार्ग है।

बचन ५४. शरीर कर्मयुक्त है, और आत्मा निःकर्म है। बुद्धि शरीर के धर्म पालन करने में हर वक्त लवलीन रहती है। आखिर शरीर विनाश को प्राप्त हो जाता है, और बुद्धि अधीर होकर फिर अपनी कामना को पूर्ण करने की खातिर दूसरा शरीर धारण करती है—यह सिलसिला जारी रहता है जब तक कि आत्मस्वरूप में स्थिरता प्राप्त न हो जावे। इस वास्ते एक आत्मा का निश्चय ही कल्याण का मूल है।

बचन ५५. आत्मा यानी जीवन शक्ति जो सब संसार को जीवित कर रही है और तृण २ में पूर्ण स्वरूप से व्याप रही है, और अनन्त नामों से सिद्धों ने उसकी स्तुति गाई है, वह ही परम तत्व पूजने योग्य है। और वह ही अखण्ड शान्ति समता का स्वरूप है। हर एक शरीर का जीवन स्वरूप वह ही सच्चिदानन्द आत्मा ही है। बुद्धि आत्मसत्ता को भूलकर अभिमानवश होकर कई प्रकार की रचना को देखती है, और ग्रहण और त्याग के कर्म में लगी रहती है। जब तक आत्मतत्व का साक्षात्कार न होवे, तब तक मिथ्या कल्पना यह वासना का अन्धकार नाश नहीं होता। इस वास्ते सत्पुरुषार्थ को धारण

करके अपने मन् स्वरूप का अनुभव करना चाहिये जो निर्वास अखण्ड शान्ति है।

बचन ५६. अपने शरीर के अन्तर ही उस परम तत्व को बुद्धि अनुभव कर सकती है क्योंकि वह एक शक्ति है। उसका रूप, वर्ण, चिन्ह, आकार कोई नहीं है। सब आकर मयी संसार उस ही शक्ति में विचर रहा है। और हर एक चीज़ की मर्यादा उसी परम तत्व से है। उसके बग़ैर न किसी वस्तु का स्वरूप है और न ही कोई वस्तु स्थिर रह सकती है। यानी तमाम तत्वमयी संसार उस चेतन सत्ता प्रकाश के आधार पर ही स्थिर है। ऐसी अपार महिमा वाला परमेश्वर विज्ञान स्वरूप निश्चल बुद्धि करके अनुभव हो सकता है।

बचन ५७ बुद्धि मन् तत्व को अनुभव करके अपने आप को उसमें लीन कर देती है—यह ही हालत मोक्ष की है। जब तक बुद्धि उस ज्ञान स्वरूप शब्द को अनुभव नहीं करती, तब तक अभिमान युक्त होकर इस वासना के भंवर में फंसकर नाना प्रकार के कर्म करती है। और हर वक्त भयभीत रहती है। इस संसार में जानने योग्य और पूजने योग्य वह ही परम आधार एक आत्मा नारायण स्वरूप है, जिसको अनुभव करके बुद्धि पूर्ण सन्तोष को प्राप्त हो जाती है, यानी वासना अन्धकार से मुक्त होकर केवल स्वरूप हो जाती है।

बचन ५८. वह परम तत्व आत्मा शरीर के अन्तर-बाहर पूर्ण स्वरूप करके प्रकाश कर रहा है। निर्मल बुद्धि से उसका स्मरण ध्यान करना ही सब दोषों से निवृत्ति के देने वाला है। सब कर्मों से महान कर्म एक प्रभु उपासना ही है। तमाम सत्कर्म अन्तःकरण की शुद्धि के वास्ते हैं जिससे बुद्धि पवित्र होकर एक प्रभु परायणता हासिल करे, और तमाम मानसिक दोषों से निवृत्त होकर प्रभु स्वरूप में लीन हो जावे, जो अखण्ड आनन्द स्वरूप है।

बचन ५९. आत्मा शरीर में इस तरह प्रकाश कर रहा है, जिस तरह दूध में घृत। इसलिए मन यत्न से ही वह परम तत्त्व शब्द स्वरूप अनुभव हो सकता है। दृढ़ निश्चय से प्रभु उपासना को धारण करना, और तमाम शरीर की शक्ति को उस परम तत्त्व के आधार पर देखना, और कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति को प्रभु आज्ञा में समर्पण करना, नित्य ही अन्तरगत विषय पवन संयुक्त होकर अखण्ड नाम का स्मरण करना ही परम योग है। जो इस प्रकार करके पलक २ विषय प्रभु नाम का स्मरण करता है, उसकी मनोवृत्ति निरोध हो जाती है। और मन एकाग्र होकर अपने अन्तर विषय अखण्ड अविनाशी शब्द को अनुभव करता है, जो सब संसार का जीवन स्वरूप है, और वह ही निर्वाण पद है।

बचन ६०. जब तक मन मिथ्या नाम रूप संसार की कल्पना में लगा रहता है, तब तक वासना के अन्धकार में चलायमान होता रहता है। इस भ्रम की निवृत्ति के वास्ते एक प्रभु नाम समरण ही सहज उपाय है, जो यथार्थ स्वरूप से धारण किया जावे। जिस गुणी पुरुष ने मिथ्या नाम रूप कल्पना को त्याग करके सत् नाम का आधार पाया है, और निमिष २ करके अपनी मनोवृत्ति को एक नाम में लगाता है और तमाम शरीर के प्रिय और अप्रिय पदार्थों को प्रभु इच्छा में त्याग करता है। ऐसी दृढ़ उपासना वाला ज्ञानी अपने अन्तर विषय सत् स्वरूप को अनुभव कर लेता है, और परम कल्याण को प्राप्त हो जाता है।

बचन ६१. बुद्धि की चंचलता ही **अज्ञान** स्वरूप है, और बुद्धि को निश्चल करना ही परम **तप** है। जब तक बुद्धि कर्म अभिमान संयुक्त है, तब तक वासना अंधकार में चलायमान होती रहती है। जिस समय बुद्धि तमाम कर्मों को ईश्वर इच्छा में निश्चय से त्याग कर देती है। उस समय अन्तर विषय शब्द स्वरूप ब्रह्म प्रकाश को अनुभव कर लेती है, जो **समता आनन्द का पूर्ण स्वरूप है** और अधिक प्रेम संयुक्त

होकर अपने आपको उस परम तत्व में लीन कर देती है। यह अवस्था ही **परम धाम है**। धन्य वह पुरुष है जिस को ऐसी स्थिति प्राप्त हुई है।

बचन ६२. जब तक शारीरिक भोगों से वैराग्य प्राप्त न होवे, और दृढ़ अनुराग सत् स्वरूप का अन्तःकरण में प्रगट न होवे, तब तक ऐसी स्थिति प्राप्त होनी कठिन है। इस वास्ते सहज स्वभाव से ही यथार्थ स्वरूप से भक्ति को धारण करना चाहिये। जिसके बल से सब विकारों पर जीत हासिल करके परम तत्त्व के सरूर में स्थिरता प्राप्त होवे। निर्मल भक्ति यह है, कि प्रभु परायणता हासिल करके निष्काम कर्म का साधन प्राप्त किया जावे, यानी अपने स्वार्थ को छोड़कर नित्य ही निष्काम भाव से परोपकारी जीवन बनाया जावे। और अपने तमाम शारीरिक सुख दूसरों की सेवा में समर्पण किये जावें। ऐसा यह निर्मल विवेक का मार्ग है। जो गुणी सत् विश्वास करके विचरता है, वह शारीरिक सुखों की कैद से छूट कर आत्म आनन्द को प्राप्त हो जाता है।

बचन ६३. शारीरिक सुख ही बुद्धि को बार-बार जन्म मरण के चक्र में फिराते हैं। मगर वास्तव में यह शारीरिक सुख ही परम दुख का मूल हैं। जिस भोग को सुख माना जाता है, वह ही अंत में दुख स्वरूप हो जाता है। यानी सुख के निश्चय से दुख प्रगट होता है। जब तक किसी वस्तु का सुख अनुभव करता है तब तक उसके मोह में गिरफ्तार रहता है। आखिर वह सुख ही दुख स्वरूप में प्रगट होकर अति क्लेश देता है, **यह ही अज्ञान का चक्र है**—इससे छूटने के वास्ते एक निष्काम कर्म का मार्ग ही सहज है।

बचन ६४. अपने शारीरिक सुखों को दूसरों की सेवा में भेंट करना, और मन में निर्मान भाव रखना, अधिक से अधिक तन, मन, धन से सेवा करके प्रभु इच्छा में निश्चित होना—यह ही एक निर्मल त्याग का मार्ग है। ज्यों-ज्यों गुणी पुरुष पवित्र भावना से इस परोपकार के मार्ग में विचरता है, त्यों-त्यों उसके अन्तःकरण के दोष नाश हो जाते

है—तब सत स्वरूप में दृढ़ विश्वास प्राप्त होता है, और संसारी पदार्थों से चित्त को वैराग्य हासिल होता है। यह धारणा ही निर्मल भक्ति के अंकुर हैं। यानी शारीरिक सुखों को तुच्छ जानकर प्रभु आज्ञा में निश्चित होकर तमाम जीवों के सुख की खातिर अपने आपको जो निष्काम भाव से न्योछावर करता है, वह ही परम गुणी आत्म-आनन्द का अधिकारी है।

बचन ६५. जब तक शारीरिक सुखों में जीव भ्रमा हुआ है, तब तक कभी भी निर्वास पद आत्म शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता है। मलीन बुद्धि शारीरिक सुखों को ही असली आनन्द जानती है। ज्यों २ विचार से पवित्रता हासिल होती है, त्यों त्यों शारीरिक सुख ही दुख का स्वरूप दिखाई देते हैं। ऐसी निर्मल धारणा को प्राप्त होकर बुद्धि निर्वास आनन्द की खोज में अपने आपको त्याग करती है। तब एक सत् स्वरूप के आधार को प्राप्त हो जाती है। जो परम आनन्द का धाम है।

बचन ६६. शारीरिक सुख ही दुख को उत्पन्न करते हैं। यानी जिस चीज़ के संयोग से सुख प्राप्त होता है, उसके वियोग से दुख हो जाता है। यह संयोग-वियोग ही कर्म का चक्र है और अमिट है। इसी अज्ञान के वश होकर जीव हमेशा के वास्ते सुख चाहते हैं। मगर ऐसा हो नहीं सकता। हर एक वस्तु काल-चक्र को धारण किये हुए अपने आपको तबदील कर रही है। जो वस्तु आदि-अन्त को प्राप्त होने वाली है, उसका संयोग असली सुख नहीं दे सकता है—यह गहरी गौर करके विचार करना चाहिये। जब शरीर ही नाशवान् है, तब शरीर के सुख कहाँ हैं? यह तो अंध मति से जीव सत स्वरूप जो आनन्द का सागर है, को भूल कर इस नाशवान् शरीर में अचल शान्ति को खोज रहा है। न तो शरीर की स्थिरता रही, और न ही असली सुख प्राप्त हुआ। मिथ्या कल्पना को धार करके अंत को निराश ही इस संसार से जाता है। इस वास्ते इस भ्रम जाल का विचार करके मानुष-जन्म

की सार को प्राप्त करें। यानी सत् स्वरूप की प्राप्ति और सत् स्वरूप की परायणता में अपने आपको नित्य ही सावधान करें।

बचन ६७. कुछ न कुछ तो जीव करता ही रहता है। ख़्वाहे बंधन क्रिया को धारण करे, ख़्वाहे निर्बन्धन क्रिया को। सत् विवेक यह ही है कि निर्बन्धन क्रिया को धारण करके अपने जीवन की उन्नति की जावे। अगर ऐसा यत्न करने में आसक्त हैं, तो फिर पापयुक्त होकर अपने आपको कलंकित कर देवेगा। इस वास्ते निर्मल विचार द्वारा सत्य शाँति का मार्ग स्वीकार करना ही जीवन की उच्चता है। जैसा २ जीव कर्म करता है, उसका फल अवश्य भोगता है। इस वास्ते ऐसा कर्म न धारण किया जावे जिससे अधिक संकट प्राप्त होवे। सब तापों से छूटने के वास्ते एक प्रभु परायण होना ही मुख्य साधन है, और यह ही सार विचार है।

बचन ६८. एक प्रभु का विश्वासी और अभ्यासी होकर जो नित्य ही निष्काम भाव से सत्कर्मों में विचरता है। वह ही विवेकी पुरुष कर्म बन्धन से छूट कर निःकर्म पद समता शान्ति को प्राप्त हो जाता है। सब कुछ प्रकाश एक प्रभु का ही देखना और सब जीवों को सुख देना अपना परम धर्म समझना, अपने आचार-विचार में नित्य ही पवित्रता हासिल करनी—यह ही **निर्मल भक्ति है,** जो प्रभु स्वरूप में लीन कर देती है। नित्य ही सत् यत्न करना चाहिये।

बचन ६९. जिसने अपने पाप निवृत्ति की ख़ातिर सत् यत्न धारण किया है, और सत पुरुषों की सीख द्वारा जो प्रभु विश्वास को प्राप्त हुआ है, और हृदय से सब जीवों का जो हितकारी है, और शरीर की अन्तिम दशा को जो हर वक्त विचार करता है, तन, मन, धन सब प्रभु का ही जो देखता है, और प्रभु आज्ञा में अपने आपको जो स्थिर करता है, निर्मान भाव से सर्व सेवक होकर जो नित्य ही विचरता है, उसके अन्तर दृढ़ प्रभु अनुराग प्रगट हो जाता है। जो सब तापों के हरने वाला

है और अनन्य भक्ति अविनाशी स्वरूप की देने वाला है।

बचन ७०. जब ऐसी पवित्र भावना जिसके अन्तःकरण में प्रगट हुई, वह मन् पुरुषार्थ से सत पुरुषों की शिक्षा को हासिल करके नित्य ही अन्तर्गत विषय आत्म चिंतन में अपने आपको वह गुणी पुरुष स्थिर करता है, और दृढ़ निश्चय से निर्मल साधन करते-करते आत्म-साक्षात्कार को अनुभव कर लेता है, जो सब संसार का मूल है, और जीव का निर्मल धाम है। उस ही गुणी पुरुष ने संसार में आकर असली जीवन को पाया है। जहाँ काल का भय प्रवेश नहीं कर सकता। उसकी महिमा इस नाशवान संसार में अधिक दुर्लभ है।

बचन ७१. हर वक्त एक आत्म-चिन्तन में मन को लगाए रखना और संसारी पदार्थों से त्याग हासिल करना, यानी अपने जीवन के सुख पदार्थ दूसरों की सेवा में निष्काम भाव से त्याग करने, केवल एक प्रभु का ही मन में भरोसा रखना, सब संसार को निश्चय से नाशवान देखना, और जीवित में ही आत्म स्थिति को प्राप्त करने का निर्मल यत्न करना ही सब वासना के अन्धकार को नाश करने वाला है और समता आनन्द निर्दोष पद के देने वाला है।

(ग) वासना, अभाव, विवेक
(तीसरा निधान)

बचन ७२. काम, क्रोध, लोभ, मोह, और अहंकार आदि अवगुण वासना अन्धकार से ही प्रगट होते हैं। जब तक वासना का अभाव न हो जावे, तब तक इन विकारों से शान्ति प्राप्त नहीं होती। इसलिये मूल पाप स्वरूप जो वासना है, उसका निवारण करना ही असली कल्याण है। नित्य ही सत् यत्न द्वारा प्रभु परायणता प्राप्त करके वासना के अद्भुत भ्रम चक्र से निवृत्ति हासिल करना ही निर्मल साधना है।

बचन ७३. जिस वक्त एक प्रभु का दृढ़ विश्वास हो जाता है, और सब कर्म प्रभु इच्छा में निश्चय से समर्पण किये जाते हैं, और निर्मल प्रेम से प्रभु भक्ति में मन दृढ़ होता है। उस वक्त अन्तर्गत विषय परमानन्द शब्द स्वरूप का अनुभव होता है जो केवल शान्ति ही शान्ति है। उस वक्त बुद्धि सब अन्धकार को त्याग कर प्रभु स्वरूप में निःचल हो जाती है, और उस महा शक्ति की महिमा विचार करके उसी में लीन हो जाती है। यह ही अवस्था निर्वाण और समता पद है।

बचन ७४. कर्म अभिमान अति दुस्तर है। पलक २ विषय बुद्धि को भरमाता है। जिस गुणी पुरुष ने सत् श्रद्धा से सत् नाम का स्मरण धारण किया है, और तमाम शरीर के विकारों से अपने आपको जिसने पवित्र किया है, और नित्य ही सत्य, शील, सन्तोष, संयम आदि महा-गुणों को धारण करता है। वही विवेकी पुरुष वासना के अन्धकार को छेद करके अपने अन्तर विषय बुद्धि को संकोच करके प्रभु स्वरूप को अनुभव कर लेता है।

बचन ७५. प्रभु स्वरूप की अनुभवता ही वासना निवृत्ति का सार यत्न है कि जब तक बुद्धि को सार ठिकाना प्राप्त न होवे, तब तक इस अन्धकार को त्याग नहीं कर सकती है। इस वास्ते तमाम तापों को हरने वाला और नित शान्ति के देने वाला एक प्रभु नाम ही है। जो निर्मल चित्त से कर्ता हर्ता सर्व शक्तिमान समझकर स्मरण करता है वह ही निश्चल भावना वाला गुणी पुरुष सर्व कल्याण को प्राप्त होता है। इस वास्ते एक प्रभु का विश्वासी होना, सब संसार का आधारी उस परम तत्व को जानना और अधिक श्रद्धा से स्मरण ध्यान करना ही सब दोषों के नाश करने वाला है।

बचन ७६. संसारी पदार्थ नित्य ही विनाश होने वाले हैं। उनका मोह अधिक दुःख देने वाला है। इस वास्ते अविनाशी तत्व का स्मरण, ध्यान और श्रद्धा प्रेम धारण करना ही असली शान्ति के देने वाला है दृढ़ निश्चय से उस महान आनन्द ज्ञान स्वरूप प्रभु की शरणागति होना ही इस मिथ्या संसार में अधिक लाभ है। वह ही परम विवेकी है, जिसने यथार्थ स्वरूप से एक प्रभु का आश्रय लिया है और सेवक रूप होकर तमाम जीवों को सुख देने का यतन करता है वह तमाम वासना से मुक्त होकर सत् पद को प्राप्त हो जाता है।

बचन ७७. जिसने तमाम शारीरिक भोगों से निवृत्ति हासिल की है और दृढ़ निश्चय से जो आत्म-परायण हुआ है, दुःख व सुख में जो धैर्यवान रहता है और अन्तर्गत विषय अखण्ड शब्द के आनन्द में जो मग्न रहता है। वह ही ज्ञानी वासना से अतीत होकर परमानन्द स्वरूप में लीन हो जाता है। इस संसार का पूर्ण निर्णय उसने ही पाया है। वह ही सिद्ध और तत्व वेत्ता है।

बचन ७८. जिसने अपनी तमाम मनोवृत्तियों को प्रभु प्रेम में भस्म कर दिया है और अन्तर-बाहर एक नाम के आधार पर ही जो जीवित है, किसी वस्तु की प्राप्ति में लुभायमान नहीं होता और किसी के नाश से खेदमान नहीं होता, अन्तर्गत विषय हर वक्त शरीर से

न्यारा होकर सत्पद में स्थित हुआ है—वह ही वासनातीत पुरुष है और निर्मल विज्ञान के तत्त्व को जानने वाला है।

बचन ७६. जिसने निःकर्म स्वरूप शब्द को अंतर विषय अनुभव किया है, और शारीरिक कर्म फल द्वन्द्व से न्यारा होकर जो तत्त्व शब्द में स्थित हुआ है वह ही ज्ञानी है। यानी वह शारीरिक कर्मों का मोह त्याग कर परम तत्त्व में स्थित हुआ है। जो तमाम कर्मों का चक्र प्रकृति विषय देखता है और उसने आत्मा को बिल्कुल निर्विकार करके अनुभव किया है, उस ज्ञानी ने तमाम वासना के अंधकार से छूट पाई है।

बचन ८०. अखण्ड अविनाशी शब्द स्वरूप ब्रह्म जिस के अंदर प्रगट हुआ है और अनन्य भावना करके उस विवेकी ने तत्त्व स्वरूप का अमृत पान किया है, वह ही वासना की जलन से ठंडा होकर सर्व प्रकाश परमानन्द स्वरूप में स्थित हुआ है, वह सब संसार को उस परम तत्त्व का प्रकाश देखता है। यानी अपने आप में ही वह परम तत्त्व को अनुभव करता है और उस परम तत्त्व में अपने आपको पूर्ण देखता है। यानी केवल स्वरूप स्थिति को प्राप्त हुआ है। वह ही ब्रह्म ज्ञानी है, उसका दर्शन दुर्लभ है।

बचन ८१. जिसने सत्पुरुषार्थ करके कर्म के संग्राम से विजय हासिल की है और निःकर्म जोत में समता प्राप्त की है, वह ही उदार चित्त निःसंशक बुद्धि वाला ज्ञानी वासना के अन्धकार से मुक्त हुआ है और समता आनन्द को प्राप्त हुआ है। उसके वास्ते संसार में कुछ करने योग्य नहीं रहा, यानी सब प्राकृति के विचार से निर्मल हो गया है।

बचन ८२. आत्म-निश्चय, आत्म-परायणता, आत्म-अनुभवता और आत्म-स्थिति के प्राप्त करने में जो हर वक्त स्वतंत्र है वह ही सत्पुरुषार्थ धारी विवेकी वासना के जाल को छेदकर निज आनन्द को प्राप्त कर लेता है। जब शरीर के अन्तर आत्म-ज्योति को प्रगट

पाता है, उस वक्त शरीर का मोह सब नाश हो जाता है वह ही सर्वांजीत पुरुष कुल वासना के संग्राम से मुक्त होकर परम तत्त्व में स्थिर होता है।

बचन ८३. शारीरिक क्रिया के बन्धन में हर वक्त जीव अशाँत रहता है। यानी कर्म फल के द्वन्द्व में दुख व सुख प्राप्त करके चलायमान होता रहता है। जिस वक्त शरीर के मोह को त्याग कर जीवन शक्ति आत्मा के प्रेम में मग्न होता है, उस वक्त इन सब तापों से मुक्त होकर निर्भय हो जाता है। यह ही अवस्था कल्याण स्वरूप है।

बचन ८४. इन्द्रियों के विकारों से जिसने मन को त्याग किया है और एक नाम में स्थिति प्राप्त करने के यत्न में जो रहता है, और तमाम शारीरिक अनर्थक क्रिया को जिसने त्याग दिया है, और नित्य ही एकान्त में बैठ करके आत्म-ध्यान में जो निश्चल होता है, वह ही अभ्यासी सब दुर्मति विकार को छेद करके आत्म-आनन्द को प्राप्त हो जाता है। बग़ैर साधन के सिद्धता प्राप्त नहीं होती और बग़ैर सिद्धता के वासना अन्धकार नाश नहीं होता, यह निश्चय करके जानना चाहिये।

बचन ८५. जिसने अपने मन की स्मृति निर्मल की है, एक प्रभु का नाम धारण करके वह ही गुणी आत्म-अनुभव और आत्म-स्थिति को प्राप्त हो सकता है। आत्म-स्थिति ही समता यानी केवलता का स्वरूप है। जिस जगह आकारमयी सृष्टि सब लय हो जाती है और निराकार ज्योति का ही प्रकाश अनुभव होता है। वह ही स्थान सब संसार का मूल है और अखण्ड अविनाशी धाम है। उस अवस्था को जो प्राप्त हुए हैं, वे फिर वासना के अन्धकार में नहीं आ सकते हैं—यानी अपने स्वरूप में पूर्ण हो गये हैं।

बचन ८६. जब मन वृत्तियों का त्याग करता है और अन्तर नाम आधार को प्राप्त होता है। उस वक्त निःचल होकर अपने स्वरूप को लीन कर देता है। तब एक अखण्ड अविनाशी तत्त्व ही सर्व में पूर्ण दिखलाई देता है। वह ही सिद्ध अवस्था है। बारम्बार एक नाम

का निध्यास करना और शारीरिक विकारों का त्याग करना और निष्काम भाव से परोपकारी मार्ग को धारण करना ही सब सिद्धि के देने वाला है।

बचन ८७. कर्म अभिमान को प्रभु इच्छा के दृढ़ अनुराग से जिस ने छेदन किया है, और मन पवन की एकता करके एक नाम में जो निश्चल हुआ है—उसी परम योगी ने अन्तर्गत विषय अखण्ड शब्द ब्रह्म को अनुभव किया है और एकाग्र चित्त हो कर उस परम तत्त्व को पान करके नित्य ही तृप्त रहता है। यानी वासना की अग्नि से सरजीवित होकर निर्भय हो जाता है—तमाम प्राकृति पर उस महापुरुष ने जीत पाई है—वह ही सार तत्त्व को जानने वाला है।

बचन ८८. प्रभु भावी पर जिसने दृढ़ विश्वास पाया है और सब कुछ प्रभु आज्ञा में जो देखता है। तमाम संसार उसी एक प्रभु की लीला जो विचार करता है और परम श्रद्धा से अन्तर्गत विषय नाम जो निध्यास करता है वह सत्विश्वासी पुरुष आत्म-सिद्धि को प्राप्त करके निर्वाण पद में लीन हो जाता है जो अचल, अछेद और अनादि है।

बचन ८९. जिसने शारीरिक भोगों को दुख समझकर त्याग किया है और आत्मा को अजर अमर अविनाशी समझकर निर्मल निध्यास को धारण किया है, और निष्काम भाव से अचल चित्त होकर जिसने आत्म-परायणता धारण की है, वह ही गुणी सब मानसिक दोषों से निवृत्त होकर अन्तर्गत विषय अखण्ड शब्द को प्राप्त हो जाता है। बारम्बार एक आत्म निश्चय में बुद्धि को स्थिर करना और अनात्म पदार्थ दुख स्वरूप जान कर हृदय से उनका मोह त्याग करना ही कल्याणकारी यत्न है। नित्य ही स्वतंत्र होकर अपने तापों का छेदन करना चाहिये—जिससे परम आनन्द परमेश्वर स्वरूप प्राप्त हो जावे।

बचन ९०. जिसने नित्य ही अविनाशी सुख प्राप्त करने का विश्वास चित्त में धारण किया है और तमाम शारीरिक सुखों को चित्त से त्याग

कर दिया है, एक प्रभु आधार पर ही जिसने अपना जीवन स्थिर रक्खा है वह ही दृढ़ निश्चय वाला परम विवेकी अपने अन्तरविषय सत्स्वरूप को अनुभव कर सकता है जो आनन्द का भंडार है। नित्य ही निर्मल यत्न से अपने आप को परोपकार के मार्ग में लगाना चाहिये, जिससे सब दोष नाश होकर एक आत्मपरायणता प्राप्त होवे।

बचन ६१. जिस पुरुष ने अपने तमाम जीवन में सुख से उपरमता प्राप्त की है और हृदय में एक सच्चिदानन्द स्वरूप का आधार पाया है। नित्य ही अपने तन, मन और धन से तमाम जीवों की सेवा में जो प्रवृत्त रहता है—उस परम तपीश्वर ने अपने तमाम ताप सत् सेवा के साधन से भस्म कर दिये हैं और अंतर्गत विषय अविनाशी स्वरूप को प्राप्त होकर परम शाँत के सागर में लीन हो गया है, दुर्लभ उसका जीवन है। अपना भी उद्धार कर लिया है और कई जीवों को सुख देकर चला है। संसार में उसका आना सफल है। उसका जीवन आदर्श तमाम जीवों के वास्ते कल्याणकारी है।

बचन ६२. स्वार्थ अग्नि से जिसने छूट पाई है और परमार्थ में जो निश्चल हुआ है, तमाम जीवों के दुख को जो अपना दुख जानता है और नित्य ही सत् श्रद्धा से अपना सुख औरों के दुख में जो त्याग करता है—वह ही गम्भीर बुद्धि वाला पुरुष निर्मल भावना से आत्म-निश्चय को प्राप्त करके अपने तमाम विकारों पर जीत पा लेता है, और सत् श्रद्धा से केवल प्रभु-परायण होकर जीवन व्यतीत करता है—उसी शुद्ध आचरण वाले पुरुष ने संसार में असली जीवन को जाना है। यानी अपने आपको निश्चय से मुसाफिर जानकर अंतर से एक प्रभु प्रेम में ही मग्न रहता है। वह ही परम तत्ववेत्ता है यानी संसार में विचरते हुए अन्तर से निर्लेप रहता है। उसी पुरुष ने वासना रूपी अग्नि को भस्म किया है।

बचन ६३. जो सब कुछ करते हुए उस कर्म के दोष में चलायमान नहीं होता, यानी दृढ़ निश्चय से प्रभु परायणता को प्राप्त हुआ है वह ही

निःकर्म बुद्धि वाला अजीत पुरुष है। यानी उसी ने वासना रूपी नदी में पार पाया है और एक आत्म आधार को प्राप्त होकर अपने जीवन को संतुष्ट कर दिया है। शारीरिक दुखों से निर्मल होकर अपने आपको समेट करके एक चेतन प्रकाश में स्थिर कर दिया है, यानी हर वक्त अपने आप में निःचल होकर शरीर से ऊँची अवस्था अखण्ड नाद में नित्य विराजमान रहता है। अपनी गति को वह आप ही जानने वाला है—यह ही अवस्था निर्वाच पद है।

बचन ६४. जिस ज्ञानी ने अपनी तमाम कामनाओं के इन्द्रजाल को समेट कर अपने अन्तरविषय स्थिरता प्राप्त की है वह ही निःचल बुद्धि होकर अपने अर्न्तविषय सत्स्वरूप को अनुभव करता है, जिसका कोई पारावार नहीं है और नित्य नौ द्वारों से ऊँचा होकर महा आकाश में पारब्रह्म से संयुक्त होकर स्थिर रहता है। तमाम संसार की रचना को वह ही जानने वाला है और वह ही योगी त्रिकालदर्शी है।

बचन ६५. जिसने सत्शब्द को अन्तर विषय अनुभव किया है और मन वाणी का निरोध कर दिया है। एकाग्र बुद्धि होकर तत्त्व स्वरूप में जो नित्य स्थिर रहता है और पाँच तत्त्वों से विजय प्राप्त करके नित्य तत्त्वातीत अवस्था में जो निःचल हुआ है वह ही इन्द्रिय-जित पुरुष निर्वाम समता आनन्द को प्राप्त हुआ है। जो कुछ भी उसने अनुभव किया है वह ही सार तत्त्व है। उसका सत्उपदेश सर्व जीवों को कल्याण के देने वाला है—जो निश्चयपूर्वक धारण करने में यत्न करते हैं।

बचन ६६. सबसे प्रथम जिसने कर्म मार्ग को शुद्ध किया है यानी पाप कर्मों को त्याग करके सत्कर्मों को धारण किया है। फिर सत्कर्मों के फल को भी जिसने प्रभु समर्पण किया है यानी निष्काम कर्म की धारणा को प्राप्त किया है। और साथ ही जिसने निर्मल युक्ति से प्रभुस्मरण में दृढ़ता हासिल की है—वह ही विवेकी पुरुष निश्चल भावना करके अन्तर आत्म-स्थिति को प्राप्त हो जाता है, जो निर्विकार

अवस्था है। बगैर मन यत्न के कुछ प्राप्त नहीं हो सकता। इस वास्ते इस संग्राम स्वरूप संसार में आकर नित्य ही······सत् विजय प्राप्ति के पुरुषार्थ में प्रवीण रहना चाहिये। यानी अनुकूल समय की पाबन्दी करके स्वार्थ कर्म और परमार्थ-प्राप्ति का यत्न करना चाहिये।

बचन ९७. जब तक व्यवहारिक नियम और परमार्थिक संयम में बुद्धि स्वतन्त्र न होवे, तब तक इस भव दुस्तर मार्ग से पार होना अति ही कठिन है यानी शारीरिक क्रिया की मर्यादा आहार, व्यवहार और संगत का अति पवित्र होना उन्नति के देने वाला है और सत्स्वरूप की प्राप्ति की खातिर अपने आप में सब दोषों की निवृति की खातिर सत् संयम को धारण करना, यानी एक प्रभु विश्वासी होना, सत्य, शील, संतोष, परोपकार और निर्मल अभ्यास में अपने मन को निश्चल करना, ऐसा निर्मल यत्न करते-करते जीव सब वासनाओं से मुक्त होकर सत् स्वरूप में लीन हो जाता है। इस संसार में मानुष-जन्म की प्रभुता यह ही है कि अपनी मानसिक दशा को पवित्र करके परम पद को प्राप्त करने में नित्य ही सत् यत्न धारण किया जावे।

बचन ९८. जो गुणी समय का पाबन्द होकर शारीरिक क्रिया भी करता है और आत्मिक उन्नति का यत्न भी करता है वह सब तापों से छूट कर निर्भय पद को प्राप्त हो जाता है। जिसकी शारीरिक क्रिया में कोई मर्यादा नहीं, यानी अति लोभी और विकारी है, वह अन्धमति पुरुष अपने मानसिक दोषों की अग्नि में हर वक्त जलता रहता है। उसके वास्ते कोई शान्ति का स्थान नहीं है। सार विचार यह है कि मन की धार को रोकने से आत्मिक उन्नति परम शान्ति प्राप्त होती है और मन को अति चंचल करने से परम दुख प्राप्त होता है। वह मूढ़ पुरुष है जो मन को रोकने की बजाए मन की मलीन वासना में आसक्त होकर नित्य ही भरमता है, उसको कभी धैर्य प्राप्त नहीं होता। मन सत्कर्मों से निःचल होता है और मलीन कर्मों से चंचल होता है। इस

वास्ते सत विचार को धारण करके अपनी उन्नति के मार्ग पर चलना ही सच्चा मानुष जीवन है।

बचन ९९. जो कथनी ज्ञानी हैं और बड़े २ उपदेश औरों को सुनाते हैं उनकी मनोवृत्ति अगर अपने संतोष को प्राप्त नहीं हुई यानी शारीरिक विकारों पर विजय हासिल नहीं की—वह अन्तर से मूर्ख ही जानें। ज्ञान का सार यह है कि तत्व भेद को समझ कर अपनी अनार्थक वासना का त्याग किया जावे और निर्वास पद जो समता स्वरूप हैं उसमें निःचलता प्राप्त की जावे। जब तक अन्तर में वासना अंधकार मौजूद है, तब तक सब ज्ञान-ध्यान फीका है। यानी कुछ भी सार प्राप्त नहीं हुई। वासना से निर्वासना होना ही असली ज्ञान, योग, तप और विवेक है। अगर इन साधनों को लोक दिखलावे की खातिर धारण किया है और अन्तर से निर्वास भाव को प्राप्त नहीं हुआ तो वह कपटी पुरुष अपने आपको प्रकाश से अन्धकार की तरफ ले जा रहा है। उसका उपदेश दूसरों के वास्ते क्या कल्याणकारी हो सकता है। इस वास्ते जो कुछ जाना जाए उसके अनुकूल यत्न करके अपनी मानसिक पवित्रता हासिल करनी ही सार साधन है। ज्ञान, ध्यान और योग वह ही पूर्ण है, जो अपने अनुभव से प्रगट होवे और अंतर्गत विषय वासना की अग्नि को शाँत करके परम आनन्द स्वरूप में निःचल कर देवे जो ऐसी स्थिति वाला यानी निर्वास आनन्द को प्राप्त हुआ है, वह ही परम ज्ञानी समता तत्व के जानने वाला है, उसका दर्शन व उपदेश परम कल्याण के देने वाला है।

बचन १००. सदाचारी जीवन धारण करके नित्य ही अपने मानसिक दोषों की निवृति करनी ही असली धर्म विश्वास है। हर एक जीव अपनी आर्थिक-अनार्थिक कल्पना को अच्छी तरह समझता है। मगर सब कुछ जान करके भी फिर अपनी उन्नति के मार्ग पर जो नहीं चलता वह पशु ही जानें। ज्ञान ध्यान वह ही कल्याणकारी है जो अपने जीवन को सत् शान्ति देवे। इस वास्ते अधिक विद्या के होने से या अधिक

चतुराई के धारण करने से अगर मानसिक अवस्था शान्ति को प्राप्त नहीं हुई, तो उसने इस विद्या का कोई फल नहीं पाया, बल्कि उल्टा मद के बन्धन में आकर अपने आपका नाशक हो गया है। यह निश्चय कर लेना चाहिए।

बचन १०१. मानसिक अवस्था की पवित्रता ही मानुष जन्म की सार है। इस वास्ते एक प्रभु का विश्वास धारण करके नित्य ही इस नाशवान संसार में सर्व जीवों का हितकारी होकर विचरना चाहिये। न तो यह शरीर स्थिर रहेगा और न ही शारीरिक भोग। यह सब प्रभु माया का खेल है। पवित्र बुद्धि को धारण करके इस खेल के खिलाड़ी का विचार करना चाहिये, जिससे भ्रम अंधकार वासना नाश हो जावे और परम शान्ति प्राप्त होवे। जीव का पूर्ण स्वरूप निर्वास होना है और अपूरण स्वरूप वासना युक्त होना है। इस वास्ते अपने स्वरूप की पूर्णता प्राप्त करनी ही उन्नति का मार्ग है। जितनी भी जिसने इस जीवन में पवित्रता हासिल कर ली है, उतना ही उसने जीवन का सार पाया है। यह विचार निर्मल बुद्धि से विचार करके हर वक्त अपने कल्याण के मार्ग पर चलना चाहिये, क्योंकि अपनी करनी ही कल्याण और बन्धन के देने वाली है।

बचन १०२. सत्स्वरूप प्रभु को हर वक्त साक्षी जान कर नित्य ही पवित्र कर्म धारण करने और उस दीन दयाल की शरणागति होकर अपने मानसिक दोषों पर विजय हासिल करनी, पवित्र भावना करके उस दीन दयाल की आज्ञा में विचरना और कर्म फल द्वन्द्व में धैर्यवान रहना, नित्य ही निष्काम भाव से सब जीवों पर दया करनी और अनन्य प्रीत करके सत् स्वरूप की प्राप्ति का यत्न करना यानी संसारी पदार्थों से अधिक प्रेम प्रभु-स्मरण में करना—ऐसी निर्मल धारणा जब दृढ़ भाव से प्राप्त हो जावें तब अन्तर्गत में स्वरूप प्रकाश हो जाता है। जो सर्व प्रकार की शाँति, सर्व प्रकार की सिद्धि, सर्व प्रकार की अनुभवता, सर्व प्रकार की पवित्रता और सर्व प्रकार की पूर्णता है। जिस ने इस

निर्मल गूह्य भेद को जाना है वह ही सर्व का मानी (माननीय) आनन्द स्वरूप ज्ञानी है। हर एक मानुष मात्र को अपनी कल्याण करके इस परम धाम को प्राप्त होना चाहिये, जो निराधार समता स्वरूप है।

बचन १०३. यत्न से ही कल्याण प्राप्त होता है। इस वास्ते मानुष जन्म में आकर सत् मार्ग की प्राप्ति करनी चाहिये, जिससे जीवन का पूर्ण फल प्राप्त होवे। हर वक्त सत् विचार और सत् पुरुषार्थ संयुक्त होकर अपने जीवन को परोपकारी बनाना चाहिये। स्वार्थ कर्म बुद्धि को मलीन कर देते हैं और अति भोगों की तृखा में जलाते हैं। इस वास्ते परोपकारी जीवन प्राप्त करके नित्य ही सत् कर्मों में बिचरना चाहिये। जब तक कर्म का मार्ग शुद्ध नहीं होता, तब तक निर्भय शाँति प्राप्त होनी कठिन है। जो अन्धमति वाले पुरुष कर्मगति की पवित्रता नहीं करते और प्रपंच की ख़ातिर योग, तप और ज्ञान को धारण किये हुए हैं। वह कभी भी परम सिद्धि निर्वास अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकते हैं। सार निर्णय यह है, कि कर्म की पवित्रता से ही बुद्धि निर्वि-कार होती है और निःकर्म शान्ति को प्राप्त करने की ख़ातिर सत् साधना को धारण करती है। जब कर्म ही पवित्र नहीं, तब योग और तप क्या? सब अकार्थ ही जानें। निर्मल कर्म को धारण करके प्रभु-विश्वास प्राप्त होता है, और प्रभु-विश्वास से कर्मजाल की आसक्ति नाश होती है। यानी प्रभु-परायणता में दृढ़ता प्राप्त होती है। प्रभु-परायणता से अनन्य भक्ति प्रगट होती है, जो सब वासना के दोष को नाश कर देती है। भक्ति की दृढ़ता से स्वरूप प्रकाश अन्तर में अनुभव होता है और स्वरूप के अनुभव से कर्म अभिमान जो मूल वासना है। वह नाश हो जाती है, यानी निराभिमान होकर जीव निज स्वरूप में लीन हो जाता है। वह ही पद निर्द्वन्द्व अविनाशी समता का स्वरूप है। ऐसी स्थिति को प्राप्त होकर वह परम योगी फिर आवागवन के चक्र में नहीं आता, यानी अपने आप में पूर्ण होकर निर्वास हो जाता है। वह ही परम पद है—[illegible]

(घ) शुद्ध आचरण विवेक
(चौथा निधान)

बचन १०४. अगर कोई अपना कल्याण चाहे, तो सब से पहले अपना आचरण पवित्र करे। यानी स्वार्थ जीवन में पवित्रता प्राप्त करे। बग़ैर स्वार्थ शुद्धि के परमार्थ निर्वाण पद प्राप्त होना कठिन है। इस वास्ते हर एक मानुष मात्र के वास्ते यथार्थ यत्न यह ही है, कि संसारिक रीति में विचरते हुए अपने जीवन को मर्यादा-अनुकूल व्यतीत करे, तो उसको निर्मल बोध, निर्वाण शान्ति प्राप्त होनी सहल है। बुद्धि हर वक्त इन्द्रियों के दोषों में आसक्त होकर अति ही भोग विकार में संयुक्त होकर शारीरिक उन्नति और आत्मिक उन्नति दोनों को नाश कर देती है। इस वास्ते इन्द्रियों के भोगों में समानता हासिल करना ही शुद्ध आचरण है। ज्यों २ अपने आप में बुद्धि दृढ़ता पकड़ती है त्यों-त्यों अन्तर विषय संतोष को प्राप्त होती है और नित्य ही पवित्र विचार संयुक्त होकर अति निर्मल कर्म को धारण करती है और परम सुख को प्राप्त होती है। इसके उलट जब बुद्धि अधिक इन्द्रियों के मोह में आसक्त हो जाती है उस वक्त भोग पदार्थों को एकत्र करने में बड़े-बड़े अनारिथक कर्म को धारण करती है। यानी झूठ, चोरी, जुआ, कपट, डाका, व्यभिचार और मुनश्यात सेवन आदि घोर मलीन कर्मों में विचरती है और इन पाप कर्मों का असर अन्तःकरण में अग्नि से भी ज़्यादा जलाने वाला होता है। ऐसी मलीन बुद्धि वाले मनुष्य शारीरिक उन्नति को भी नाश कर देते हैं, और आत्मिक उन्नति का तो नामोनिशान ही नहीं जानते हैं।

बचन १०५. यह शरीर एक बन्दीखाना है और जीव इसमें कैद है, यानी नौ द्वारों के भोगों में आसक्त है और इन द्वारों से कई प्रकार के शुभ-अशुभ कर्म करके नित्य ही अधीर रहता है। जब तक सत् विचार को न धारण किया जावे, तब तक इस कैदखाने की सज़ा खत्म नहीं होती, बारम्बार जन्ममरण के मार्ग में फिरना पड़ता है। बुद्धि की पवित्रता ही इन सब दोषों से छुड़ाने वाली है। इस वास्ते जिन कर्मों से बुद्धि चंचल और विकारयुक्त हो जावे, उन कर्मों का त्याग करना ही असली धर्म है। बुद्धि सत्कर्मों से निर्भय होती है और मलीन कर्मों से नित्य ही भय में गृफ्तार रहती है।

बचन १०६. इस वास्ते अपने जीवन में स्वतन्त्र होकर पाप कर्मों का त्याग करना ही असली उन्नति का साधन है। हर वक्त अपने आचार विचार, आहार, व्यवहार और संगत में पवित्रता धारण करनी चाहिये और इन शुभ गुणों को यानी सत्य, शील, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, परोपकार, क्षमा और प्रभु विश्वास में अधिक दृढ़ता धारण करनी ही सब मानसिक दोषों से विजय प्राप्त करनी है। यह ही पवित्र गुण शुद्ध आचरण का स्वरूप हैं, और निर्वाण गति को देने वाले हैं। पथ-कुपथ की धारणा तो मन का मनन भाव ही है। इस वास्ते कुपथ को निर्मल बुद्धि के द्वारा त्याग करके अपने आपको निर्बन्धन करना चाहिये—यह ही मानुष जन्म की अधिकता है।

बचन १०७. ऊंच गति की प्राप्ति या नीच गति को प्राप्त होना अपने विचारों पर ही है। जब विचार शुभ भाव के चित्त में दृढ़ हो जाते हैं, उस वक्त वह शुद्ध आचरण वाला होकर संसार में अधिक निर्मल कर्म करके सुखी होता है। और जब मलीन विचारों में दृढ़ता प्राप्त कर ली जाती है। तब अन्धकार में भरमता हुआ कई प्रकार के उपद्रव कर्म करता है, और अपने आपको कलंकित करके नाश को प्राप्त हो जाता है। यह ही हालत नर्क का स्वरूप है। तमाम ज़िन्दगी का प्रकाशमयी होना या अन्धकार-संयुक्त होना शुभ-अशुभ विचारों पर ही

मुनहसिर है। इस वास्ते विचार ही ज़िन्दगी का स्वरूप है। जैसा २ विचार जिसके अन्तःकरण में दृढ़ हो जाता है। उसके अनुकूल ही वह यत्न धारण करता है, और फल को प्राप्त होता है। चूँकि विचार ही जीवन को पवित्र करने वाले हैं और विचार ही मलीनता के देने वाले हैं। इस वास्ते शुभ विचारों का धारण करना अधिक कल्याणकारी है और सत्संग की महिमा भी इस वास्ते अपार है। यानी जीवन-उन्नति का प्रथम साधन सत्संग ही है, जिसमें प्रवृत्त होकर सत्विचार को गुणी पुरुष धारण कर सकता है।

बचन १०८. अगर कोई अपनी उन्नति करनी चाहे तो नित्य ही पवित्र विचारों को धारण करे, जो सत्पुरुषों की सत् शिक्षा है। शुभ गुणों के धारण करने से बुद्धि निर्विकार होकर प्रभु परायण हो जाती है। सत्य की धारणा से सब पापों का नाश हो जाता है और निर्भय जीवन प्राप्त होता है। जितने भी शुभ गुण जिस गुणी पुरुष के अन्तःकरण में स्थित हों, उतना ही वह सत्यवादी और ईश्वरवादी है। ईश्वर के मानने का यह सार नहीं कि अन्तर से पाप कर्मों में आसक्त हो और बाहर से बहु प्रकार की पूजा धारण कर लेवे—इस भेद को जानना ही निर्मल विचार है। ईश्वर एक शक्ति है, जो निर्विकार, परिपूर्ण आनन्द स्वरूप, सर्वव्यापक और सर्व आधार है। जब तक यह जीव उस शक्ति का विश्वासी नहीं होता, तब तक अनेक पाप कर्मों में संयुक्त होकर अधिक दुःख पाता है। इस वास्ते निर्मल प्रभु-विश्वास को धारण करके अपने पाप कर्मों से विजय हासिल करनी ही आस्तिकपन है। ईश्वर निःकर्म और परम शान्त स्वरूप है, और जीव कर्म-संयुक्त और नित्य ही अशान्त है। इस वास्ते अपने कर्म बन्धन से निवृत्त होने की खातिर और सत् शान्ति को प्राप्त होने की खातिर ईश्वर पूजा है। जिसने इस भाँति से ईश्वर परायणता धारण की है। वह ही पूर्ण आस्तिक है और अपने सत् यत्न द्वारा निर्दोष पद को प्राप्त हो जावेगा।

बचन १०९. एक ईश्वर ही सर्वशक्तिमान और एक रस है और तमाम संसार जो दृश्यमान हो रहा है। वह सब पलक पलक विषय अपने स्वरूप को तबदील कर रहा है। इस वास्ते जब तक जीव संसार में प्रवृत्त है, तब तक संसार की तबदीली में आसक्त होकर नित्य ही भयभीत रहता है। ईश्वर परायणता को जब दृढ़ निश्चय से प्राप्त होता है, तब सब दोषों से निर्मल होकर निर्भय स्वरूप ईश्वर में लीन हो जाता है। यह ही पूर्ण अवस्था है। जो कर्म बुद्धि को निर्मल करने वाले हैं और ईश्वरपरायणता देने वाले हैं। वह कर्म कल्याणकारी हैं। और जो कर्म बुद्धि को अभिमान-संयुक्त करने वाले हैं और ईश्वर से नास्तिक करने वाले हैं। वह पाप कर्म नीच गति के देने वाले हैं। कर्म ही जीव का आधार है। जैसा-जैसा कर्म करता है, उसके अनुकूल ही दुःख या सुख पाता है। इस वास्ते निर्मल विचार को धारण करके सत्कर्मों में नित्य ही प्रवीण रहना चाहिये, यह ही शुद्ध आचरण की धारणा है।

बचन ११०. ज्यों-ज्यों बुद्धि पवित्र कर्मों में दृढ़ होती है, त्यों-त्यों ही अन्तर में त्याग बल पैदा होता है और ऐसे यत्न करते-करते परम त्याग को प्राप्त हो जाती है, जहाँ वासना का अभाव हो जाता है। यानी निर्वास स्वरूप ब्रह्म में लीन हो जाती है, जो सत् कर्म निर्मान भाव से ईश्वर इच्छा संयुक्त होकर किये जाते हैं वह अति ही निर्मलता के देने वाले हैं। ऐसी दृढ़ भावना वाला शुद्ध आचारी पुरुष सहज ही परम पद को प्राप्त हो जाता है, जो नित्य ही स्वभाव से दूसरे का सुख हरने वाला है और अपना सुख त्यागने वाला है, वही परोपकारी पुरुष है। और जो दूसरे के अवगुण को त्याग करता है और अपने पवित्र गुणों से उसको शान्ति देता है, वह ही क्षमावान परम तपोश्वर है। जो निश्चय से एक प्रभु का विश्वासी है और कर्म दोषों को ईश्वर इच्छा में जो देखता है और हर एक की आत्मा को अपनी ही आत्मा जो जानता है, नित्य ही दूसरों के कल्याण में अपना कल्याण जो निश्चय करता है, वही शुद्ध आचारी सत्यवादी है।

बचन १११. जो कर्म चक्र में ईश्वर इच्छा निश्चय करता है, और सब कुछ एक प्रभु का ही चमत्कार देखता है। अपने तन, मन और धन के मद से जो निर्लेप रहता है और दूसरों की सेवा में नित्य ही निष्काम भाव से जो दृढ़ है। सुख व दुःख प्रकृति भोग समझकर ईश्वर आज्ञा में जो त्याग करता है, वह ही महागुणी, परम संतोषी और दृढ़ ईश्वर परायणता को प्राप्त हुआ है। ऐसे निर्मल यत्न को प्राप्त किये हुए वह सहज ही निर्वाण पद में लीन हो जाएगा। उस ही पुरुष ने अति ही शुद्ध आचरण को धारण किया है, उसका जीवन अनन्त जीवों को शान्ति देने वाला है।

बचन ११२. जिसने अपनी बुद्धि को ईश्वर स्वरूप में लगाया है और तमाम इन्द्रियों के विकारों से जिसने विजय हासिल की है। तमाम शरीर की शक्ति जो ईश्वर से ही देखता है। नित्य ही पवित्र आहार वाला, पवित्र विचार वाला और पवित्र संगत में जो बिचरता है और शारीरिक क्रिया में जो बिल्कुल सादगी धारण किये हुए है, तमाम स्त्रियों को जो माता स्वरुप में देखता है और बिन्द की भली प्रकार से जो रक्षा करने वाला है, नित्य ही सत् सेवा में जो निर्मान भाव से बिचरता है, वही ब्रह्मचर्य के भेद को जानने वाला है। वह ही तेजस्वी और अधिक बुद्धिमान है। सब संसार के कष्ट को अपने निर्मल जीवन से उद्धार करने वाला है। ईश्वर-भक्ति और देश-भक्ति में अपना जीवन व्यतीत करना ही मुख्य धर्म जानता है। ऐसा सर्व उपकारी भाव ही सत् शान्ति के देने वाला है।

बचन ११३. जो नित्य ही शुद्ध आचरण में प्रवीण है और गुरु भक्त है, वह सहज ही निर्वाण गति को प्राप्त हो सकता है। कर्मों की शुद्धता ही परम विवेक है। तीर्थ, यज्ञ, दान, तप और सत्संग आदि साधनों के धारण करने की सार यह ही है कि शुद्ध आचरण प्राप्त होवे। यह मन बड़ा विकारी है, इस वास्ते नित्य ही सत्य साधना से इसको स्तंभित करना चाहिये। सत् गुणों का विचार ही मन को शान्ति देने

वाला है, और बुद्धि को बलवान करने वाला है। हर वक्त शरीर की अन्तिम दशा का विचार और अपने मानसिक दोषों की अशान्ति का विचार और दृढ़ अनुराग निर्वास पद की प्राप्ति का—यह निश्चय ही शुद्ध आचरण के देने वाला है। तन, मन और धन के मद में हर वक्त जीव आसक्त रहता है, और अति कामना संयुक्त होकर कई प्रकार के अनार्थक कर्म करता है, और अति दुखित होता है। इस वास्ते निष्काम कर्म का मार्ग धारण करके अपने तन, मन और धन से दूसरों का उद्धार करना ही सर्व कल्याण के देने वाला है। और यह ही यत्न शुद्ध आचरण का स्वरूप है।

बचन ११४. जब तक इन तीन प्रकार की कामनाओं से जीव उपरस नहीं होता, तब तक कर्म अभिमान मूल वासना का नाश नहीं होता। और न ही सत् स्थिति प्राप्त होती है। इस वास्ते जो गुणी शुद्ध व्यवहार से धन को एकत्र करता है, और निष्काम भाव से पर सेवा में जो अर्पण करता है, वह ही कल्याण को प्राप्त हो सकता है। जिसने अपने तन और मन को नित्य ही पवित्र किया है, सत् कर्मों से—और नित्य ही सत् मार्ग में निश्चय धारण किये हुए है, वह ही निर्मान होकर आत्म निश्चय को प्राप्त हो जाता है और शुद्ध आचरण के बल से सब विकारों पर जीत पाकर निर्भय सुख अबिनाशी शब्द में लीन हो जाता है। यह भव मार्ग अति ही कठिन है। नित्य ही शुद्ध आचरण को धारण करके अपने शुद्ध आपकी कल्याण करनी चाहिये।

बचन ११५. जब शुद्ध आचरण से बुद्धि निर्विकार हुई, यानी तमाम शारीरिक सुखों से उपरस भाव को प्राप्त हुई, तब एक आत्म-चिन्तन में दृढ़ होकर कर्म अभिमान जो वासना का मूल है उसको नाश करके सहज पद समता आनन्द को प्राप्त हो जाती है। वह ही पूर्ण अवस्था है। ऐसे निराधार धाम को प्राप्त करने की खातिर कर्म मार्ग की शुद्धता ही प्रथम कल्याणकारी साधन है। जब तक कर्म खेद में बुद्धि

चलायमान होती रहती है तब तक सत् स्वरूप का बोध नहीं हो सकता है। इस वास्ते प्रथम शुद्ध आचरण को धारण करके सत् मार्ग अन्तर्मुख योग में स्थित होना चाहिये, ताकि विलक्षण कर्म फिर उस मार्ग से पतित न कर देवें। जो दृढ़ निश्चय से शुद्ध आचारी होकर अन्तर्मुख साधना में प्रवीण हुआ है, वह निर्मल विवेक के बल से आत्म-साक्षात्कार परमसिद्धि को सहज ही प्राप्त हो जाता है, ऐसी निर्मल साधना करने वाले के वास्ते सूक्ष्म आहार पवित्र स्वरूप में ग्रहण करना चाहिये और पवित्र व्यवहार जीवन निर्वाह की खातिर और सत् सेवा पवित्र निश्चय से और समय की पाबन्दी करके स्वार्थ कर्म में बरतना और समय पर निःचल चित्त करके सत् स्वरूप में आरूढ़ होना—ऐसा यत्न जो पूर्ण नियम से दिवस-रैन धारण करता है वह ही सत् अभ्यासी स्वरूप अनुभव को प्राप्त हो जाता है।

बचन ११६. सबसे पहले गुरु शरणागत होकर पवित्र विवेक धारण करके सत् अभ्यास में दृढ़ होना चाहिये। ऐसे कर्म जो पाप वृत्ति को प्रगट करने वाले हैं उनका त्याग करने से अभ्यास में दृढ़ता प्राप्त होती है। पूर्ण अभ्यास का निर्णय यह है कि पहले आसन की दृढ़ता, यानी अभ्यास के वक्त शरीर की निःचलता और एकान्त सेवन (२) आहार का संयम यानी वक्त पर जो कुछ भी पवित्र आहार प्राप्त होवे उसको क्षुधा अनुकूल ग्रहण करना (३) व्यवहार का संयम जीवन निर्वाह की खातिर समय की पाबन्दी में शुद्ध व्यवहार करना (४) संगत का संयम यानी सत्पुरुषों की संगत करनी और शुभ विचार को धारण करना—ऐसा शारीरिक नियम जिसने दृढ़ स्वरूप में धारण किया है और नित्य ही सत्मार्ग में अनुराग लिए हुए विचरता है। वह ही गुरु-भक्त सत् उपदेश में अपने आपको मिटा करके सत स्वरूप में लीन हो जाता है। यही शूरवीरता है कि अपने दोषों से सत्यत्न द्वारा विजय प्राप्त कर ली जावे।

बचन ११७. जब बुद्धि तमाम कर्मों के बन्धन से निर्बन्ध हो

जाती है, तब सत्स्वरूप की परायणता को प्राप्त होती है, यानी अपने अन्तर्विषय जागृत होकर परम आनन्द शब्द को अनुभव करती है। इस महा सुख का विचार करना अति ही कठिन है, यानी तमाम शरीर की वासना से निवृत्त होकर सत्पद में अडोल हो जाती है। सब संसार उस वक्त उसको स्वप्न समान दिखलाई देता है और एक चेतन प्रकाश ही सर्व गत गामी अनुभव होता है। वह परम योगी स्वरूप स्थिति को प्राप्त होकर हर वक्त निर्वास रहता है और दृढ़ निश्चय अन्तर शब्द अमृत का पान करता है। उस महान रस को पान करके परम तृप्त हो जाता है, यानी तमाम शारीरिक विकारों से निर्बन्धन होकर केवल स्वरूप में ही स्थिति पाता है। ऐसी योग निद्रा को जो तत्त्ववेता प्राप्त हुआ है, उसने ही चिरंजीव गति को जाना है। उसका जीवन पुरुषार्थ दुर्लभ है और वह सर्व कल्याण के देने वाला है। क्योंकि वह अपने आप में कल्याण स्वरूप हो चुका है।

बचन ११८. जब बुद्धि निःकर्म होकर अन्तर स्वरूप में निःचल होती है, तब उस पारगरामी की लीला को अनुभव करती है, जो कि सर्व में प्रकाशक और सर्व से न्यारा है। उस परम तत्त्व के समान संसार में जब कोई प्रमाण पाया नहीं जाता है, तब नाना प्रकार की स्तुति करके बुद्धि उसी में लीन हो जाती है। अनन्त महिमा उस परम प्रकाश की विचार करके अपने आप में अधिक प्रसन्नता को प्राप्त होती है। उस वक्त सब वासना का जाल अभाव हो जाता है और केवल शाँत स्वरूप परम तत्त्व अखण्ड ब्रह्म समता ही सर्व प्रतीत होता है। तब शरीर की क्रीड़ा उस ज्ञानी को छाया सम भासती है। इस अलौकिक गति को जो गुणी प्राप्त हुआ है, वह ही परम संत है पूर्ण भाग्य से ही ऐसे सर्व ज्ञाता अन्तर्यामी महापुरुष के दर्शन हो सकते हैं और उनकी सत् शिक्षा से कल्याण मार्ग में जीव दृढ़ निश्चय को प्राप्त हो जाता है।

बचन ११९. नित्य ही अपने जीवन कल्याण में प्रवीण होकर इस

संसार के मार्ग में विचरना चाहिये, क्योंकि जीवन-नाशक भोग पदार्थ अनेक दृष्य में आ रहे हैं और जीवन कल्याण तत्त्व स्वरूप का अनुभव नहीं हो सकता है। केवल अपनी सत्बुद्धि द्वारा इस विनाश स्वरूप संसार की लीला का विचार करके सत्स्वरूप की उपासना ज्ञान आदि साधनों को धारण करना चाहिये, जिससे सर्व संतोष प्राप्त होवे जो इस जीव की वास्तव में चाहना है। यह मार्ग संसार अति ही अंधकार स्वरूप है और जीव छाया के पीछे नित्य ही दौड़ रहा है। जब तक साक्षी स्वरूप का अनुभव न कर लेवे तब तक यह छाया स्वरूप कर्म का मार्ग पूर्ण नहीं होता। इस मानुष जन्म में आकर शुद्ध आचरण संयुक्त होकर इस भ्रम संग्राम से विजय प्राप्त करनी चाहिये। यह ही सत्पुरुषों की कीर्ति है।

बचन १२०. हर वक्त सत्कर्म की धारणा और प्रभु विश्वास ही कल्याण के देने वाला है। वह ही गुणी उस जीवन की सार को पाता है, जो नित्य ही मार्ग धर्म में अपने आप को दृढ़ करता है और शाँत-मयी निर्वास जीवन की प्राप्ति की खातिर नित्य ही प्रवीण होकर अपने तन, मन और धन से जनता का उद्धार करता है। और अन्तर से नित्य ही निर्मान रहता है। ऐसा जो निष्काम कर्म के मार्ग में विचरने वाला है, वह ही प्रभु-परायणता निर्मल भक्ति को प्राप्त करके निर्वास आनन्द को प्राप्त हो जाता है। इस मार्ग संसार में आकर, सत्यत्न जिसने धारण किया है, वह ही परम कल्याण को प्राप्त हुआ है और उसकी कीर्ति दुर्लभ है। जो सत्यत्न को छोड़ कर नित्य ही विलक्षण कर्म करते हैं वह अपने आप के नाशक हैं और हर वक्त भ्रम चक्र में दुःखित रहते हैं। इस वास्ते मानुष जीवन में आकर सत्विचार करके अपने आप को निर्भय करना चाहिये, यानी मिथ्या वासना के चक्र से पवित्र होकर तत्व स्वरूप में स्थिति प्राप्त करनी चाहिये। यह ही सार विवेक और परम निर्मल पुरुषार्थ है।

———

(ङ) समता सत् नियम

(i) सत्संग

(पहला नियम)

१. सत्संग का रोज़ाना धारण करना अधिक सुखदाई है क्योंकि विवेक इससे अधिक प्राप्त होता है। और विवेक के बल से अपने पापों से निवृत्ति सहज ही हो जाती है। सत्संग शुद्ध रीति से होना चाहिये, यानी निर्विषाद और निर्मान भाव जिन विचारों से प्राप्त होवे वही सत्संग निर्मल है। हफ़्ता वारी सत्संग ज़रा विशाल रूप में होना चाहिये। माहवारी सत्संग इससे भी विशाल रूप में होवे और सालाना इनसे भी अधिक विशाल रूप में होवे, जिससे ज़्यादा तादाद में प्रेमी एकत्र होकर अपनी जीवन उन्नति का विचार करें यानी, सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग और सत्स्मरण आदि महा गुणों के अपनाने में दृढ़ता हासिल करें।

(ii) अभ्यास

(दूसरा नियम)

१. समता आनन्द प्राप्ति की खातिर अभ्यास अधिक जरूरी है, यानी जो समता का प्रेमी है उसको सत् उपदेश धारण करके अभ्यास जरूरी करना चाहिये। यानी १५ वर्ष से ३० वर्ष की उमर तक एक घंटा सुबह अभ्यास करना और एक घंटा शाम को अभ्यास करना लाज़मी है। अभ्यास में वक्त की पाबन्दी और अधिक दृढ़ता होनी चाहिये। यानी खाना खाने से भी लाज़मी अभ्यास को समझना चाहिये। ३० वर्ष से ४० वर्ष की उमर तक १½ घंटा सुबह अभ्यास और १½ घंटा शाम को। ४० वर्ष से ६० वर्ष तक दो (२) घण्टा सुबह और दो घण्टा शाम को अभ्यास और ६० वर्ष से ऊपर फिर बहुत ज़्यादा वक्त अभ्यास में लगाना चाहिये जिससे अन्तःकरण की अधिक शुद्धि होवे। अगर कोई शुरू से अभ्यास से नावाकिफ है तो फिर अवस्था के मुताबिक अभ्यास में अपनी उन्नति आहिस्ता आहिस्ता करता जावे। बगैर अभ्यास के कभी भी मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती और न ही प्रभु शक्ति पर पूरा विश्वास हो सकता है। खुराक लिबास और व्यवहार जितना शुद्ध होता है उतना ही अभ्यास में प्रेम पैदा होता है। जब तक अन्तःकरण की भावना पवित्र नहीं होती तब तक कभी भी जीवन उन्नति को प्राप्त नहीं हो सकता है। इसलिये सुबह व शाम जरूरी अभ्यास करना चाहिये। अभ्यास से ही सब ताप नाश होते हैं और बुद्धि ईश्वर परायण होकर निर्भय हो जाती है।

२. जिस तरह से शारीरिक उन्नति में हर एक जीव लवलीन रहता है। उसी तरह से आत्मिक उन्नति में भी अधिक यत्न करना चाहिये। आतिमक उन्नति से ही सर्व सुख प्राप्त होता है, यानी शरीर आरोगी, बुद्धि स्वतन्त्र, आयु दीर्घ और प्रभु विश्वास के बल से सुख व दुःख में समानता प्राप्त होती है। यही हालत असली आनन्द है। निर्मानता, निष्कामता और परोपकार सम्बन्धी होकर जो अभ्यास किया जावे वही परम सिद्धि के देने वाला है। यानी अपने आपको तुच्छ जानकर प्रभु परायण होकर गुप्त स्वरूप में विचरना चाहिये और अन्तर गति के हालात बिल्कुल किसी को बतलाने नहीं चाहिये अगर अधूरी हालत में किसी को अन्तर्गत विचार ज़ाहिर कर दिया जावे तो फिर अभिमानवश होकर किसी हालत में भी असली धाम को प्राप्त नहीं हो सकता है। यह निश्चय कर लेना चाहिये। प्रभु आज्ञा में जो दृढ़ निश्चय वाला होता है, वही अभ्यास में पूर्ण हो सकता है।

(iii) सेवा

(तीसरा नियम)

१. निष्काम भाव से अपनी कमाई का दसवंद धर्म मार्ग में खर्च करना जरूरी है। अगर ज्यादा बचत होवे तो पाँचवाँ हिस्सा तक भी धर्म मार्ग में खर्च करना चाहिये। यानी जब तक निष्काम सेवा अधिक प्रीत से धारण न की जावे तब तक कभी भी जीवन पवित्र नहीं हो सकता है। और समता नियम अनुकूल सेवा करनी कल्याणकारी है, यानी अनाथ, अभ्यागत, बेवा, रोगी की सहायता में और दीगर जो असूल दान के हैं, उनके अनुकूल अपनी कमाई को बरताना हर प्रकार के कल्याण को देने वाला है।

२. दसवंद का अपने खर्च में इस्तेमाल करना हानि के देने वाला है। यही सतपुरुषों की नीति है। बल्कि ज्यादा से ज्यादा धर्म मार्ग में अपनी सम्पदा का त्याग करना ही असली सिद्धि के देने वाला है। जो प्रेमी समता का अनुयाई है, उसको हर पहलू में अधिक से अधिक कुरबानी के जजबात धारण करने चाहियें। इसी से धर्म की जागृति और देश में शान्ति प्रकाश करती है।

(iv) व्रत

(चौथा नियम)

१. हफ़ता में एक व्रत रखना चाहिये। अगर इतनी कुरबानी न हो सके तो माहावारी एक व्रत रखना चाहिये। व्रत के दिन बिल्कुल सूक्ष्म चीज़ का इस्तेमाल शाम के वक्त करनी चाहिये। ज़्यादा अभ्यास और ज़्यादा सत्संग उस दिन होना चाहिये, यानी हर पहलू में अधिक पवित्रता व्रत के दिन धारण करनी चाहिये।

(v) तप
(पाँचवाँ नियम)

१. अगर किसी को ज्यादा फरागत संसारी कामों से प्राप्त हो जावे तो उसको कुछ कुछ वक्त तप में भी रहना चाहिये, यानी एकान्त सेवन, थोड़ा बोलना, थोड़ा खाना और ज्यादा अभ्यास करना चाहिये। यानी अपनी आत्मिक उन्नति की खातिर अधिक दृढ़ता धारण करनी चाहिये। पहले अपनी आदत के मुताबिक घण्टों की आज़ादी, फिर दिनों की और फिर हफ़्तों तक एकान्त सेवन करके आत्मा आनन्द को प्राप्त करना चाहिये। सबसे प्रथम तो अभ्यास का नियम ही दृढ़ करने से सर्व आनन्द प्राप्त हो जाता है। अगर इसके अलावा ज्यादा संसारी ताल्लुकात से जिसको आज़ादी प्राप्त हो जावे और अनुराग भी अधिक होवे और शरीर में कोई रोग न होवे तब ज्यादा वक्त एकान्त सेवन कर के अभ्यास में दृढ़ होना चाहिये। इस तप के बल से अधिक संसारी जीवों में शांति प्रगट हो जाती है, और अपने आपको तो परम आनन्द प्राप्त हो जाता है। ऐसे मौका पर किसी की वस्तु ग्रहण करनी हानिकारक है। जो रोज़ाना अभ्यास में मुकम्मिल नहीं हो सकता है, वह हरगिज तप में कामयाब नहीं हो सकता है। इसलिए रोज़ाना अभ्यास ही परम तप है, दृढ़ निश्चय से धारण करना चाहिये।

२. हर हालत में ऐसा जीवन धारण करना चाहिये, जो संसार में विचरते हुए संसार से अन्तर में निर्लेपता प्राप्त हो जावे। यह दृढ़ता केवल रोज़ाना अभ्यास और दीगर सत् असूलों के बल से ही प्राप्त हो

सकती है । इस वास्ते रोज़ाना का जो अभ्यास और नियम है वही परम साधन है । धर्म का प्रचार और धर्म की जागृति अपने जीवन को पवित्र करने से ही होती है । इस वास्ते सत्संग द्वारा, सेवा द्वारा, स्मरण की दृढ़ता द्वारा और ईश्वर-परायणता द्वारा अपने जीवन को सत् साधना से पवित्र करके समता स्वरूप में निःचल होकर, देश व धर्म की उन्नति की खा़तिर विचरना ही सर्व विजय के देने वाला है ।

वचन .३. समता का पूर्ण स्वरूप निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, निःचलता और परोपकार है । इस लिये इन महाँ गुणों को प्राप्त करने की खा़तिर सत् साधन को धारण करना लाज़मी है । (१) पवित्र विचार और ईश्वर-परायणता से निष्कामता प्राप्त होती है (२) एक ईश्वर को सर्व प्रकाशी जानना और शरीर को क्षणभंगुर जानने से निर्मानता प्राप्त होती है (३) अभ्यास की दृढ़ता से आत्म-निश्चय प्राप्त होता है, आत्म-निश्चय से उदासीनता और निःचलता प्राप्त होती है, यानी शरीर का निश्चय से मिथ्या भासना और सत् स्वरूप में अधिक अनुराग का प्राप्त होना ही असली स्थिति है । तमाम कर्मों के फल को ईश्वर आज्ञा में समर्पण करने से निर्मल परोपकार प्राप्त होता है । इन महा गुणों की प्राप्ति से दुर्मति अन्धकार का अभाव हो जाता है । और केवल प्रकाश समता आनन्द में बुद्धि स्थिर हो जाती है ।

वचन ४. सार निर्णय यह है कि पवित्र सत्संग, निर्मल अभ्यास और सत् सेवा के बल से सब पापों से विजय प्राप्त होती है । निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, निःचलता, परोपकार आदि महान् गुण अन्तः-करण में प्रगट होकर सर्व आनन्द को प्रकाश करते हैं । ऐसी धारणा वाला पुरुष ही सब संसार में उजाला करने वाला हो सकता है । इस वास्ते अपने जीवन को नित नियम में दृढ़ करके निध्यासन करना चाहिये और अपने आप को समता आनन्द में लवलीन करके सब जीवों की सेवा में प्रवृत्त करना चाहिये । इसी धारणा से निर्मल धर्म और सत् शान्ति

संसार में प्रकाश करती है। और सब जीव सत् धर्म को प्राप्त होकर प्रेम स्वरूप में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। सब प्रेमियों को इन सत् नियमों का अधिक पाबन्द होना चाहिये। इस सत्पुरुषार्थ से सर्व कल्याण प्राप्त होती है। ईश्वर गुरु बचन विश्वास और जीवन उन्नति का अनुराग देवे।

समता विवेक

(छठा अनुभव)

ओ३म् ब्रह्म सत्यं निरंकार, अजन्मा, अद्वैत पुरुषा
सर्व व्यापक, कल्याण मूरत, परमेश्वराय नमस्तं

(क) समता विवेक

बचन १. जीवन विज्ञान का जब तक पूर्ण निर्णय न समझा जावे, तब तक मानसिक शान्ति प्राप्त होनी कठिन है। इस वास्ते मानुष जन्म की और जूनियों (योनियों) में प्रधानता यह ही है कि जीवन के विज्ञान को पूर्ण अनुभव करके अपनी अनर्थ कल्पना का चित्त से निरोध किया जावे। जिससे जीव शरीर की यात्रा में ही परम शान्ति को प्राप्त कर सके, और मानुष जन्म की उच्चता को सही स्वरूप में समझे।

बचन २. जीवन निर्णय कई स्वरूप में सत्पुरुषों ने किये हैं—अपने-अपने अनुभव के मुताबिक, मगर वास्तव में सबका एक ही भाव है। सिर्फ थोड़े बहुत विचारों में कमी बेशी है। जब तक अन्तर्गत विषय निध्यास तत्व स्वरूप का न किया जावे, तब तक अपने अनुभव में पूर्ण निश्चय नहीं होता। इस वास्ते प्रथम सत्तत्व का समझना फिर निध्यासन करना ही समता अनुभव के प्रकाश करने वाला है।

बचन ३. अन्तर्गत में निर्मल निध्यासन से तमाम जीवन का बोध प्राप्त होता है। इस वास्ते यथार्थ स्वरूप से परम तत्व अविनाशी स्वरूप का स्मरण ध्यान ही परम सिद्धि और शाँति के देने वाला है, और जो साधना से हीन होकर महज पाठ-पठन से ही असली निर्भय अवस्था चाहते हैं, वह कायर पुरुष हैं और समय को व्यर्थ खो देते हैं।

बचन ४. तत्व निर्णय जो कि सत्पुरुषों ने आन्तरिक अचल अडोल अवस्था में अनुभव किया और विचार द्वारा किसी विद्या के स्वरूप में जनता को समझाया। उसका भाव यह नहीं है कि महज वह निर्णय

सुनने से ही पूर्ण शान्ति प्राप्त हो जावे। बल्कि निर्मल सत् यत्न से अपने आन्तरिक वह हालत अचल और अडोल प्राप्त की जावे, ताकि वह परम तत्व अपने अनुभव से जाना जाए—जिससे सर्व प्रकार की मानसिक अशान्ति नाश होवे और जीवन आनन्दमय हो जावे और सब संसार का पूर्ण रूप अपने अनुभव से ही समझ में आ जावे। ऐसा पुरुषार्थ धारण करना ही सत् जिज्ञासु का परम धम है।

बचन ५. जन्म से जीव (प्रकृतिमयी) होकर तमाम शारीरिक विकारों को समझता है, ख़्वाह किसी देश या किसी मज़हब में उसकी पैदायश हुई हो, या जंगल में ही हुई हो। मगर वह तमाम शरीर की कामना और कल्पना को समझता हुआ ही संसार में विचरता है, यह ही आश्चर्य माया का खेल है।

बचन ६. कर्म द्वन्द्व यानी दुःख व सुख, लाभ व हानि, खुशी व गमी, मित्र व शत्रु, जिन्दगी व मौत, आपा व पर का, ग्रहण व त्याग, मान व अपमान, प्राप्ति व अप्राप्ति, शोक, मोह, कामना, क्रोध, लज्जा, भय, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि तमाम कर्म के जाल को हर एक जीव अपनी-अपनी बुद्धि के मुताबक़ समझता है और उसके सुखदाई वा दुखदाई पहलू को विचार करके हर वक्त जीवन मार्ग में चतुर होकर बिचरता है। यह ही संसार की लीला है। यानी हर एक जीव अपनी मजबूरी को मद्देनज़र रख कर असली आज़ादी, यानी निर्भय शान्ति को चाहता हुआ नाना प्रकार के कर्म करता है। मगर बग़ैर सत् अनुभव के उलटा यत्न करते-करते बजाए शान्ति के अशान्ति को प्राप्त होता है, यह ही भ्रम माया है।

बचन ७. तमाम जीव प्रकृत यानी कर्तापन की गिरफ़्तारी में मजबूर होकर असली शान्ति को तो चाहते हैं और पुरुषार्थ भी अधिक करते हैं। मगर स्वभाव के मुताबक़ अपने-अपने मनोर्थ को ही सत् शान्ति समझ कर प्राप्ति का यत्न करते हैं। आखिर मनोर्थ के पूर्ण होने पर भी चित्त को अचल शान्ति प्राप्त नहीं होती, बल्कि और के और ही मनोर्थ

आन्तरिक में उत्पन्न हो जाते हैं। और इसी तरह मनोर्थ पूर्ण करते-करते ही तमाम शरीर की यात्रा खत्म हो जाती है, मगर जीव को सत् शान्ति प्राप्त नहीं होती है, जो आन्तरिक से उसकी चाहना है। यह ही भव दुस्तर मार्ग है, यानी सब जन्म शान्ति प्राप्ति की खातिर नाना प्रकार के यत्न द्वारा व्यतीत किया, मगर अन्त को इस संसार से निराश ही जाना पड़ा। हर एक मानुष मात्र को इतना तो पता ही है, मगर न तो कल्याण का यथार्थ बोध है और न ही सत् यत्न है। इस वास्ते अपने मलीन संस्कारों का बाँधा हुआ इस तरह अनेक प्रकार की मिथ्या कामनाओं को पूर्ण करते-करते आखिर संसार से दुखी होकर ही जाता है। यह ही अद्भुत माया का कौतुक है। तमाम जीव इसी संकट में ही शान्ति खोजते-खोजते कई स्वरूप को धारण करते हैं और आवागवन के चक्र में फिरते हैं—यह ही संसार की लीला है।

बचन ८. इस संसार में तमाम जीव अपनी अनन्त प्रकार की कामनाओं और कल्पनाओं के बाँधे हुए और इन्द्रियों के भोगों में अति आसक्त होते हुए उसी विचरत हालत में ही असली खुशी या आनन्द समझते हैं और रात-दिवस इन्द्रियों के भोगों में ही अचल शान्ति चाहते हुए तमाम जीवन को व्यतीत कर देते हैं। मगर इन्द्रियों के भोग क्षण-भंगुर होने के कारण जीव को असली शान्ति इन में प्राप्त नहीं होती है, बल्कि उलटे मोह में गिरफ़्तार होकर अति दुखित हो कर इस संसार से जाना पड़ता है—ऐसा विचार हर एक मनुष्य मात्र को होना चाहिये। यानी जन्म से लेकर मरण तक जितना भी पुरुषार्थ किया, मगर जीव की आशा पूर्ण न हुई, निराशा ही संसार में आया और निराशा ही संसार से चला। ख्वाह कोई भिखारी होकर विचरा या चक्रवर्ती होकर — सब की आदि व अन्त की दशा एक ही जैसी है—ऐसा यथार्थ समझना ही उन्नति के देने वाला है।

बचन ९. इस भयंकर माया के जाल को समझना फिर सत् यत्न द्वारा अपना कल्याण करना ही मानुष जन्म का सही कर्तव्य है।

वास्तव निर्णय यह है कि तमाम जीव अपनी-अपनी अनानियत यानी हंग भाव के बाँधे हुए अपनी कामना या कल्पना का स्वरूप संसार देखते हैं और भोगते हैं। न कर्तापन अभिमान का नाश होता है और न ही कामना नाश होती है। इस वास्ते शरीर की तबदीली दर तबदीली में जीव विचरते हुए अति दुखी यानी प्यासे रहते हैं। यानी एक लम्ह भर भी निर्भय शान्ति प्राप्त नहीं होती है। हर एक मनुष्य को ऐसा अनुभव होना चाहिये।

बचन १०. इस जीवन यात्रा में हर एक जीव अपनी-अपनी कामना द्वारा ही विचरता है। ख्वाह मलीन कामनाओं से दुख प्राप्त कर लेवे या शुभ कामनाओं से सुख प्राप्त कर लेवे। यह ही कामनाओं की गिर-फ्तारी ही सब को नाना प्रकार के चक्र में फिराती है, और अचल शान्ति जो सम स्वरूप परम तत्व है—आन्तरिक में बोध नहीं होने देती।

बचन ११. सार निर्णय यह है कि जब तक अन्तर में कर्म वासना है, तब तक दुख व सुख के जाल से अबूर पाना अति कठिन है। जब तक अन्तर में कर्तापन मौजूद है तब तक कर्म वासना का नाश नहीं होता। इस वास्ते इस तमाम अशान्ति का कारण कर्तापन ही है और संसार का मूल स्वरूप भी यह ही कल्पना है। यानी कर्तापन की गिरफ्तारी में आकर कर्म और उसके फल में जीव आसक्त होकर नाना प्रकार के कर्म और कर्म के फल को भोगता हुआ नित्य अधीर रहता है। यानी कर्म फल द्वन्द्व दुःख व सुख से एक लम्ह भी शान्त नहीं होता। यह ही सब का संसार है।

बचन १२. जन्म से हर एक जीव को अपनी २ क़ायलियत यानी कर्तापन का बोध है और उस के मुताबिक़ ही संसार में विचरता है। यह कर्तापन ही स्वभाव का स्वरूप है। यानी इस मूल माया की शक्ति में गिरफ़्तार होकर जीव शरीर यात्रा में विचरता है। जब तक कर्तापन

अभिमान का नाश नहीं होता तब तक जीव का संसार खत्म नहीं होता, यानी कर्म वासना लीन नहीं होती और न ही अचल शान्ति—जो परम प्रकाश स्वरूप निर्वाण तत्व है—उसका बोध होता है।

बचन १३. इस संसार में कल्याणकारी मार्ग जीव के वास्ते यह ही है जिस से मूल अंधकार कर्तापन का अन्तर से नाश होवे और अकर्त स्वरूप परम तत्व का प्रकाश अन्तर में अनुभव होवे, जो अवस्था सम स्वरूप यानी गैर तबदील और नित्य आनन्द है।

बचन १४. इसके उलट जो साधन यानी कर्तापन के अन्धकार को बढ़ाने वाला है वह जीव के वास्ते अति कष्ट के देने वाला है। वास्तव में हर एक जीव इस संसार में अपनी तृप्ति की खातिर आया है और तृप्ति की खातिर यत्न करता है। मगर तृप्ति यानी मुकम्मिल शान्ति कर्तापन के नाश होने से प्राप्त होती है। यह ही सार सिद्धान्त तमाम सिद्धों का है।

बचन १५. जीव को मूल अशान्ति का कारण अहं भाव यानी कर्तापन का अभिमान ही है। जब तक कर्तापन में गिरफ़्तार है तब तक कर्म की वासना से मुक्त नहीं हो सकता, और जब तक कर्म की वासना है तब तक निर्भय शान्ति प्राप्त नहीं होती—यह ही जीवन विज्ञान है। हर एक मनुष्य को ऐसा बोध होना चाहिये।

बचन १६. जीव चूँकि जन्म से कर्तापन के अभिमान में आसक्त है, इस वास्ते इस मूल भ्रम अंधकार से निर्मल होना अति कठिन है, यानी जीवन में ही मृतक होकर फिर नई जिन्दगी अकर्त स्वरूप चेतन प्रकाश को अन्तर में बोध करके निर्भय शान्ति प्राप्ति करनी है, जो इस जीव की वास्तविक चाहना है और पूर्ण स्वरूप की प्राप्ति है।

बचन १७. कर्तापन यानी त्रिगुणी माया का जो स्वरूप है उस को अबूर करने के बगैर जीव को कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं होती। ख्वाह लाखों वर्ष दिव्य शारीरिक भोग प्राप्त करता रहे, अन्त को फिर निराश

का निराश ही होकर शरीर को छोड़ना पड़ता है। इस अद्भुत मार्ग संसार को अच्छी तरह से बोध करना ही कल्याणकारी यत्न के देने वाला है।

बचन १८. कर्तापन ही माया का स्वरूप है, यानी काल चक्र है, और अकर्त स्वरूप चेतन प्रकाश ही सत् तत्व है। जब तक बुद्धि अकर्त स्वरूप को अनुभव न कर लेवे और कर्तापन के अन्धकार से निर्मल न होवे तब तक अचल शाँति को प्राप्त नहीं हो सकती। इस वास्ते सत् यत्न द्वारा अपनी अनानियत से छुटकारा हासिल करना ही असली संसार में विजय है, और यह ही सत्पुरुषों का सत् पुरुषार्थ और सत् अनुभव है।

बचन १९. हर एक मनुष्य कल्याण की चाहना करता है, मगर जब तक कर्तापन से मुखलसी हासिल नहीं होती तब तक निर्मल और निर्भय शान्ति प्राप्त नहीं होती—यह निश्चय कर लेना चाहिये। इस वास्ते प्रथम सत् स्वरूप यानी अकर्त शक्ति का प्रधान होना चाहिये। फिर उसके परायण होते होते अपने तमाम विकारों को मिटाकर अन्तर में उस परम तत्व जीवन रूपी अविनाशी शब्द को अनुभव कर सकता है—यह ही निर्मल उपासना है।

बचन २०. जीव स्वभाव से कर्म अभिमानी है, इस वास्ते इस घोर जाल से छूटना अधिक कठिन है। यानी कर्म अभिमान से वासना प्रगट होती है और वासना से कर्म प्रगट होते हैं। इसी दुस्तर जाल में हर वक्त जीव मजबूर रहता है—यानी एक लम्ह भर भी सत् शान्ति का विचार या विश्वास नहीं कर सकता है—यह ही स्वार्थ अन्धकार है। इस घोर जाल से छूटने के वास्ते प्रथम परम तत्व की परायणता दृढ़ करनी चाहिये, यानी प्रभु परायण होकर तमाम कर्मों के फल उसकी आज्ञा में निश्चित करने चाहियें और दृढ़ निश्चय से निर्मल उपासना धारण करनी चाहिये। यह ही साधन वासना के निरोध करने का है और निर्मल भक्ति है। ऐसी निष्काम कर्म के मार्ग पर चलते-चलते

तमाम वासना लीन हो जाती है, और अन्तर में अखण्ड अविनाशी स्वरूप का अनुभव होता है, जो अचल शान्ति है।

बचन २१. जीव कर्तापन के अभिमान में आसक्त होने के कारण हर वक्त कर्म के दोषों को कल्पता है और राग द्वेष की अग्नि में जलता रहता है। इस वास्ते अपनी कर्तापन की अनानियत को त्यागने के वास्ते सहज साधन यह ही है कि सम स्वरूप नारायण के परायण होकर तमाम कर्मों के फल को प्रभु अर्पण करता जावे और दुख व सुख की महसूसात से अपने आपको निर्मल करे। तब परम तत्व का अन्तर में बोध होता है, जो अभय और अखण्ड शान्ति है।

बचन २२. अकर्त स्वरूप अविनाशी तत्व का अन्तर में जानना ही कर्तापन के अन्धकार से छूटना है। इस वास्ते निर्मल अभ्यास द्वारा उस परम तत्त्व का स्मरण ध्यान करना ही सत् शाँति के देने वाला है। सब संसार जो दृश्य में आ रहा है। वह सूक्ष्म स्वरूप से कर्म का ही जाल है। निःकर्म स्वरूप एक आत्मा ही है। इस वास्ते जब तक बुद्धि निःकर्म स्वरूप आत्मा को न जाने, तब तक कर्म के जाल से छुटकारा हासिल नहीं कर सकती है। यानी कर्म की पूर्णता आत्म-अनुभव से ही है। इस वास्ते एक जीवन तत्त्व का जानना ही सर्व कल्याण के देने वाला है।

बचन २३. कर्म के जाल में तो जन्म से हर एक जीव मजबूर है। इस वास्ते अकर्म शक्ति का जानना ही कर्म जाल से कल्याण हासिल करना है। अकर्म शक्ति केवल एक परम तत्त्व अविनाशी शब्द आत्मा ही है, जो अन्तर-बाहिर पूर्ण स्वरूप में प्रकाश कर रहा है। अपने निर्मल अन्तःकरण के होने से उसका बोध होता है। इस वास्ते सत् यत्न द्वारा निर्मल भक्ति को धारण करके अन्तःकरण की शुद्धि करके, यानी कर्तापन् के अन्धकार से निर्मल करके उस परम तत्त्व का बोध करना ही अखण्ड शाँति की प्राप्ति है। यह ही साधन असली कल्याणकारी है।

बचन २४. कर्तापन अंधकार संसार का स्वरूप है और अकर्त स्वरूप चेतन प्रकाश असली मूल है। जब तक बुद्धि अकर्त स्वरूप को अनुभव न कर लेवे तब तक संसार का आवागवन यानी कर्म वासना का चक्र नाश नहीं होता। इस वास्ते अकर्म स्वरूप चेतन प्रकाश को जानना ही परम सिद्धि और शाँति है।

बचन २५. कर्तापन से तमाम संसार सूक्ष्म स्थूल प्रगट होता है और इसी में स्थिर है। कर्तापन ही प्रभु की माया है। जब प्रभु स्वरूप का अन्तर में बोध हो जाता है तब कर्तापन माया का अभाव हो जाता है, और सर्व स्वरूप एक परम तत्व आत्मा ही जान पड़ता है। यह ही अवस्था अचल शाँति की है। अपने अनुभव करके जानने योग्य है।

बचन २६. इन ही दो शक्तियों यानी दो हालतों को सिद्ध पुरुषों ने कई भावों से ब्यान किया है। यानी एक जीवन शक्ति जो नित्य आनन्द सम स्वरूप है। दूसरी कर्तापन अभिमान जो माया का स्वरूप है, और आदि अन्त का चक्र है। जब तक बुद्धि कर्तापन में मजबूर है, तब तक आदि और अन्त के चक्र में फंसकर नित्य ही दुखी रहती है। और जिस वक्त अकर्त स्वरूप का अन्तर में बोध प्राप्त कर लेती है, उस वक्त एक परम तत्व अखंड स्वरूप ही सर्व अनुभव करके उसमें लीन हो जाती है। यह ही हालत निर्वाण और अचल शाँति की है।

बचन २७. कर्तापन में ही संसार की उत्पत्ति और प्रलय है। अकर्त स्वरूप आत्मा में संसार का अभाव है। इस वास्ते वह केवल तत्व जानना ही परम शान्ति और सिद्धि है। कर्तापन के अभिमान को निवृत्त करने के वास्ते ही उस परम तत्व जीवन स्वरूप आत्मा का यथार्थ स्वरूप से स्मरण ध्यान करना ही सर्व कल्याण के देने वाला है।

बचन २८. कर्तापन त्रिगुणी माया से ही कर्म यंत्र प्रगट होता है, और कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति से ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार आदि महा अवगुण अशान्ति का समुद्र प्रगट होते हैं। जिनमें जीव सदा अशान्त और दुखी रहता है। इस वास्ते तमाम दुखों से छूटने के

वास्ते एक परम तत्व आत्म स्वरूप अकर्तम शक्ति का जानना ही कल्याणकारी है, और सत्पुरुषों के सत उपदेश को यह ही सार है। निर्मल बुद्धि द्वारा धारण करना ही मानुष जन्म की उच्चता है।

बचन २६. सत्पुरुषों ने इन दो हालतों को यानी बन्धन और मुक्ति के भेद को कई स्वरूप में ब्यान किया है। मगर वास्तव में निर्मल भाव एक ही है। सो विचार करके अपना उद्धार करना ही हर एक मनुष्य के वास्ते सही जीवन कर्तव्य है। इन ही दो हालतों को अनेक भाव से जो विचार किया गया है, उनको सही अनुभव करके दृढ़ निश्चय से एक आत्म परायण होना ही परम सिद्धि के देने वाला है।

निर्णय जीवन

निर्भय शान्ति और अशान्ति

—:०::०:—

निर्भय शान्ति		अशान्ति
१. समता शक्ति	॥	ममता शक्ति
२. आत्म शक्ति	॥	अनात्म शक्ति
३. निःकर्म शक्ति	॥	कर्म शक्ति
४. दयाल या अकाल शक्ति	॥	काल शक्ति
५. ब्रह्म शक्ति	॥	माया शक्ति
६. सत् प्रकाश	॥	मोह अंधकार
७. गुरमुखता	॥	मन मुखता
८. आनन्द स्वरूप	॥	द्वन्द्व स्वरूप
९. निर्वाण गति	॥	आवागवन
१०. शून्यता	॥	काल और कल्पना
११. ईश्वर शक्ति	॥	प्रकृति शक्ति
१२. गुणातीत यानी निर्गुण	॥	त्रिगुणी माया यानी सगुण

१३. चेतन प्रकाश	॥	जड़ अंधकार
१४. सुर शक्ति	॥	असुर शक्ति
१५. निःसंग शक्ति	॥	अहं विकार शक्ति
१३. प्रबोध अवस्था	॥	खेद अवस्था
१७. विज्ञान स्वरूप	॥	भ्रम स्वरूप
१८. सहज पद	॥	दुस्तर मार्ग
१९. ज्योति स्वरूप	॥	वासना जाल अंधकार
२०. अपना आप भाव	॥	दुर्मत भाव
२१. निरस्वभाव	॥	स्वभाव सहित
२२. केवलस्वरूप	॥	भ्रमस्वरूप
२३. समस्वरूप	॥	आदि अन्त स्वरूप
२४. अखण्ड और अनाम	॥	असत् नाम रूप
२५. निराकार अद्वैत स्वरूप	॥	साकार द्वैत स्वरूप
२६. नाद स्वरूप	॥	विन्दु स्वरूप
२७. अक्षय, अछय, अभय,	॥	नित्य नाश स्वरूप और दुख स्वरूप
२८. सर्वज्ञ व सर्व शक्तिमान	॥	अल्पज्ञ नित्य आसक्त
२९. अनादि व अजन्मा	॥	आदि अन्त सहित
३०. परिपूर्ण सर्वाधार	॥	नित्य पराधार
३१. एक स्वरूप	॥	क्षण भंगुर व अनेक स्वरूप
३२. अचिन्त और अछेद	॥	नित्य अशान्त और नाश स्वरूप
३३. क़ादर	॥	क़ुदरत
३४. शुद्ध प्रकाश निर्वास निर्द्वन्द	॥	अनन्त वासना और कल्पना का स्वरूप
३५. सत्य	॥	असत्य
३६ परमानन्द प्रकाश स्वरूप	॥	दुखियानन्द दुख स्वरूप
३७. सुमति	॥	दुर्मति

३८ अनुभव स्वरूप	॥	दृष्यमान
३६. मन नाम	॥	मिथ्याकार
४०. योग आरूढ़ स्थिति	॥	भोगमयी दृढ़ता
४१. चरण कंवल यानी आत्म-ध्वनि	॥	मन, वाणी आदि कल्पना खेद स्वरूप
४२. अहिंसा	॥	हिंसा
४३. अकर्तम शक्ति	॥	कर्तम शक्ति
४४. असंग स्वरूप	॥	संग स्वरूप
४५. निर्देह	॥	देह
४६. सत बोध	॥	असत् बोध

और भी कई भावों से इन दो हालतों का ब्यान किया हुआ है। मगर यथार्थ निर्णय यह ही है कि कर्तापन अभिमान जो मूल तमाम दुर्मत के जाल का है—उस से निर्मल होकर तत्व स्वरूप जो सर्व उपमा योग्य है, उसको जान लेना चाहिये। वह ही असली शान्ति और आनन्द स्थान है। उसको प्राप्त करके जीव परम शान्त हो जाता है।

बचन ३०. जिसके जानने से सब कुछ जाना जाता है, जिसकी प्राप्ति से परम संतोष प्राप्त हो जाता है। वह ही निर्भय पद अविनाशी शब्द सर्व अन्तर में प्रकाश कर रहा है। एकाग्र चित्त होकर उसका स्मरण ध्यान करना ही सर्व आनन्द के देने वाला है—यह ही साधन परम धन है।

बचन ३१. अनात्म पदार्थों से बुद्धि को निर्मल कर के एक आत्म परायण होना ही मानसिक शान्ति के देने वाला है। इस वास्ते तमाम तोहमात को छोड़ कर एक जीवन शक्ति का विश्वासी और अभ्यासी होना ही परम गति के देने वाला है। नित्य ही सत्पुरुषों की संगत से आत्म निश्चय को प्राप्त करना चाहिये, जिससे अनन्त स्वरूप संसार की

रचना से विलग होकर अपने अन्तर विषय सत् स्वरूप को प्राप्त करके जीवन निर्भय हो जावे।

बचन ३२. जब तक अन्तर में कर्म अभिमान है, तब तक एक आत्मा को कर्ता हर्ता सर्व ईश्वर जानना ही कल्याण के देने वाला निश्चय है। ऐसी भावना को धारण करके नित्य ही अनन्य चित्त करके अन्तर में सत्नाम का स्मरण करना और ध्यान करना ही शब्द स्वरूप आत्मसिद्धि के देने वाला यत्न है। यह ही निर्मल भक्ति और उपासना है, यानी सब कुछ—हुआ और न हुआ—एक प्रभु से ही जानना और अपने आपको तुच्छ जानना—यह निश्चय ही कर्तापन अभिमान से मुक्ति के देने वाला है। और अकर्त स्वरूप आत्मा का अन्तर में बोध करने वाला है। इस वास्ते इस निर्मल प्रेम भक्ति की भावना से अन्तःकरण को शुद्ध करके तत्व स्वरूप को प्राप्त कर लेना ही गुरमुखों का परम धर्म है।

बचन ३३. जब निर्मल भक्ति से कर्म वासना नाश हो जाती है और अकर्त स्वरूप अविनाशी शब्द अन्तर में बोध हो जाता है, उस वक्त बुद्धि तमाम कल्पना से निर्मल होकर परम तत्व में लीन हो जाती है। और तमाम प्रकृति जाल से अपने आपको भिन्न करके देखती है, और यह ही अवस्था परम सिद्धि है—और तमाम संसार का मूल धाम है। जिस गुणी पुरुष को यह अवस्था प्राप्त हुई है, वह ही पूजने योग्य है, उसने ही तमाम संसार के भेद को जाना है, और सम पद को प्राप्त हुआ है।

बचन ३४. कर्तापन के अभिमान से मुख़लिसी हासिल करने की ख़ातिर एक ईश्वर को ही कर्ता हर्ता जानना चाहिये और परम प्रीति से उस सच्चिदानन्द का अखण्ड स्मरण करना चाहिए। ईश्वर भक्ति के योग से तमाम वासना का जाल क्षीण हो जाता है और बुद्धि निर्वास होकर पूर्ण स्वरूप को अन्तर में अनुभव कर लेती है, और शान्त हो जाती है। यानी कर्तम भावना से मुक्त होकर अकर्तम स्वरूप जो शुद्ध

प्रकाश सम स्वरूप है, उसमें लीन हो जाती है। यह ही अवस्था जानने योग्य है। जिसने जानी है, वह ही जगत् गुरु और सर्व पूज्य है—उसका दर्शन दुर्लभ है।

बचन ३५. ज्ञानी अकर्तम स्वरूप यानी सम पद चेतन प्रकाश को अनुभव करके हर वक्त उसमें आनन्दित रहता है, और अज्ञानी कर्तम स्वरूप अभिमान के वश होकर कर्म वासना के जाल में नित्य ही भरमता रहता है। यानी शारीरिक भोगों में नित्य आसक्त होकर दुख व सुख में चलायमान होता रहता है। इस वास्ते इन दो अवस्थाओं को विचार करके मलीन अवस्था कर्तापन अभिमान जो ममता का घोर जाल है—इसको त्यागने का यत्न करना और शब्द स्वरूप अकर्तम ज्योत का अन्तर में स्मरण ध्यान करना ही परम शान्ति के देने वाला मार्ग है। तमाम गुणी पुरुषों का धर्म है कि पवित्र आत्म-निश्चय को धारण करके अनात्म जड़ अन्धकार से निर्मल होकर सत् स्वरूप का बोध कर लेना ही मानुष जन्म की सफलता जानें।

बचन ३६. सार विचार निर्णय यह है कि एक आत्म-विश्वास को धारण करके तमाम संसार का प्रकाशक तथा रचक और सर्व जीवन रूप उसी परम तत्व को जानकर नित्य ही सत् श्रद्धायुक्त होकर अन्तर में अचल वृत्ति करके स्मरण ध्यान करना ही परम सिद्धि यानी सम पद के देने वाला योग है, और कर्म अभिमान के नाश करने का निर्मल साधन है। इसी सर्व कल्याणकारी विचार को अनुभव करके फिर सत् साधन को धारण करना ही सर्व सिद्धि समता आनन्द के देने वाला यत्न है।

बचन ३७. हर एक जीव के अन्तर में ही आनन्द स्वरूप प्रकाश कर रहा है, मगर ममता के कल्पित स्वरूप के अंधकार से उस परम तत्व का अन्तर में बोध नहीं होता। इस वास्ते सत् यत्न द्वारा अपने अन्तर से कर्म अभिमान का त्याग करना और निर्मल भक्ति को अन्तर में धारण करना ही सर्व सिद्धि और शान्ति के देने वाला भाव है। और सत् पुरुषों का निर्मल पुरुषार्थ भी यह ही है कि इस मिथ्या संसार में

आकर सत्य परायण होकर तमाम दुखों से रिहाई हासिल कर ली जावे।

बचन ३८. नित्य ही अन्तर में एक नाम का आराधन करना, और तमाम कर्म प्रभु इच्छा में समर्पण करने, तमाम कल्पना और कामना को अन्तर से निरोध करना, केवल एक प्रभु के परायण होना ही निर्मल भक्ति है। ऐसे सत् अनुराग के बल से बुद्धि कर्म वासना को त्याग करके अपने आप में निःचल होकर अन्तरमुख हो जाती है। यानी तमाम शारीरिक कर्मों के बन्धन से निर्मल होकर अपने अन्तर में एक शब्द स्वरूप अविनाशी तत्व में अडोल हो जाती है। ऐसी स्थिति परम कल्याण का स्वरूप है और समता आनन्द है।

बचन ३९. जब तमाम शारीरिक कर्मों से निर्बन्ध हालत प्राप्त हुई, यानी दुख व सुख की कल्पना को प्रभु इच्छा में दृढ़ निश्चय से त्याग करके बुद्धि केवल एक नाम परायण हुई। तब सत् स्वरूप को अन्तर में अनुभव करके उसी में लीन हो जाती है, और तमाम वासना जो दुख का मूल है, उससे पवित्र हो जाती है। यह हालत ही परम आनन्द और सहज पद समता है।

बचन ४०. शारीरिक भोग वासना ही हर वक्त अशान्ति के देने वाले हैं। और बुद्धि को बारम्बार कर्म चक्र में ग्रासते हैं। इस वास्ते तमाम शारीरिक भोगों में मुनास्बत् धारण करते हुए एक आत्म परा-यण होना, और निर्मल नाम का निध्यासन करना ही कल्याण के देने वाला है, यानी अनर्थ कल्पना का त्याग करके अखण्ड प्रीति से उठते बैठते एक नाम का ही स्मरण करना और परम पिता परमेश्वर की आज्ञा में तमाम शारीरिक दुख व सुख को समझना, ऐसी धारणा से बुद्धि कर्म अभिमान जो मूल अन्धकार है, उस से निर्मल हो कर निःकर्म स्वरूप आत्मा को अन्तर में अनुभव कर लेती है। और अपने आप में नित्य ही संतोष को प्राप्त होती है। यानी नित्य ही चेतन प्रकाश को अनुभव करके अन्तर में निःचल होकर तमाम शारीरिक दुख व सुख से छूट पाती है। और हर वक्त निःकर्म निर्वास होकर अन्तर में ही स्थिर

होती है, और परम रस आत्म शब्द का पान करती है। यह ही हालत असली जागृति की है—यानी कर्म वासना के जाल से निर्मल होकर बुद्धि नित्य हो अकर्म स्वरूप अविनाशी तत्व में अपने आप को लीन कर देती है, और वह ही रूप हो जाती है। ऐसी अवस्था को जिसने जाना है, उसी ने जाना है—वह पुरुष धन्य है और धन्य उसकी कीर्ति है, उसका उपदेश सर्व कल्याण के देने वाला है।

बचन ४१. इन्द्रियों के भोगों से असंग होना ही ईश्वर परायणता है, जिस वक्त बुद्धि एक नाम परायण हो जाती है। उस वक्त तमाम विकारों से निर्मल होकर अन्तर में ही शुद्ध स्वरूप आत्मा में लीन रहती है। यह ही अकर्त अवस्था है, यानी शारीरिक कर्मों से निराभिमान हो निःकर्म स्वरूप शब्द में स्थिति हासिल करनी, और यह ही योग आरूढ़ हालत है। यानी इन्द्रियों के भोगों से असंग होकर दृढ़ निश्चय से नाम परायण होना, और अनन्य प्रीति से नाम स्मरण के बल से देह अभिमान का त्याग करना—ऐसे निर्मल त्याग से ही परम शान्ति स्वरूप आत्म भान का अन्तर में प्रकाश होता है।

बचन ४२. इन्द्रियों के भोग ही दुख का स्वरूप हैं, इन्द्रियों के भोग ही संसार का स्वरूप हैं, इन्द्रियों के भोग ही आवागवन के देने वाले हैं, इन्द्रियों के भोग ही आत्म-आनन्द से विलग करते हैं। जब तक कर्ता-पन का अभिमान मौजूद रहता है, तब तक इन्द्रियों के भोगों से असंग होना कठिन है। ख़्वाह सब कुछ छोड़ कर जंगल में विश्राम क्यों न करे, मगर अन्तर से भोग वासना का नाश नहीं होता।

बचन ४३. निर्णय यह है कि जब तक अपने आप को कर्ता मानता है, तब तक भोगता भी निश्चय से होता है। जब भोगता है, तब दुख व सुख भी जरूरी है। जब दुख व सुख की महसूसात मौजूद है, तब इच्छा, चिन्ता, भय, मोह आदि तमाम विकार अन्तर में आसते हैं—यह ही माया का चक्र है।

बचन ४४. इन्द्रियों के इस कठिन जाल से असंग होना अधिक शूरवीरता है। इस वास्ते पहले तमाम भोगों की मुनास्बत हासिल करे, यानी जीवन निर्वाह की ख़ातिर सत् और जायज़ क्रिया को धारण करे, और बुद्धि को हर वक्त नाम चिन्तन में लगाए रखे। अधिक प्रेम और श्रद्धा प्रभु स्वरूप और गुरु में होवे, और क्षणभंगुर भोगों से चित्त वैराग को दृढ़ करे, और निर्मल भक्ति के बल से अपनी तमाम कामनाओं का त्याग करके एक प्रभु इच्छा में अपने आप को दृढ़ करे। तब तमाम कल्पनाओं से विलग होकर बुद्धि अन्तर नाम रस को खा के तृप्त होती है, यह ही परम **भक्ति** है।

बचन ४५. अनन्य भावना से एक अविनाशी शब्द का चिन्तन करना ही इन्द्रियों के भोगों से असंग और तृप्त करने वाला यत्न है। इस वास्ते नित्य ही सत् श्रद्धायुक्त होकर एक प्रभु परायण होना, और तमाम विकारों से शुद्धि हासिल करनी ही उच्च जीवन कर्तव्य है। इन्द्रियों के भोगों से विलग होकर नाम रस को जब बुद्धि पान करती है, तब निर्वास आनन्द अखण्ड शान्ति शब्द स्वरूप को प्राप्त होकर कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाती है। यानी नाम स्मरण से कर्म अभिमान का नाश करके नित्य ही निःकर्म ज्योत आत्मा में लीन रहती है। ऐसी स्थिति को जो प्राप्त हुआ है, वह ही **इन्द्री-अतीत, संसार-अतीत, गुणातीत, काल-अतीत,** अप्रमाण, नित्य शुद्ध और निर्विकार आत्म स्वरूप को प्राप्त हुआ है। ऐसी परमानन्द अवस्था जो तमाम खेद से शुद्ध है, और परिपूर्ण आनन्द स्वरूप है, उसको प्राप्त करके परम शान्त स्वरूप हो गया है, और जानने योग्य सम पद निर्वाण को जान लिया है। सार भाव यह है कि जो प्रकृति के भोगों से निर्बन्ध होकर आत्म आनन्द में पूर्ण हुआ है। उस का जीवन दुर्लभ और कीर्ति योग्य है। उसने संसार की यात्रा को पूर्ण किया है। और निर्भय शान्ति को प्राप्त करके निर्वास स्वरूप हो गया है। ऐसे महापुरुष का दर्शन और

बचन तमाम जीवों के वास्ते कल्याणकारी है। सब प्रेमी सत् जिज्ञासु होकर इस परम पवित्र समता विवेक के लेख का विचार करें, और कर्म अभिमान जो परम दुख का मूल है, उसका त्याग प्राप्त करके निर्मल भक्ति जो परम सुख का स्वरूप है, उसको धारण करके सत् स्वरूप सम पद अविनाशी शब्द का अन्तर में बोध हासिल करें। यह ही मानुष जीवन का परम उत्तम कर्तव्य है। ईश्वर सत् प्राप्ति का सत् पुरुषार्थ देवे।

(ख) श्री सतगुरु गुह्य उपदेश

पहला उपदेश—मन की खुशी को त्याग कर असली ज़िन्दगी की तहक़ीक़ात कर, जिससे मुकम्मिल शान्ति प्राप्त हो। मन की खुशियाँ दुख का पूर्ण स्वरूप हैं। इन में मुस्तग़र्क होने से अंजामे ज़िन्दगी का पता नहीं लगता। ज़िन्दगी की तहक़ीक़ात असली तहक़ीक़ात है, जो मन, देह, इन्द्रियां प्राण की ममता के त्याग करने से प्राप्त होती है। ज़िन्दगी यानी जीवन शक्ति अपने आप में पूर्ण और आनन्द है। उसी परम तत्त्व के अनुराग से तमाम मन के विकारों पर जीत पाई जा सकती है ऐसी साधना ही असली जीवन का पुरुषार्थ है।

दूसरा उपदेश—मन, देह, इन्द्रियां और प्राण की तबदीली से जीवन शक्ति की तबदीली नहीं होती। वह तीन काल सम स्वरूप है। इस वास्ते जब तक बुद्धि मन, देह, इन्द्रियों और प्राण के परायण है, तब तक भय और भ्रम से शान्त नहीं होती। जिस वक्त जीवन शक्ति को अपने अन्तर में अनुभव करती है, मन, देह, इन्द्रियां और प्राण की ममता को त्याग कर अति निर्मल वैराग को धारण करके उस वक्त तमाम दुखों से छूटकर परम शान्त हो जाती है, यह ही हालत असली जीवन का मेराज है।

तीसरा उपदेश—मन, देह, इन्द्रियां और प्राण तमाम कर्म का जाल है। बुद्धि इन से वाबिस्ता होकर कर्म-फल को प्राप्त करके दुख व सुख की महसूसात में नित्य ही चलायमान रहती है। इस वास्ते दृढ़ निश्चय से एक परम तत्त्व शब्द स्वरूप आत्मा के परायण होने से

मन, देह, इन्द्रियां और प्राण का नाश होता है, और अन्तर में अचल अविनाशी निःकर्म स्वरूप शब्द को अनुभव करके बुद्धि परम शान्ति को प्राप्त हो जाती है, और यह ही परम पुरुषार्थ और परम सिद्धि है।

चौथा उपदेश—इन्द्रियों की चलायमानता में शरीर की ममता क़ायम है। मन की चलायमानता से इन्द्रियों की ममता क़ायम रहती है। प्राण की चलायमानता से मन चलायमान रहता है। जब तक बुद्धि प्राणों की गर्दिश को पूर्ण निःचलता करके हर घड़ी हर लम्हे अनुभव नहीं करती है, तब तक प्राणों की ममता का नाश नहीं होता। इस वास्ते सत्गुरु शिक्षा द्वारा नित्य ही एक नाम के परायण होकर इस तमाम माया के यन्त्र से विजय हासिल करनी ही परम योग, परम भक्ति और परम तप है।

पाँचवाँ उपदेश—जिस वक्त सत् उपदेश द्वारा दृढ़ अनुराग से बुद्धि अन्तर-बाहर हर घड़ी हर लम्हे एक नाम के परायण हो जाती है, उस वक्त अन्तर विषय परमानन्द अखण्ड स्वरूप शब्द को अनुभव कर लेती है—जो तमाम संसार का जीवन और प्रकाश स्वरूप है। ऐसे अनुभव को प्राप्त करके ज्ञान विज्ञान के परम बल से तमाम प्रकृति के विकारों से यानी ममता के अन्धकार से निर्मल होकर उसी में लीन हो जाती है। यह ही अवस्था परम शान्ति निर्वाण है।

इस विचार को अच्छी तरह अनुभव करके अपने जीवन की उन्नति करनी चाहिये, जिससे परम धाम निःसंग, निर्वाण, परम तत्त्व अविनाशी शब्द में समता प्राप्त हो।

(ग) निर्मल जीवन कर्तव्य

(१) सब जीवों की अन्दरूनी चाहना निर्मल शान्ति की प्राप्ति है, जो तमाम ज़रूरतों यानी कामनाओं के त्याग करने से प्राप्त होती है। कामनाओं का त्याग देह परायणता के त्याग करने से और ईश्वर के परायण होने से प्राप्त होता है। देह परायणता का त्याग सादगी, सत्य, सेवा, सत्संग, सत् स्मरण आदि नियमों की धारणा के बल से प्राप्त होता है। यानी तमाम सुखों की मुनास्बत हासिल करके ग़ैर-ज़रूरी ज़रूरतों का त्याग करना, और अपने आपको ईश्वर आज्ञा में निश्चित करना—यह भावना देह अभिमान और स्वार्थ, यानी खुदग़र्ज़ी से निजात के देने वाली है, और असली कल्याण का स्वरूप है।

(i) देह परायणता का पूर्ण निर्णय

(क) महज़ अपने शारीरिक सुखों में अति मुस्तग़र्क रहना।

(ख) ख़ानदान की परायणता, यानी अपने ख़ानदान के सुखों की खातिर दिन-रात पुरुषार्थ करना।

(ग) मज़हब, पंथ, समाज की परायणता, यानी हर वक्त अपनी समाज, या मज़हब, या पन्थ की उन्नति की ख़ातिर यत्न-प्रयत्न करते रहना।

(घ) देश परायणता, यानी हर वक्त देश सुधार के विचारों में अपने आपको बलिदान करना।

मगर ख़ुदग़र्ज़ी को अन्तर में धारण करते हुए, अगर कोई गुणी अपनी उन्नति, खानदान की उन्नति, समाज की उन्नति, देश की उन्नति करना चाहता है। तो वह सही उन्नति को प्राप्त नहीं कर सकता है, जब तक कि वह पहिले एक ईश्वर परायणता में अपने आपको दृढ़ न करे। ईश्वर परायणता से ही सब मानसिक दोषों का नाश होता है, और सर्व विजय और सर्व शान्ति प्राप्त होती है।

(ii) ईश्वर परायणता का निर्णय

एक ईश्वर के परायण होकर अपने जीवन का पूर्ण सुधार करना, यानी अपनी तमाम खुदगर्ज़ी और स्वार्थ का त्याग कर देना और केवल प्रभु आज्ञा में निश्चित होकर तमाम जीवों का कल्याण करना, और कल्याण चाहना, अपनी शक्ति के मुताबक़—यह भावना ईश्वर परायणता है। यानी एक ईश्वर के दृढ़ परायण होने से देह की शुद्धि, खानदान यानी कुल की शुद्धि, समाज की शुद्धि या उन्नति और देश की उन्नति या पवित्रता गुणी पुरुष कर सकता है, और इसी ईश्वरीय नियम के अनुकूल चल कर अपने आप का भी सुधार कर सकता है। यानी तमाम खुदगर्ज़ी को त्याग करके अपने फ़र्ज़ को समझते हुए निराभिमान होकर यथाशक्ति तमाम जीवों का कल्याण करना ही असली शान्ति प्राप्ति का साधन है। इसके बग़ैर यानी ईश्वर के परायण होने के बग़ैर निर्मल रूप में किसी किस्म की भी उन्नति जीव नहीं कर सकता है। क्योंकि अपने मानसिक दोष उसको सत् मार्ग यानी निर्मल परोपकार में दृढ़ निश्चत होने नहीं देते हैं। इस वास्ते तमाम उन्नति का मर्कज़ और निर्मल शान्ति की प्राप्ति ईश्वर परायण होने से ही प्राप्त होती है। ईश्वर ही परम सुख, सत् स्वरूप और घट-घट व्यापक है। जब तक जीव अन्तर मुख होकर उस प्रभु की प्रार्थना, उपासना या आज्ञा को धारण नहीं करता है, तब तक जिन्दगी के सही मक़सद, यानी निर्भय शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता है, और न ही देह परायणता, यानी खुदगर्ज़ी के अंधकार से छूट सकता है। सार निर्णय यह है, कि गुणी पुरुष ज्यों ज्यों प्रभु

परायणता को प्राप्त होता है, त्यों त्यों मिथ्या संसार की कामना से निर्मल होकर प्रभु के स्वरूप में ही लीन हो जाता है। वह ही अवस्था सम स्वरूप निर्वाण पद परम शान्ति है।

— — —

(घ) आत्मिक व सामाजिक उन्नति के निर्मल नियम

बचन १. पाँच मुख्य नियमों का पूर्ण तरीका से पाबन्द होना या सादगी, सेवा, सत्य, सत्संग, और सत् स्मरण में अधिक दृढ़ता धारण करनी, सर्व उन्नति और कल्याण के देने वाली धारणा है।

बचन २. संगत में छोटे से छोटा सेवा का कार्य और बड़े से बड़ा सेवा का कार्य हरएक प्रेमी को सर अंजाम देने का यत्न करना, प्रेम और उन्नति देने वाला नियम है।

बचन ३. अपने सत्संगियों तथा तमाम मनुष्य मात्र से दिली प्रेम करना और भलाई चाहनी अधिक उन्नति का नियम है। समता तमाम विश्व की सेवा का स्वरूप है।

बचन ४. संगत के तमाम प्रेमी अपनी ज़रूरतों को काफ़ी त्याग करके दूसरों की उन्नति की ख़ातिर अपना तन, मन और धन निष्काम भाव से अर्पण करना परम उन्नति का साधन है, और अधिक शान्ति के देने वाला यत्न है।

बचन ५. हर एक सत्संगी अपनी शक्ति के मुताबिक़ बढ़-चढ़ कर हर एक क़िस्म की सेवा करने में जो दृढ़ रहते हैं, उन का गौरव तमाम दुनिया में फैल जाता है, ख़्वाह थोड़ी तादाद में क्यों न हों।

बचन ६. अपनी जाति और ख़ानदान में भी पवित्र आचरण को फैलाना, अपने अमली जीवन करके—अधिक उन्नति और शान्ति के

देने वाला नियम है। हर एक सत्संगी को ऐसी धारणा धारण करनी चाहिये।

बचन ७. संसार में कई रंग के जीव होते हैं। कोई आलातरीन बुद्धि वाले, कोई अदना बुद्धि वाले, मौका के मुताबिक सब ही अपना-अपना फ़र्ज़ समझ कर सत् धर्म में अपने आपको बलिदान देने में जो दृढ़ निश्चय वाले हैं, ऐसी संगत के प्रेमी हर समय में अपना उच्च आदर्श पेश करके संसारी जीवों के वास्ते अधिक कल्याणकारी हैं, और धर्म के स्वरूप के प्रकाशक हैं।

बचन ८. संगत में जो प्रेमी सत् नियमों का पाबन्द होवे, उस की हर तरीक़ा से श्रद्धा को बढ़ाना हर एक प्रेमी का फ़र्ज़ है। अगर कोई प्रेमी किसी नियम से पतित हो जावे तो उसके साथ इन्तहा दर्जे का प्रेम करके उसका सुधार करना चाहिये। क्योंकि अधिक से अधिक मलीन बुद्धि प्रेम के जल से एक क्षण में शुद्ध हो जाती है। यह परम साधन है। इसके उलट उसके साथ नफ़रत करनी या तौहीन करनी, हानिकारक है। जब वह पतित जीव अपनी ग़लती को समझेगा तो वह खुद संगत के प्रेम वश में आकर हर तरीके का दंड स्वीकार करेगा, और आइन्दा के वास्ते वह संगत के वास्ते बड़ी से बड़ी कुरबानी पेश करेगा। **यह प्रेम ही सब त्रुटियों की औषधि है**—ऐसी धारणा निश्चयन ही उन्नति के देने वाली है।

बचन ९. संगत का हर एक प्रेमी अपने सत् नियमों का पालन करने में जो अधिक से अधिक कोशिश करता है, वह सब ही प्रेम स्वरूप होकर देश व जाति के वास्ते एक जीवन रूप हो जाते हैं। ऐसा निश्चय दृढ़ होना चाहिये।

बचन १०. संगत का हर एक प्रेमी वाद-विवाद को त्याग करके अपना जीवन असली स्वरूप में पेश करे। इससे अधिक भलाई होती है, और वह नीति फैलती है। इस के उलट जो ज़बानी ही रट लगाए

रखते हैं, वह कभी भी किसी सिद्धि को प्राप्त नहीं हो सकते हैं, यह निश्चय कर लेना चाहिये।

बचन ११. संगत का हर एक प्रेमी सत्संग द्वारा सत् उपदेश को श्रवण करके उस पर ग़ौर करे, फिर उसको अमल में लावे, ऐसा निश्चय जिस संगत का होवे, वह हर एक पवित्र आदर्श को धारण करके परम उन्नति को प्राप्त होती है, और दुनियाँ में एक लामिसाल शक्ति और शान्ति की सूरत में पेश होती है।

बचन १२. किसी को सुधारने के वास्ते अपना पवित्र आचरण पेश करना सिद्धि के देने वाला है। इस वास्ते जो संगत दूसरों की भलाई के वास्ते अपना यथार्थ अमली स्वरूप पेश करती है, वह संगत ज़रूरी परम उन्नति को प्राप्त होती है।

बचन १३. देश व जाति के ग़लत रिवाजों का सुधार करने की ख़ातिर बहुत तेज़ी नहीं करनी चाहिये, बल्कि आहिस्ता-आहिस्ता कोशिश करना और अपना पवित्र आदर्श पेश करना निहायत सिद्धि के देने वाला है। इस साधना से सर्व जीव शान्ति से एक निर्मल नीति के पाबन्द हो जाते हैं।

बचन १४. अपनी सङ्गत के बग़ैर जो दूसरी सङ्गत होवे ख़्वाह किसी भी असूल की पाबन्द होवे, उसके साथ मुतलक़ वाद-विवाद नहीं करना चाहिए, बल्कि उसकी अन्दरूनी तकलीफ को विचार करके उसके रफ़ा करने का यत्न करना अधिक कल्याणकारी है। इस साधन से वह खुदबखुद तुम्हारे असूलों का पाबन्द हो जायगा और हमजीवन बनेगा।

बचन १५. दुनियाँ में तमाम उच्च आदर्श वाले पुरुषों की नीति को सुनने में प्रेम रख कर और उनकी क़ुरबानी के जज़्बात को अपनी मानसिक खुराक बना कर जो संगत विचरती है, वह तमाम विश्व में अपनी नीति को फैला सकती है, यानी सब जीवों के अन्दर मानसिक दुख एक ही जैसा है। समझने के वास्ते सिर्फ बुद्धि की ज़रूरत है। इस

वास्ते किसी की बुद्धि को जागृत करने के वास्ते अपना अमली जीवन होना चाहिये।

बचन १६. हर एक जीव अपने अनुभव के मुताबिक दुनियाँ को देखता है, और विचरता है। इस वास्ते सबसे पहिले अपना जीवन कल्याणकारी बनाया जावे तो दूसरों का भी कल्याण हो सकता है। यह ईश्वरीय नियम है।

बचन १७. जो जीव अपना निज सुख दूसरों की सेवा में प्रेम से अर्पण करता है, वह संगत के वास्ते और देश के वास्ते अधिक शिरोमणि है। ऐसा प्रभाव जब सङ्गत के हर एक प्रेमी का होवे तो सर्व कल्याणकारी और उन्नति के देने वाला यत्न है।

बचन १८. वास्तविक जीवन निर्णय यह है, कि हर एक जीव स्वार्थ की कैद में आकर नित्य ही अपनी जरूरतों और कामनाओं को फैलाकर दूसरे जीवों का बाधक हो जाता है। उसकी स्वार्थी जिन्दगी उसके अपने वास्ते और तमाम जीवों के वास्ते दुखदाई बन जाती है। ऐसे भाव जिस संगत और जिस देश की जनता में हो जाएँ, वह एक दिन तमाम कीर्ति से हीन होकर दुनियाँ से मिट जाती है। यह निश्चय ही अधर्म और अशान्ति का समुद्र है। इससे हर वक्त अपने आपको बचाना ही मानुष जन्म की सार है।

बचन १६. जो जीव संसार की नापायदारी को निश्चय करके अपने जीवन को पवित्र आचरण में शुरू करता है, वह ही संगत के और देश के वास्ते शिक्षक है। उस का जीवन शान्ति के देने वाला है, और आयन्दा (भविष्य) की जनता के वास्ते आदर्श स्वरूप है।

बचन २०. जो जीव तमाम जरूरतों की मुनासबत को धारण करने वाला है, यानी सादगी का अनुयायी है, और जो कपट और छल को त्याग करके सत्यवादी होने का यत्न करता है, और तमाम सत् पुरुषों के जीवन आदर्श को जो हृदय में दृढ़ करता है। यानी सत्संग के सही स्वरूप को जो धारण करता है। और तन, मन, धन से जो अपना

फ़र्ज समझ कर दूसरे का कल्याण चाहने वाला है, यानी सत् सेवा को धारण करके सेवक रूप होने का यत्न करता है, और एक प्रभु का पूर्ण विश्वासी होकर सत् उपदेश द्वारा प्रभु चिन्तन में बुद्धि को स्थिर करता है। ऐसा सदाचारी पुरुष अपने जीवन की उन्नति करने वाला, संगत और देश के वास्ते एक अधिक भूषण है। इस वास्ते अपने आचरण को पवित्र करते हुए तमाम संगत दूसरों की उन्नति में अपना जीवन पेश करे। ऐसी साधना ही सर्व काल आनन्द के देने वाली है, और जीवन की सार है। क्योंकि सर्व स्वरूप एक आत्मा ही है, और सर्व जीव शान्ति के चाहने वाले हैं। इस वास्ते सही समता के भाव को समझ कर अपने जीवन को पूर्ण निश्चय से ईश्वर परायण बनाकर दूसरों की सेवा करनी चाहिये। इस साधन से सामाजिक उन्नति, देश की जागृति और मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।

जब ऐसा निर्विकारी और परोपकारी जीवन दृढ़ हो जावे, तब जगत से वैराग को प्राप्त करके बुद्धि सत् स्मरण द्वारा परम पद आत्मा में लीन हो जाती है—जो अवस्था परम धाम है।

बचन २१. सार निर्णय यह है, कि जितना भी जो जीव आत्म निश्चय को प्राप्त होता है, उतना ही वह निर्मल त्याग कर सकता है, और त्याग से ही सर्व उन्नति का सूर्य प्रकाश करता है। इस वास्ते निर्मल समता के मार्ग को अनुभव करके देह परायणता का त्याग करते-करते आत्म निश्चय को दृढ़ करना चाहिये। यानी संसार में तुच्छ जीवन विचार करके अपनी जीवन यात्रा को निष्काम कर्म द्वारा शुद्ध करके अपनी कल्याण और तमाम जीवों की कल्याण का आधारी बनना चाहिये। यह ही मार्ग सत् पुरुषों का है, जो तमाम जीवों के वास्ते प्रकाश स्वरूप है।

बचन २२. जीवन में स्वार्थ की अधिकता ही अशान्ति का कारण है। इसलिए मानुष जीवन के वास्ते लाज़मी है, कि पहले निर्मल स्वार्थ

धारण करे और साथ ही परमार्थ का यत्न रखे। ऐसी धारणा जिस संगत में दृढ़ हो जावे, वह परम उन्नति को प्राप्त होती है, यह ही निश्चय देवताओं का जीवन है।

बचन २३. हर वक्त पवित्र विचार द्वारा जो संगत अपने संस्कारों को उच्च बनाने का यत्न करती है—यानी सर्व कल्याण के देने वाले भाव धारण करती है, उसको तमाम जमाने की गर्दिश भी नाश नहीं कर सकती है—बल्कि हर तरीका की मुसीबत को बरदाश्त करके एक दिन सूर्य से भी अधिक प्रकाश को प्राप्त होती है—यह ही ईश्वरीय नियम है।

बचन २४. जो गुणी लोग पवित्र विचार द्वारा मानुष जन्म की यात्रा में महा कार्य करने का प्रेम दृढ़ करते हैं, उनका निश्चय खुदबखुद ही कई कल्याण के रास्ते प्रगट करके उनका रहनमा होता है। सो महा-कार्य का मूल स्वरूप परोपकार ही है। परोपकार वह ही कर सकता है, जो पहले अपना स्वार्थ त्याग करके अपने आपके वास्ते उपकारी होवे। यह परम पवित्र निश्चय सर्व उन्नति के देने वाला है। जो मनुष्य या संगत अपनी मुकम्मिल उन्नति चाहे, वह ऐसी धारणा में दृढ़ होवे, तब ही सर्व जीवों की कल्याण का यत्न करते करते अपनी कल्याण भी हो जाती है, यानी परम शान्ति प्राप्त होती है।

बचन २५. मानसिक शान्ति ही परम लाभ है—जो इस जीव की वास्तव में चाहना है। मानसिक शान्ति शरीर के सुखों की मुनास्बत में त्याग करने से प्राप्त होती है। इस वास्ते सत् पुरुषों का जीवन सार यही है, कि अपने सुखों को दूसरों के दुखों में त्याग करना, और नित्य ही आत्म-चिन्तन जो परम सुख है—उसमें दृढ़ रहना। ऐसी पवित्र भावना वाला एक भी मनुष्य दुर्लभ है, और देश व धर्म के वास्ते सूर्य है। तमाम गुणी लोगों को ऐसा ही निश्चय दृढ़ करना चाहिये। यह ही मानुष जन्म का परम लाभ है। सब प्रेमी इस कल्याणकारी विचार को धारण करके अपने आपको नित्य ही पवित्र करें, और मानुष जन्म की

यात्रा में नित्य ही उत्तम कर्तव्य को पालन करते हुए इस जीवन को व्यतीत करें, जिससे सर्व सिद्धि यानी निर्भय शान्ति प्राप्त होवे, और दूसरे जीवों के वास्ते भी कल्याणकारी शिक्षा प्रकाश करे—यह ही मानुष जन्म की कीर्ति है। ईश्वर सत् भाव प्रकाश करे।

(ङ) शक्ति तत्व का निर्णय

१. शक्ति का पूर्ण निर्णय दो भेद में है, यानी संग शक्ति और असंग शक्ति में।

२. कर्ता, कर्म, कर्मफल, यानी पाँच तत्वों के मेल जोल से नाना प्रकार की सृष्टि प्रगट हो रही है—इसको संग शक्ति, यानी माया कहते हैं। और इन सब विकारों से निर्मल और सदैव काल एक रस रहने वाला परम तत्व अविनाशी स्वरूप जो आत्मा है, उसको असंग शक्ति यानी सर्व न्यारा और निराधार कहते हैं।

३. बुद्धि जब इन दोनों शक्तियों को पूर्ण अनुभव नहीं कर सकती है, तब तक निर्भय शान्ति अखण्ड विजय को प्राप्त नहीं हो सकती है। इस वास्ते संग और असंग के भेद को समझने की खातिर नित्य ही यथार्थ पुरुषार्थ धारण करना चाहिये।

४. असंग तत्व के अनुभव के बगैर संग शक्ति को सही स्वरूप में स्थापित करना अति कठिन है। इस वास्ते परम सिद्धि असंग शक्ति आत्मा की पहचान ही परम कल्याण का स्वरूप है।

५. संग शक्ति यानी तत्वों के विकारों से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि महा अवगुणों को बुद्धि स्वीकार करके नित्य ही संकट में भयभीत रहती है। और तुच्छ समय के अन्दर ही शरीर की नाश को प्राप्त होती है, और इस संसार से निराश ही जाती है, यह ही जीवन अन्धकारमयी पशु समान है।

६. असंग शक्ति, यानी एक आत्मा को अनुभव करने से बुद्धि निष्कामता, सत्यवाद, निरमानता, उदासीनता, निःचलता और परोपकार आदि महागुणों को प्राप्त होती है। तब ही संग शक्ति को यथार्थ स्वरूप में धारण करके जीवन में परम शान्ति को प्राप्त होती है, और दूसरों की भी सही कल्याण कर सकती है—यह ही स्थिति सत्पुरुषों की है।

बचन ७. शारीरिक उन्नति, सामाजिक उन्नति, देश उन्नति -यह सब संग शक्ति की ही अवस्था हैं। जब तक असंग तत्व परमेश्वर का परम विश्वास दृढ़ न होवे, तब तक निर्मल स्वरूप में इन तीनों अवस्थाओं की शुद्धि और उन्नति प्राप्त नहीं हो सकती है। इस वास्ते सर्व सिद्धि और सर्व शान्ति स्वरूप उस परम तत्व आत्मा का अनुरागी होना ही मानुष जीवन के वास्ते परम साधन है।

बचन ८. असंग तत्व के परायण होने से संग शक्ति पर बुद्धि ग़ालिब आ जाती है, तब समय के अनुकूल सही नीति को प्रगट करके अपने आप में, और तमाम मनुष्यों में निर्मल शान्ति को प्रकाश करती है। यह ही निर्मल कर्तव्य आत्मदर्शी या रोशन ज़मीर लोगों का है।

बचन ९. संग शक्ति को पूर्ण स्वरूप में एकत्र करना असंग तत्व की परायणता के बग़ैर ऐसा ही जानना चाहिये, जैसे कि जड़ के बग़ैर वृक्ष को खड़ा कर देना। तमाम प्रकृति, यानी मादे की ताक़तों को आत्म परायणता के बल से ही बुद्धि सही अमल में ला सकती है। इस निश्चय के बग़ैर, यानी विरोध स्वरूप को धारण करके नित्य ही हानि और भय को प्राप्त होती है—यह ही माया चक्र है।

बचन १०. जिस मनुष्य में, जिस समाज में, या जिस देश में आत्म परायणता के नियम अनुकूल मनुष्य विचरते हैं, यानी सही निष्कामता, निरमानता, सत्यवाद और परोपकार को धारण किये हुए परस्पर प्रेम से जीवन व्यतीत करते हैं--वह ही संग शक्ति के असली

प्रकाशक स्वरूप हैं, और मनुष्यों के आस्तिक पन यानी असंग शक्ति परायणता का सही सबूत देते हैं। उसके विरुद्ध दुराचारी, छलबाजी, अति मान, खुदग़र्ज़ी और वैर ईर्षा सहित जो मनुष्य या जो समाज, या जिस देश के आम मनुष्य इन अवगुणों को धारण किये हुए हैं, वह ही असली नास्तिक और अपने आप के नाशक और नित्य ही संगहीन होकर दूसरे शुद्ध आचारी मनुष्यों के सर्व काल आधीन रहते हैं, यह ही राजनैतिक चक्र है।

बचन ११. इस वास्ते जो मनुष्य, या जो समाज अपनी सही उन्नति करनी चाहे, उसके वास्ते लाज़मी यह ही है, कि अपने जीवन को सत् असूलों में दृढ़ करे—जो आत्म परायणता के अनुकूल हैं। तब ही संग शक्ति के अनुकूल बल से सर्व शान्ति और सर्व सिद्धि स्वरूप एकता, प्रेम, धैर्य को प्राप्त करके जीवन निर्भय हो सकता है।

बचन १२. जिस समय असंग शक्ति की अधिक परायणता अन्तर में दृढ़ हो जावे, और संग शक्ति के गुण और दोषों से नित्य ही निर्बन्ध अवस्था प्राप्त होवे, उस समय वह परम पुरुष तृष्णा की अग्नि से ठंडा होकर समता आनन्द निर्वाण पद को प्राप्त होता है, उसका जीवन पुरुषार्थ पूर्ण हुआ है।

बचन १३. सार निर्णय यह है, कि सर्व सिद्धि, सर्व शक्ति, पूर्ण शुद्धि और परम पुरुषार्थ, मानुष जीवन के वास्ते यह ही है, कि एक परम शक्ति जीवन स्वरूप आत्मा के विश्वास को धारण करके और नित्य ही मलीन वासनाओं को त्याग करके शुद्ध आचरण, शुद्ध विचार और परम अनुराग ईश्वर परायणता का दृढ़ करके सत् नियमों में अपने जीवन को लीन करे—यानी अपने अधिक स्वार्थ को त्याग करके नित्य ही निर्मल ईश्वर विश्वास और पर हित, परोपकार में निष्काम भाव से विचरे। ऐसा जीवन ही सर्व कल्याणकारी है।

बचन १४. ज्यों-ज्यों बुद्धि असंग तत्व आत्मा के परायण होती है, त्यों-त्यों संग शक्ति यानी कर्म फल द्वन्द्व से निर्मल होकर अपने

आप में पूर्ण हो जाती है, और शरीर के होते-होते सब ख़्वाहिशों पर काबू पा लेती है। और सर्व आनन्द स्वरूप आत्मा में लीन हो जाती है। यह ही अवस्था परम सिद्धि है।

बचन १५. इस साधन के उलट बुद्धि ज्यों-ज्यों संग शक्ति, यानी कर्म फल द्वन्द्व में आसक्त होती है, त्यों-त्यों अति मलीन वासनाओं को धारण करके अपने आपकी नाशक और दूसरों की भी नाशक हो जाती है—यह ही हालत असली जड़ता की है। इस वास्ते जीवन को मुनास्बत और मर्यादा में दृढ़ करना ही मानुषपन है। यानी आचार, विचार और मनोरथ नित्य ही आत्म परायणता अनुकूल शुद्ध होने चाहियें जिससे जीवन शान्ति से व्यतीत होवे और आइंदा सत् पद प्राप्त होवे। सब प्रेमी विचार करें और अपनी सही उन्नति करें।

—※—

(च) समता परम स्वराज

बचन १. पूर्ण शान्ति, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण स्थिति, पूर्ण खोज, पूर्ण पुरुषार्थ, पूर्ण शुद्धि और मानुष जन्म की पूर्ण अनुभवता परम आनन्द केवल समता ही है।

बचन २. जिस परम प्रकाश मयी अवस्था को अनुभव करके फिर किसी वस्तु की जरूरत नहीं रहती है, और किसी तहक़ीक़ात की भी जरूरत नहीं रहती है, ऐसी वासना रहित परम शुद्ध जीवन तत्त्व सर्वमयी एकता अचल अनादि स्वरूप शब्द की पहिचान ही सर्व पहिचान, जीवन की सार और परम स्वराज है, जो तमाम ख़्वाहिशों के बन्धन स निर्मल और आनन्द स्वरूप है।

वचन ३. हर एक मनुष्य को ऐसा निश्चय होना चाहिये कि अपनी शुद्धि से सर्व की शुद्धि होती है, अपने त्याग से दूसरों का उद्धार होता है। यानी अपने सुख को त्यागने से दूसरों को सुख मिलता है। अपने बन्धन को त्यागने से दूसरों को भी त्याग हासिल होता है। अपने निर्मल अनुभव से दूसरों को श्रद्धा और पवित्रता प्राप्त होती है। सार निर्णय यह है, कि तमाम प्रकृति जाल एक ही स्वरूप में विचर रहा है। सब की इन्द्रियाँ, सब का मन ख़्वाहिशात की अग्नि में जल रहा है, और अधिक से अधिक कोशिश करके ख़्वाहिशों को बढ़ा करके ज़्यादा से ज़्यादा हर एक जीव दुखी होता है, और समता आनन्द को इस ममता के घोर अन्धकार में पहिचान नहीं सकता है। और आखिर इस संसार

से निराशा होकर के ही शरीर को छोड़ता है—यह ही हालत असली जड़ता और मूर्खता की है।

बचन ४. इस ममता के अंधकार को दूर करने के वास्ते ही मानुष जन्म की केवल उच्चता है, ताकि इस जन्म में आकर समता स्वराज परम शान्ति को प्राप्त करके अपना जीवन कृतार्थ करे, और दूसरों के वास्ते भी परम उन्नति का आदर्श स्वरुप हो जावे।

बचन ५. जब तक आप पूर्ण आमिल नहीं होता, तब तक न अपनी सही कल्याण हो सकती है, और न ही दूसरों की। इस वास्ते अपने आपको पहले सुधारना ही सर्व कल्याण के देने वाला है। हर एक जीव अपने मानसिक दोषों को जानता है—मगर छुटकारा हासिल नहीं कर सकता है। ऐसी ही सब की हालत है। जिस गुणी पुरुष ने अपने दोषों को समझ कर निवृत्ति हासिल की है, वह ही सर्व का शिक्षक और सर्व का उद्धारक हो सकता है।

बचन ६. जब तक बुद्धि मन और इन्द्रियों पर पूर्ण ज़ब्त हासिल नहीं कर सकती है, तब तक समता आनन्द को प्राप्त नहीं हो सकती है। यानी इन्द्रियों और मन का ज़ब्त ही परम आज़ादी और परम शान्ति है। इसके उलट परम दुख और बन्धन दर बन्धन है।

बचन ७. जब तक बुद्धि अहंकार सहित है, तब तक अनेक प्रकार की वासना में गिरफ़्तार होकर मन और इन्द्रियों के भयानक विकारों में चलायमान रहती है, और अनेक प्रकार के यत्न करने पर भी निर्भय शान्ति को प्राप्त नहीं होती है—यह ही हालत परम दुख का स्वरूप है।

बचन ८. इस भयानक दुख से छूटने के वास्ते केवल एक उपाय यह ही है, कि सही कोशिश करके, सही भावना करके मन और इन्द्रियों के विकारों से बुद्धि को जब असंगता प्राप्त हो जावे, तब ही समता आनन्द निर्द्वन्द्व अकर्म पद अविनाशी शब्द को पहिचान करके परम आनन्द स्वरूप हो जाती है, यह ही हालत असली स्वराज है।

बचन ९. बुद्धि को अहंकार की मलीनता (मैल) से शुद्ध करना ही परम शुद्धि और शान्ति के देने वाला पुरुषार्थ है। इस वास्ते सत् पुरुषों की सीख द्वारा अपने आपकी उन्नति करनी ही मनुष्य का परम कर्तव्य है।

बचन १०. इन्द्रियों के भोगों में मुनास्बत धारण करनी, यानी शुद्धाचारी होना और मन को अनर्थक कल्पना से रोकना और श्रद्धावान होकर प्रभु आज्ञा में अपने आपको निःचल करना ही परम शुद्धि के देने वाला निश्चय है।

११. सार निर्णय यह है, कि एक आत्मतत्व जीवन स्वरूप का पूर्ण विश्वासी होना और उसकी आज्ञा में सब कर्म के फल को त्यागना और सत् शिक्षा द्वारा दृढ़ निश्चय से उस परम तत्व का अन्तर में चिन्तन करना, और इस संसार की नाशवान् हालत को दृढ़ प्रतीत करके एक अविनाशी पुरुष का ही परम आश्रय रखना, और तमाम जीवों की सेवा में अपना तन-मन-धन तक निष्काम भाव से त्याग करना, नित्य ही निर्मान और निष्काम भाव अन्तर में दृढ़ करना—ऐसी अनन्य भक्ति को जब बुद्धि प्राप्त होती है, तब ही कर्तापन अंधकार मूल संसार से निर्मल होकर निःकर्म स्वरूप समता प्रकाश में लीन हो जाती है। यह ही असली सार धाम है। यानी बुद्धि पाँच भूत प्रकृति के जाल से विलग परम तत्व को अनुभव करके नित्य ही तृप्त को प्राप्त होती है।

बचन १२. जब बुद्धि कर्तापन से निर्मल हो जाती है, तब मन और इन्द्रियों की क्रीड़ा से नित्य ही असंग रहती है। और अपने आप में सर्व काल अकल्प और सावधान रहती है—यह ही परम जीवन है। जिसको ऐसी स्थिति प्राप्त हुई है, वह ही परम स्वराज्य के जानने वाला है। यानी इस माया के महा अंधकार स्वरूप बन्धन से निर्मल होकर सर्व काल के वास्ते निर्भय पद को प्राप्त हुआ है। उसका निर्मल यत्न दूसरों को असली जीवन देने वाला है।

१३. ऐसी समता स्वराज की अवस्था को हासिल करने के वास्ते नित्य ही अपने मानसिक दोषों की निवृत्ति करनी चाहिये, नित्य ही दूसरों का उपकार करना चाहिये, नित्य ही अभिमान स्वरूप परम शत्रु से छुटकारा हासिल करना चाहिये और अपने जीवन को सर्व काल ईश्वर परायण बनाना चाहिये। दुख व सुख में निःचल रहना चाहिये, सर्व सिद्धि और सर्व शान्ति के देने वाली प्रभु भक्ति को धारण करके इस तृष्णा रूपी परम दुख से छूट करके सर्व आधारी तत्व आत्म स्वरूप समता को बोध कर लेना चाहिये।

१४. ऐसा परम यत्न जिस गुणी पुरुष ने धारण किया है, उसके पवित्र आचरण, पवित्र स्थिति, पवित्र अनुभवता और सत् अनुराग के बल से अनन्त जीवों की कल्याण होती है। वह ही सत् पुरुष है, और सर्व ज्ञात अवस्था को प्राप्त हुआ है। उसका बचन और संगत कल्याण के देने वाले हैं - ऐसा निश्चय होना चाहिये।

१५. अपने जीवन की सही उन्नति का सबको बोध होना चाहिये—जिससे इस तुच्छ जीवन में सत् पद की प्राप्ति का यत्न धारण करके महा अंधकार भ्रम रूप अधिक तृष्णा से छुटकारा हासिल होवे, और अपने-अपने निर्मल आचरण में स्थित होकर परस्पर प्रम स्वरूप से जीवन व्यतीत करें—यह ही मानुष जन्म की कीर्ति और मानुषपन (मनुष्यता) है।

—※—

(क) नित्य का जीवन, नित्य की शान्ति, नित्य का स्वराज केवल समता ही है।

१. ख़्वाहे राजा हो ख़्वाहे भिखारी, ख़्वाह धनी हो, ख़्वाह दरिद्री, ख़्वाहे हकूमत शख्सी हो ख़्वाहे जम्हूरी सब हालत में ममता यानी खुदगर्ज़ी की मजबूरी से अपनी उन्नति और दूसरे की हानि को जरूरी जीव विचार करता है—जिससे असली शान्ति या इतमीनान हासिल नहीं कर सकता है। आखिर इस दुनिया से प्यासा और निरासा ही जाता है। यानी सब कोशिश करते हुए भी असली ज़िन्दगी की तसल्ली हासिल नहीं हो सकती है।

२. मादे यानी तत्त्वों की तहक़ीक़ात अगर गहरी से गहरी भी की जाये, तो असली तसल्ली नहीं होती, जब तक रूहानी ज़िन्दगी यानी जीवन शक्ति की तहक़ीक़ात न की जावे—जो असली स्वरूप समता का है।

३. किसी क़ौम और मुल्क की दायमी तरक्की महज़ मानसिक ख़्वाहिशात यानी जरूरियाते ज़िन्दगी को निहायत बढ़ाने से क़ायम नहीं रहती है—जब तक कि त्याग स्वरूप रूहानी ज़िन्दगी की साथ-साथ तहक़ीक़ात न की जावे। जरूरियाते ज़िन्दगी की ज़यादती अक्सर तबाही ही कर देती है—यह दृढ़ निश्चय होना चाहिये।

४. जीव की असली ख़्वाहिश समता यानी हर हालत में एकता की प्राप्ति ही है। मगर ख़्वाहिशात की गुलामी से शारीरिक मद, सामाजिक मद, देश मद, में गिरफ़्तार होकर यानी अति मोह वश होकर अन्दरूनी भाव से अपना भी नाशक और दूसरों का भी नाशक हो जाता है, और आखिर

अशांति ही अशांति को अनुभव करके शरीर को छोड़ता है, और पूर्ण तसल्ली को प्राप्त नहीं होता है। यह तमाम कोशिश जीवन यात्रा को नामुकम्मिल ही कर देने वाली होती हैं। इस वास्ते ज़िन्दगी के सही मक़सद को विचार करके हर वक्त समता प्राप्ति का यत्न करना चाहिये—जो कि हर हालत में जीव को शाँतिऔर सही शारीरिक, सामाजिक और देश उन्नति के देने वाली है।

५. समता का पूर्ण बोध बड़े शुद्धाचरण और निहायत एकाग्र बुद्धि से होता है। इस वास्ते हर वक्त ख़्वाहिशात की अग्नि को दुनियाँ की नापायदारी के समझते हुए, सत् स्वरूप की प्राप्ति के अनुराग से बुझाना चाहिये तब ही अज्ञान अंधकार की निवृति होकर अंतर में समता ज्ञान आत्म प्रकाश होता है—जो इसका वास्तविक स्वरूप है।

बचन ६. कर्म में अकर्मता, संग में असंगता, अल्पज्ञ में सर्वज्ञता, आकार में निराकार, काल में अकाल, कल्पना में अकल्पित, भय में निर्भयपन, अनेक में एक, स्वार्थ में परमार्थ, द्वन्द्व में समभाव, वासना में निर्वास और पाँच तत्वों के शरीर में जीवन शक्ति को जब बुद्धि अनुभव कर लेती है, तब पूर्ण निर्भय शान्ति को प्राप्त होती है। यानी अहंकार की मलिन को त्याग करके सर्व कल्याण स्वरूप को प्राप्त होती है। ऐसी सर्व प्रिय, सर्व उदारता, सर्व अनुभवता और सर्व अलेपता जीवन स्वरूप योग आरूढ़ अवस्था को पहचान करके समता आनन्द में लीन हो जाती है। यह ही तहक़ीक़ात इस नाशवान् संसार में हर एक जीव को करनी चाहिये—जिससे मानुष जन्म की इन्तहाई उच्चता का बोध प्राप्त होवे।

बचन ७. इस जीवन मार्ग में समता व ममता दो अवस्थाएँ बुद्धि की हैं, यानी अधिक शारीरिक मद से ममता का जाल बढ़ता है, और आत्म परायण होने से समता की रोशनी बढ़ती है। ममता के जाल को ही अज्ञान और काल स्वरूप माना गया है। जब बुद्धि में शारीरिक मोह की अधिक जड़ता आ जाती है, तब बड़े-बड़े अनार्थक

तमोगुणी कर्म करके अति दुख को प्राप्त होती है। ऐसे ही प्रकृति के चक्र में तमाम जीव भरमते हैं।

बचन ८. जब शारीरिक ममता अधिक बढ़ जाती है, तब तमाम जीव अधिक वासना की गिरफ्तारी में आकर एक दूसरे के नाशक हो जाते हैं। यह ही दशा भयानक तबदीली के प्रगट करने वाली होती है। मानुष जन्म में आकर इन ही जीवन के भेदों को जानना, और फिर सत् यत्न करना ही सर्व कल्याणकारी है।

बचन ९. स्वभाव से बुद्धि शारीरिक ममता में गिरफ्तार है, और शारीरिक भोगों की अति आसक्ति में आकर नित्य ही प्रतिकूल कर्म करती है। तब अपने आपके वास्ते और दूसरों के वास्ते अति खेद रूप हो जाती है। यह ही अज्ञानमय जीवन सर्वकाल संकट के देने वाला है। ऐसा विचार करके जिसने नित्य ही सत्य परायणता हासिल करने का यत्न धारण किया है, वह ही समता रूपी सर्व शान्ति को प्राप्त होता है।

बचन १०. तमाम शरीर धारी अपने अपने मानसिक दोषों के बाँधे हुए संसार में अनुकूल और प्रतिकूल विचरते हैं। यानी जब सत्य परायण होकर विचरना होता है, तब सर्व शान्ति का मार्ग त्याग, वैराग, एकता, प्रेम, सेवा, सत्य, शील, संतोष आदि देव गुण बुद्धि धारण करके नित्य कल्याण के प्राप्त करने का यत्न करती है— ऐसा बोध और यत्न ही निर्बन्धन स्वरूप समता स्वराज है। जिस गुणी पुरुष को ऐसा प्रयत्न प्राप्त हुआ है, वह ही त्रिगुणी माया से छूट कर नित्य निर्वाण शान्ति को प्राप्त होता है।

बचन ११. इसके उलट जब देह मद में अति आसक्त होकर जीव विचरते हैं, तब निहायत अंधकार के मार्ग को प्राप्त होते हैं। यानी शारीरिक भोगों में अति लीन होकर झूठ, चोरी, कपट, छल, ईर्षा, द्वेष, अति लोभ, अति मोह, अति काम, अति क्रोध और अति अहंकार में लवलीन

होकर तमाम जीव शान्ति को नाश कर देते हैं। यानी शारीरिक और मानसिक दोषों में हर वक्त जलते रहते हैं। यह असुर गुण ही काल रूप हैं। और जीवों को अधिक भय के देने वाले हैं। इस वास्ते जीवन यात्रा को सत्य अनुकूल चलाना ही मानुष जन्म की सार है।

बचन १२. इस अद्भुत प्रकृति के बन्धन में तमाम जीव मजबूरी से अपनी नाश और दुख की तरफ दौड़ रहे हैं, इसके उलट और दुख रूप यत्न से छूटने का मार्ग केवल सत्य परायणता ही है। यानी यथार्थ स्वरूप से जीवन का भाव समझ कर नित्य ही मानसिक और शारीरिक विकारों को त्याग करके केवल सत्य परायण होकर निश्काम भाव से परोपकार में विचरना ही परम स्वराज समता अखण्ड शान्ति के देने वाला पुरुषार्थ है। तमाम मनुष्यों के वास्ते यह ही अधिकार है, कि अपनी अपनी यथार्थ कल्याण सत्य, त्याग और सेवा के मार्ग में दृढ़ होकर करनी चाहिये। तब ही सर्व शान्ति निर्बन्धन और निर्भय पद स्वराज को प्राप्त होना हो सकता है। जो मनुष्य ममता के अंधकार और बन्धन से न्यारा होकर नित्य ही सत्य परायण धारणा से निष्काम कर्म में विचरता है, वह ही परम शूरवीर सर्व विजय समता को धारण करने वाला महाज्ञानी परम स्वराज के भेद को जानने वाला है।

बचन १३. जो मनुष्य इस समता के निर्मल धाम यानी मुसावाते रूहानी की प्राप्ति की खातिर ज्यों-ज्यों अपने आपका सुधार और निर्मल त्याग हासिल करता है, त्यों-त्यों शारीरिक उन्नति, सामाजिक उन्नति और देश की उन्नति उसके पवित्र आचरण और निर्मल परोपकार से खुद-बखुद ही होती जाती है। उस ही महापुरुष ने अपने आप पर और तमाम दुनियाँ पर जीत पाई है, और इस नाशवान् संसार से पूर्ण आशावादी होकर आनन्द स्वरूप समता को प्राप्त करके चला है— उसका आदर्श जीवन सबको शान्ति के देने वाला है। और यह ही

उच्च कर्तव्य सब सत्पुरुषों का है। हर एक प्रेमी को विचार करना चाहिये और इस निर्मल धाम की प्राप्ति का निश्चय रखते हुए अपनी उन्नति और दूसरों की उन्नति निष्काम भाव से करनी चाहिये। यह ही मानुष ज़िन्दगी का परम उत्तम कर्तव्य है। ईश्वर सब को सत्य बोध, नित्य का जीवन और एकता प्रेम बख़्शे।

(ख) निर्मल जीवन रक्षा

बचन १. यह जीव असली शान्ति की खातिर शरीर की अन्दरूनी और बैरूनी रक्षा करने की खातिर बड़े-बड़े तरीके और सामान एकत्र करता है, और बड़ी जद्दोजहद में दिन-रात रहता है। ऐसा करने के बावजूद भी एक लम्ह भर निर्भय नहीं हो सकता है—यह ही दौड़ संसार का रूप है। शरीर जो समय पर नाश होने वाली चीज़ है—इसकी जितनी भी अन्दरूनी या बैरूनी रक्षा की जाए—आखिर यह समय पर नाश हो ही जाता है। शरीर की अन्दरूनी रक्षा का सार यह है, कि नाना प्रकार के पुष्टि पदार्थ स्वीकार करने। और बैरूनी रक्षा—हर एक तरीके की बैरूनी तकलीफात से जो शरीर को बचाना है—यह बैरूनी रक्षा है। ऐसे यत्न-प्रयत्न में सब जीव ही दिन-रात लगे रहते हैं। यह ही काल-चक्र का बन्धन है।

बचन २. सत्पुरुषों ने इस निरार्थक यत्न का विचार करते हुए कि जीव अशान्ति में हर वक्त भयभीत रहता है, इस संकट से निर्बन्धन होना कैसे हो सकता है, सार निर्णय निर्भय पद का यह अनुभव किया, कि शरीर की रक्षा से ज़्यादा बुद्धि और मन की रक्षा करनी शान्ति के देने वाला यत्न है। शरीर की रक्षा तो सहज स्वभाव अन्दरूनी व बैरूनी हो ही रही है—जितनी कि लाज़मी है। यानी अन्न, पानी, वस्त्र, सर्दी, गर्मी वगैरा का सही इस्तेमाल ऐसा भी रक्षा का यत्न करते-करते शरीर एक दिन नाश को प्राप्त हो जाएगा—यह शारीरिक जीवन है।

बचन ३. मन, बुद्धि की रक्षा का जो सार साधन सत्पुरुषों ने अनुभव किया, वह यह है कि बुद्धि किसी तरह वासना की अग्नि से

ठंडी हो जाए। सो ऐसा निर्मल भाव विचार करके नित्य ही बुद्धि की निःचलता सत् स्वरूप आत्मा में दृढ़ करते रहते हैं—यानी आत्मा जो जीवन रूप है, वह ही निर्वास है, नित्य है, आनन्द है, परिपूर्ण है, और सर्वव्यापक है—ऐसे उस परम प्रकाशमय अविनाशी शब्द में ज्यों-ज्यों बुद्धि स्थिर होती है, त्यों-त्यों शरीर की अन्दरूनी और बैरूनी रक्षा के बन्धन से निर्बन्ध होती जाती है। यानी सहज स्वभाव ही शरीर में विचरती हुई दुख-सुख में समान रूप धारण करके हर वक्त अविनाशी तत्व में लीन रहती है। यही हालत असली रक्षा और निर्भयपन है। यानी बुद्धि शरीर की रक्षा में निर्लोभ, निर्मोह निर्मान होकर नित्य ही अन्तर विषय सत् स्वरूप अखण्ड नाद में निःचलता धारण करती है—यह ही स्थिति निर्भय पद निर्वाण है—जहाँ काल कर्म के भय का अभाव हो जाता है।

वचन ४. इसके उलट जितना भी यत्न सत् स्वरूप आत्मा के आधारक निश्चय के बगैर, यानी महज़ अभिमान वश होकर शरीर की अन्दरूनी या बैरूनी रक्षा का अधिक से अधिक किया जावे, और नाना प्रकार के शारीरिक भोग द्रव्य प्राप्त करके भोगे जाएँ, और बैरूनी रक्षा के भी कई किस्म के ऐसे सामान बनाए जाएँ, जिनसे सब मुतीह हो जाएँ, या सबका नाश हो जाए और एक अपना ही शरीर कान्ति-मय बना रहे। यहाँ तक अगर रक्षा का प्रबन्ध कर भी लेवे, तो भी समय पर इतने सामान होते हुए भी शरीर नाश को प्राप्त हो जाता है और जीव को अत्यन्त पश्चात्ताप होता है—ऐसी संसार की यात्रा का विचार करना परम जिज्ञासु का धर्म है।

वचन ५. मर्यादा के बगैर जितनी भी शारीरिक रक्षा की जाए उतना ही जल्दी शरीर नाश को प्राप्त हो जाता है। ऐसे ही एक शरीर—या अनेक शरीर—सामाजिक बल या राज बल में जितनी भी सत्ता को छोड़ कर महज़ लोभ और मान में गिरफ़्तार होकर रक्षा का प्रबन्ध किया जावे—उतना ही वह अनीति अनुकूल यत्न जल्दी नाश के

करने वाला होता है। इस वास्ते सत् नियम अनुकूल यत्न शारीरिक उन्नति, सामाजिक उन्नति और देश की उन्नति के वास्ते चिरकाल तक कल्याणकारी है। गो समय पर जाकर यह भी उन्नति अपना-अपना स्वरूप तब्दील कर देती है, क्योंकि ईश्वर की माया का यह नियम है। केवल सत् स्वरूप एक आत्मा ही है—यह निश्चय होना चाहिये।

बचन ६. ऐसा निर्मल विचार धारण करके सत् जिज्ञासु का परम धर्म है, कि मानुष जन्म में आकर केवल आत्म स्वरूप में निःचलता हासिल करते हुए अपने शरीर तथा दूसरे जीवों के सम्बन्ध में सहज स्वभाव से विचरे यह ही असली निर्भय और परम शान्ति के देने वाला मार्ग है। असली निर्भय होना तो तब ही हो सकता है, कि जब जीव को किसी क़िस्म की भी वासना खेद के देने वाली न हो। ऐसी परम उच्च अवस्था बड़े अनुकूल यत्न-प्रयत्न से प्राप्त होती है—यह ही स्थिति परम पद निर्वाण है।

बचन ७. सार यह है कि जितना-जितना वासना का त्याग अन्तर में प्राप्त होता है, उतना ही उतना अन्दरूनी और बैरूनी रूप में आनन्द प्राप्त होता जाता है। यानी वासना की अधिकता असली नाश और भय के देने वाली है—और परम पाप रूप है। वासना की निवृत्ति असली शान्ति और निर्भयपन के देने वाली है, और परम धर्म है। जितना भी जीव आत्म परायणता को दृढ़ करता है, उतना ही वासना के विकार से निर्मल होकर संतोषवान हो जाता है। इस वास्ते मानुष जीवन में परम धर्म यह ही है कि एक परम पुरुष आत्मस्वरूप परमेश्वर में दृढ़ निश्चय, दृढ़ अनुराग और प्राप्ति का दृढ़ यत्न होना चाहिये, जिससे निर्वाण स्वरूप निर्भयपद प्राप्त होवे—यह ही असली आस्तिक-पन है।

८. इसके उलट जो जीव मोह और मान वश होकर महज़ शरीर के भोगों के परायण होकर नाना प्रकार के दिन-रात यत्न करते हैं, और अति मलीन से मलीन शरीर द्वारा कर्म करते हैं, वह अति भयानक

तृष्णा के वेग में लम्हे ब लम्हे जलते रहते हैं—और किसी हालत में भी उनको सत्य शान्ति प्राप्त नहीं होती है—यह ही जीवन परम नरक स्वरूप है।

बचन ९. निर्णय है, कि वासना का अधिक बढ़ाना असली परम दुख है, और वासना से निवृत्त होना ही असली शान्ति और धर्म है। निर्वास स्वरूप केवल एक आत्मा है, और तमाम संसार वासना का ही जाल है—ऐसा ही निर्णय विचार करके अपने जीवन के जो सही रक्षक बनना चाहते हैं, वह इस वासना की निवृत्ति का यत्न करें, और आत्म परायणता में दृढ़ता धारण करें—यह ही निश्चय असली कल्याण के देने वला है।

बचन १० बुद्धि जब निर्मल भावना से आत्म परायणता को प्राप्त होती है, तब जितना मन और इन्द्रियों का कल्पित संसार है, इससे उपरम हो जाती है। क्योंकि सब नाश होने वाला उसी वक्त उसको प्रतीत होता है, और एक साक्षी भूत आत्मा अविनाशी और निर्भय जानकर अनन्य भक्ति करके उसमें लीन हो जाती है—यह ही मानुष जन्म में भक्ति ज्ञान का सार साधन है। सत पुरुषों की संगत द्वारा सत् जिज्ञासु नित्य ही आत्म परायणता को दृढ़ करे, और देह के मद को त्याग करे। ऐसे निर्मल भक्ति और प्रेम के योग से बुद्धि वासना अंधकार से निर्मल होकर चेतन प्रकाश आत्मा में लीन हो जाती है—यह ही यत्न परम रक्षा और परम आनन्द स्वरूप है, जो बार-बार जीव को जन्म, मरण और वासना के अंधकार से छुटकारा देता है—ऐसी निर्मल साधना मानुष जीवन के वास्ते परम धर्म है। नहीं तो वैसे सब योनियों में जीव वासना की अग्नि में तप रहे हैं। इससे छुटकारा केवल मानुष शरीर में अनुकूल यत्न से ही प्राप्त हो सकता है—यह ही मानुष जन्म की और योनियों से उच्चता है।

बचन ११. सबसे पहले अति मलीन वासना का सत्संग द्वारा त्याग करना चाहिये और सत् जीवन विचार को दृढ़

करके धारण करना चाहिये। इससे बुद्धि बलवान होकर आत्म परायणता में दृढ़ होती है। और देह मद का राग त्याग करती जाती है। जितनी वासना निर्मल होती है, उतना ही शारीरिक कर्म निर्मल होता है। जितना कर्म निर्मल होता है, उतना ही संतोष प्राप्त होता है। ऐसा विचार समझकर नित्य ही इस वासना की निवृत्ति करनी चाहिये। और सत् स्वरूप का निर्मल अभ्यासी और निध्यासी होना चाहिये। यह ही यत्न परम पद, निर्वास, निर्वाण शान्ति के देने वाला है, और तमाम सत्पुरुषों का यह ही जीवन आदर्श है।

बचन १२. सब गुणी इस सत् विचार को पूर्ण अनुभव कर के अपने सही रचक बनें, जिसका फल शरीर के नाश होने पर भी अखण्ड शान्ति स्वरूप बना रहे। चूँकि शरीर का विनाश होना निश्चय है, और जीव को सत् शान्ति प्राप्ति के बग़ैर परम दुख यानी नित्य तबदीली से छुटकारा भी मुश्किल है। इस वास्ते सत् विचार, सत् विश्वास और सत् निध्यास द्वारा अपने आपको नित्य ही पवित्र करना चाहिये—यह ही मानुष जीवन का परम उच्च कर्तव्य है। ईश्वर नित्य कल्याणकारी भावना बख़्शे।

(ग) निर्णय निःकर्म सिद्धि

अहिंसावाद

बचन १. जीवन यात्रा में हर एक जीव कुछ-न-कुछ मनोरथ धारण करके सूक्ष्म वृत्ति द्वारा और प्रत्यक्ष रूप में यत्न करता ही रहता है, मगर निर्मल शान्ति को प्राप्त नहीं होता है। ऐसे ही तमाम शारीरिक अवस्था को भोग करके अन्त को अशान्त ही इस संसार से जाता है। यह ही संसार का खेदयुक्त जीवन है। बग़ैर सत् यत्न और सत् निध्यासन के कोई भी इस खेद से निर्बन्धन होकर निःकर्म सिद्धि यानी अहिंसावाद स्थिति को प्राप्त नहीं हो सकता है।

बचन २. ज्ञान इन्द्रियों और कर्म इन्द्रियों संयुक्त जो आकार स्वरूप शरीर बना हुआ है, इस में बुद्धि हर वक्त सूक्ष्म भाव से और स्थूल भाव से कर्मों के भोग में आसक्त रहती है। यानी ग्रहण और त्याग के चक्र में निमिष २ में अधिक राग और द्वेष जो कर्म फल द्वन्द्व स्वरूप है—उसको धारण करती रहती है। और अन्तर से अधिक अशान्त रहती है। यह ही अद्भुत माया का बन्धन है, जिससे एक पलक भी छूट पाना अति दुर्लभ है।

बचन ३. कर्म सागर रूप देह का आकार है, और पलक-पलक विषय कर्म तबदीली में रहते हुए नाना प्रकार के कर्म फल द्वन्द्व स्वरूप को प्रगट और लीन करते हैं। यह ही सूक्ष्म स्वरूप में उत्पत्ति और प्रलय का खेल है। बुद्धि हर वक्त अति मोह वश होकर इस कर्म फल द्वन्द्व में आसक्त हो कर ग्रहण और त्याग के बन्धन में रचक भाव और नाशक भाव को विचार करती हुई नाशक भाव के उलट और रचक

भाव के अनुकूल यत्न में प्रवीण रहती है—यह ही जीवन का यत्न प्रयत्न है, जिसमें तमाम देह धारी मजबूर होकर विचर रहे हैं। मगर समय पर रक्षा का यत्न करते-करते भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं—यह ही काल चक्र है।

बचन ४. ऐसे कर्म फल द्वन्द्व के अद्भुत चक्र से छुटकारा हासिल करना ही निःकर्म सिद्धि अहिंसावाद यानी निःखेद स्थिति है, जो परम वैराग और सत्याग्रह के बल से प्राप्त होती है। वह ही सत् पुरुष है, जो आन्तरिक खेद को निवारण करने की खातिर नित्य सत्यपरायण होने का यत्न करता है।

बचन ५. जो कर्म संयुक्त देह आकार है। वह तबदील होने वाला है। इस वास्ते इसको असत्य और भ्रम स्वरूप कहते हैं। इसके उलट जो सत् प्रकाश निःकर्म स्वरूप अनादि शब्द अखण्ड आत्मा है वह ही सत्य है, और तमाम विश्व का आधार है। इस वास्ते उस परम तत्त्व के परायण होना ही मानुष जीवन की कल्याण और उच्चता है।

बचन ६. सत्याग्रह को धारण करना यानी एक उसी परम तत्त्व के दृढ़ परायण होना और शारीरिक कर्म फल द्वन्द्व के मोह से बुद्धि को पलक-पलक विखे निर्मल करना, तमाम शारीरिक सुखों को दुसरे जीवों के निमित्त निष्काम भाव से समर्पण करना ही परम सत्याग्रह है। जिसके बल से बुद्धि कर्म फल द्वन्द्व हिंसावाद से मुक्त होकर निःकर्म स्वरूप अहिंसा आनन्द निर्वाण को प्राप्त होती है—यह ही अवस्था परम धाम है।

बचन ७. जब तक बुद्धि कर्म फल द्वन्द्व के खेद में प्रिय और अप्रिय पदार्थों के संयोग से चलायमान होती रहती है, तब तक अहिंसक स्वरूप अविनाशी आत्मा को अनुभव नहीं कर सकती है, और न ही पूर्ण निर्भय अवस्था को प्राप्त होती है। यानी नित्य ही द्वन्द्व के बंधन में आसक्त होकर कर्म के ग्रहण और त्याग के चक्र में चलायमान होती रहती है, और इस परम दुःख से छुटकारा हासिल नहीं कर सकती है।

बचन ८. ऐसे खेद युक्त जीवन का विचार करके नित्य ही सत्य-परायण होना चाहिये। यानी शारीरिक कर्म का बंधन तो जीव को जन्म से ही है। इसमें शान्ति तो रंचक मात्र नहीं है। सिर्फ भ्रम से ही कर्म फल द्वंद्व में शाँति प्रतीत हो रही है। ऐसे मन्द निश्चय से ही अंधकार दर अंधकार की तरफ तमाम जीव दौड़ रहे हैं। यानी वासना के अधिक जाल को फैला कर अति दुखित हो रहे हैं।

बचन ९. कर्म फल द्वंद्व रूपी आसक्ति से वासना का जाल बढ़ता है, और वासना के जाल से जीव अपना बधिक और दूसरों का भी बधिक होता जाता है, और ऐसे अनर्थक भयानक कर्म करता है जिससे अधिक दुखित और अशाँत रहता है। यह ही अज्ञानमय जीवन असुर स्वरूप है।

बचन १०. कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति से छुटकारा हासिल करना ही परम शूरवीरता है। मगर शरीर—जो कर्म का ही सागर है—इसके परायण होने से बुद्धि कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति से जो हिंसा रूपी महा ताप का मूल है कभी भी निर्बंधन नहीं हो सकती है। जब तक कि निःकर्म स्वरूप अहिंसक अचल अविनाशी स्वरूप की परायण न होवे।

बचन ११. जब बुद्धि शरीर की परायणता को छोड़कर एक आत्म स्वरूप के परायण होती है और तमाम शरीर के भोगों से वैराग्यवान् होकर नित्य ही अपने आपको आत्म शब्द में निःचल करती है, और शारीरिक सुख दूसरे जीवों के परम हित में नित्य ही त्याग करती है। तब ही हिंसा मद से निर्बन्धन हो कर अहिंसा शुद्ध स्वरूप आत्म शान्ति को प्राप्त होती है—यह ही अवस्था परम सुख है।

बचन १२. सत्याग्रह के दृढ़ करने से यानी एक आत्मा के परायण होने से देह परायणता जो भयानक दुःख द्वन्द्व स्वरूप है, इससे बुद्धि को छुटकारा हासिल होता है। तब निःकर्म स्वरूप निष्पाप अवस्था अविनाशी शब्द को सर्व में प्रकाशक हुआ सर्व अन्तर अनुभव करती है। ऐसे प्रेममय सर्व स्वरूप निःकर्म शब्द में जब बुद्धि अन्तर में निःचल

होती है तब ही पूर्ण अहिंसा के पद को प्राप्त होती है यानी निःखेद, निर्वास अवस्था में लीन हो जाती है।

बचन १३. शरीर की दृढ़ परायणता से ही अधिक वासना के जाल में बुद्धि चंचल होकर नित्य ही कर्म इन्द्रियों और ज्ञान इन्द्रियों द्वारा अपनी शान्ति और दूसरे जीवों की शान्ति को हरण करती है। यानी पूर्ण हिंसक रूप को धारण करती है, और सदैव काल भयभीत रहती है—यह ही जवीन पशु समान है।

बचन १४. शरीर की अधिक ममता ही काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार आदि वासना के भयानक जाल को फैलाती है, और इन्द्रियों द्वारा वासना को पूर्ण करने की खातिर बुद्धि हर वक्त इन्द्रियों के भोगों में आसक्त रहती है। यानी ममता को धारण करके अपनी शान्ति और दूसरे जीवों की शान्ति की बधिक हो जाती है। यह ही भयानक दुःख स्वरूप संसार है।

बचन १५. शरीर की ममता को त्याग करके जब बुद्धि केवल सत् स्वरूप के दृढ़ परायण होती है, और अनन्य भाव से सत् नाम का चिन्तन करती है, तब वासना रूपी महा अंधकार से पवित्र हो कर इन्द्रियों के भोगों की द्वन्द्व स्वरूप आसक्ति से निर्बन्धन हो जाती है। यानी नित्य ही निःकर्म स्वरूप आत्मा में निःचल होकर अपनी रक्षक और तमाम जीवों की पूर्ण रक्षक होती है—ऐसी स्थिति को जो पुरुष प्राप्त होवे, वह ही पूर्ण अहिंसावादी है। यानी निःखेद होकर सर्व जीवों के खेद हरण करता है, और निर्मल स्वरूप से सर्व जीवों का रक्षक होता है। वह ही शान्ति का सागर तत्त्व ज्ञानी जगत् गुरु है।

बचन १६. शरीर की ममता जो हिंसक भाव में बुद्धि को गिरफ्तार करती है और नाना प्रकार के खेद युक्त कर्म इन्द्रियों द्वारा कराती है, और नित्य ही तीन तापों को प्रगट करके परम अशान्ति को प्रकाशती है। ऐसी महा अविद्या की जड़ को त्यागना ही मानुष जीवन का परम कर्तव्य है। यानी सत् पुरुषों की संगत द्वारा शरीर की ममता को त्याग

करके निर्मल भाव से सत्य परायण होना ही जीवन की सही रचा है। जो गुणी पुरुष ऐसी साधना में विचरता है, वह ही अहिंसावादी है।

बचन १७. सत्याग्रह यानी एक आत्मा के परायण होकर नित्य ही तमाम शरीर के स्वार्थ से निर्बन्धन होना और सत्य चिन्तन में मन और बुद्धि को एकाग्र करना, इन्द्रियों के भोगों से निरासक्त होना— यह ही परम तप और अहिंसावाद है। यानी निर्मल जीवन रचक स्वरूप है।

बचन १८. शारीरिक कामना ही तमाम प्रकार के हिंसकपन को प्रगट करती है, और पूर्ण नाश स्वरूप है। इस वास्ते शारीरिक कामना की शुद्धि को धारण करके नित्य ही सत् स्वरूप के परायण होना और नित्य सत् चिन्तन करना ही परम पवित्रता निःकर्म अहिंसक पद अविनाशी शब्द की प्राप्ति के देने वाला यत्न है।

बचन १९. नित्य ही सत्य परायण होकर अपने मानसिक खेद को दूर करना, औा सत् निध्यासन में मन, बुद्धि और शरीर की तमाम शक्ति को त्याग करना ही परम कल्याणकारी योग है। ऐसे नित्य के साधन से बुद्धि शारीरिक कामना से पवित्र होकर सत् स्वरूप शब्द में अन्तर दृढ़ होती है और सर्व रचा के धाम को प्राप्त होती है।

बचन २०. कर्म स्वरूप शरीर आकार से निर्बन्धन होकर निःकर्म स्वरूप अखण्ड शब्द में जब बुद्धि निःचल हो जाती है, तब ही निर्वास आनन्द को प्राप्त करके निःखेद हो जाती है—वह ही धाम पूर्ण अहिंसा का स्वरूप है। ऐसी स्थिति को जो प्राप्त हुआ है, वह ही सर्व कल्याण स्वरूप है, यानी तमाम आसक्ति से निर्मल होकर निज आनन्द को उसने प्राप्त किया है।

बचन २१. जिसकी बुद्धि जब हर वक्त आत्म शब्द में निःचल होकर शरीर के कर्मों से असंग होती है, यानी कर्म फल द्वन्द्व से निर्बन्धन होती है, तब तमाम वासनाओं से पवित्र होकर नित्य ही सत् तत्व निर्वाण

शब्द् में दृढ़ होती है। ऐसी अकल्प और निर्द्वन्द्व स्थिति जिसको प्राप्त हुई है। वह ही पुरुष पूर्ण अहिंसावादी है, यानी तमाम कामनाओं से पवित्र होकर नित्य स्वरूप में विश्राम उसने पाया है। कामना का बन्धन ही हिंसक भाव को प्रगट करता है, और हर वक्त ग्रहण और त्याग के कर्म में बुद्धि को जकड़ता है। जिस वक्त तमाम कामनाओं से बुद्धि निर्मल हो जाती है, उस वक्त शरीर के तमाम कर्मों में निरासक्त होकर सत् तत्व अविनाशी शब्द् में स्थिर होती है, और शरीर से अपने आपको भिन्न अनुभव करती है। ऐसी दृढ़ स्थिति में जो विचरता है, वह ही अहिंसा का अवतार है। यानी नित्य ही निर्वास, निर्विकल्प, निर्द्वन्द्व, सर्व असंग, सर्व प्रकाश स्वरूप आत्म आनन्द् में मग्न होकर सदैव काल निःखेद् भाव को प्राप्त होता है। और वह ही शुद्ध स्वरूप है। ऐसी निर्मल और निःखेद् अवस्था को अनुभव करने के वास्ते सत्य परायणता की दृढ़ता यानी आन्तरिक अभ्यास और शारीरिक भोगों से वैराग्य को दृढ़ करना ही कल्याणकारी यत्न और सिद्धि के देने वाला मार्ग है।

बचन २२. सब मनुष्यों का पूर्ण कर्तव्य यह ही है, कि इस संसार की क्षण भंगुर यात्रा को समझ कर अपने जीवन के सही रक्षक होकर सब जीवों के वास्ते कल्याणकारी स्वरूप बनें। यानी अपने तमाम स्वार्थ से निर्बन्धन होकर दूसरे जीवों का कल्यान करें—यह ही निर्मल अहिंसा धर्म और सत् नीति है। ऐसी शुद्ध धारणा से ही निःकर्म सिद्धि अहिंसा शान्ति को मनुष्य प्राप्त कर सकता है। इस वास्ते नित्य ही सत्य बोध प्राप्त करें।

—*—

(घ) सत्संग निर्णय
और
सत् जीवन नियम
(i) सत्संग निर्णय

बचन १. ईश्वर भक्ति का निर्मल विचारः—यानी मन स्वरूप का पूर्ण निर्णय समझना और पूर्ण श्रद्धा युक्त अपने आपको बनाना।

बचन २. सादगी पर विचारः—यानी खुराक, लिबास को सादा करना, फ़िज़ूल खर्ची को छोड़ना।

बचन ३. सत् सेवा पर विचारः—यानी मानुष सेवा में अधिक प्रण रखना और दूसरे जीवों की रक्षा करनी भी लाज़मी समझना।

बचन ४. सत्पुरुषों के सत् नियमों पर विचारः—यानी सत्पुरुषों के पवित्र आदर्श को अपनाने का यत्न करना।

बचन ५. सत्कर्म पर विचारः—यानी धर्म अनुकूल और प्रतिकूल कर्मों को समझ कर अनुकूल कर्म की धारणा करनी।

बचन ६. सत धर्म के सत् प्रचार का विचारः—यानी अपने पवित्र आचरण की दृढ़ता द्वारा दूसरे जीवों का कल्यान करना।

बचन ७. निष्पक्ष भावना पर विचारः—यानी बा असल जीवन बनाना। बाद-विबाद और कथनी ज्ञान से बिल्कुल परहेज़ रखना।

बचन ८. **सब मज़हबों के रहनुमाओं के असली असूलों पर विचार**:—यानी तमाम सत् पुरुषों के जीवन आदर्श को विचार करके मज़हबी तास्सुब और वाद विवाद का त्याग करना।

बचन ९. **अपनी जीवन अवस्था के मुताबिक समय और सत् पुरुषार्थ का विचार**:—यानी पूर्ण समय की पाबन्दी में अपनी मानसिक पवित्रता हासिल करने का पूर्ण यत्न करना।

बचन १०. **अपने खानदान और जाति में बुरी रसूमात छोड़ने का विचार**:—यानी निरर्थिक जो रीतियाँ जाति व खान-दान में जारी हों उनसे अपने आपको पवित्र करना।

बचन ११. **कुल जाति के प्रचलित गुरुओं के आचरण पर विचार**:—यानी बुरे आचरण वाले गुरु को त्यागना और निर्मल आचरण वाले सत्पुरुष की संगत से अपने आपको पवित्र करना।

बचन १२. **अपने मन में पवित्र मनोरथ धारण करने का विचार**:—यानी सच्चे धर्म में अधिक से अधिक अपने तन, मन, धन से सेवा करनी।

बचन १३. **सत्संग में प्रेम बढ़ाने का विचार**:—यानी सत्संग को अधिक कल्याणकारी समझना और एकत्र होकर अपने जीवन की निर्मल उन्नति करनी।

बचन १४. **एकता व संगठन पर विचार**:—यानी सब जीवों में एकता भाव रखने की दृढ़ता और संगठित होकर सर्व जीवों की उन्नति का विचार करना।

(ii) सत् जीवन नियम निर्णय

बचन १. **पवित्र और सादा गिज़ाः**—यानी मुनश्शी (नशेवाली) चीज़, माँस और सेहत के विरुद्ध किसी भी अनयुक्त वस्तु के ग्रहण करने से परहेज़ रखना।

बचन २. **सादा लिबासः**—यानी बहुत कीमती और चमकीले वस्त्रों का त्याग करना।

बचन ३. **सत्संगः**—यानी सत्पुरुषों और बज़ुर्गों की सही आज्ञा माननी अपना जीवन कर्तव्य समझना।

बचन ४. **परोपकार सेवनः**—यानी जीवों पर दया करनी और अपने शुद्ध आचरण में दृढ़ता धारण करनी।

बचन ५. **नित्य नियमः**—यानी सुबह शाम सत्गुरु आज्ञा अनुसार कुछ समय ईश्वर चिन्तवन अधिक प्रेम से करना।

बचन ६. **समय की दृढ़ताः**—यानी हर एक काम अनुकूल समय पर स्वतंत्र रूप से करना।

बचन ७. **किसी क़िस्म की नुमायश को न देखनाः**—यानी नुमायश नक़ल होती है, और असली रोशन ज़मीरी को प्रागन्दा करती है।

बचन ८. **सचाई का मुतलाशी होनाः**—यानी अन्दरूनी विकारों को अपने पूरे यत्न से त्याग करना और सत् आचरण का पूर्ण विश्वासी होना।

बचन ६. **हर एक से प्रेम रखनाः**—यानी दृढ़ निश्चय से

दूसरे की कल्याण चाहनी पूर्ण निष्काम भावना से।

बचन १० पूरी अक्ल से, पूरी ताक़त से, पूरे इल्म से और पूरी कोशिश से अपने जीवन को अति निर्मल करने का यत्न धारण रखना और शरीर के अन्त समय के होने से पहले निर्भय अवस्था आत्मानन्द को प्राप्त कर लेना ही मानुष जीवन की परम सफलता है।

बचन ११. नित्य ही सत्संग द्वारा पवित्र विचारों को धारण करके अपनी निर्मल उन्नति का यत्न दृढ़ करना ही मानुष जन्म की उच्चता है और, इस नाशवान संसार में आकर नित्य ही सत् अनुराग की प्राप्ति हासिल करनी ही परम कल्याणकारी है। ऐसा यत्न और कर्तव्य जो हृदय में अशान्ति प्रगट करे उसका त्याग करके नित्य ही शान्तिमय गुरुमुख मार्ग समता में विचरना ही गुरमुखों का परम धर्म है। क्योंकि यह क्षणभंगुर शरीर एक दिन विनाश को प्राप्त हो जायगा और इस संसार से बग़ैर सत् यत्न और सत् अनुराग की दृढ़ता के जीव अशान्त ही जाएगा। इस वास्ते इस क्षणकारी जीवन की सही उन्नति करनी चाहिये जो तमाम मानसिक अशान्ति का नाश करे और निर्भय पद अविनाशी शब्द पार ब्रह्म परमेश्वर में निवास देवे।

बचन १२. हर वक्त अपने आपको मलीन वासनाओं से सत्य परायणता के बल द्वारा पवित्र करना चाहिये, क्योंकि पवित्र हृदय से ही परम शान्ति सत्य प्रकाश का बोध होता है। वह ही महागुणी, महाधनी, महा उपकारी और महा पराक्रमी है जिसने अपने मानसिक दोषों से पूर्ण पवित्रता हासिल की है। और सत्याग्रह की अति दृढ़ता से नित्य ही सत्य परायण होकर विचरता है। उसी का जीवन आचरण दूसरे जीवों के वास्ते आदर्श स्वरूप है। और वह खुद परम शान्ति निर्वास पद में स्थिति हासिल करके इस भ्रम रूप संसार को जीत चला है। दुर्लभ उसका जीवन यत्न है। सब मनुष्यों को ऐसा ही जीवन यत्न धारण करना चाहिये, क्योंकि मानुष जन्म की परम उच्चता इस यत्न के धारण करने से ही है। ईश्वर सत्य परायण भावना दृढ़ करे।

(ङ) जिज्ञासु का निर्मल प्रण

बचन १. जिस जिज्ञासु ने इन्द्रियों के भोगों को ज़हर समान जान करके त्याग कर दिया है, और जीवन निर्वाह मुताबक साधारण पदार्थ स्वीकार करता है, और दृढ़ निश्चय से आत्म परायण होकर एक नाम का निध्यासन करता है। वह ही गुणी पुरुष आत्म सिद्धि को प्राप्त होता है।

बचन २. तमाम कर्मों के फल को प्रभु इच्छा में जो समर्पण करता है, और तमाम कामना और कल्पना का जो नाम के दृढ़ चिन्तन के बल से अन्तर से त्याग करता है, और सर्व काल एक प्रभु ही के परायण रहता है। वह ही परम भक्त आत्म सिद्धि को प्राप्त होता है, यानी अन्तर में सत् अविनाशी नाद को अनुभव करता है।

बचन ३. जिस पुरुष ने तमाम मन, देह, इन्द्रियों के विकारों से उपरामता प्राप्त की है, और एक आत्म निध्यासन में दृढ़ हुआ है, वह ही आत्म साक्षात्कार अन्तर में कर सकता और परम कल्याण योग को प्राप्त होता है।

बचन ४. एक आत्मा का अनुराग जिसको प्राप्त हुआ है, और मन, देह और इन्द्रियों के भोगों से वैराग्यवान रहता है, परम भक्त और साध सेवक जो है, और नित्य ही अन्तर में एक ही नाम का दृढ़ चित्त से निध्यासन करता है, और मर्यादा मुताबिक सांसारिक कर्म भी प्रभु इच्छा में समर्पण करते हुए करता है। यानी परोपकार और निर्मल स्वार्थ में निर्मान भाव से जो विचरता है, मगर अन्तर में अधिक प्रभु

परायणता को प्राप्त हुआ है। वह ही परम विवेकी सत् प्रकाश आत्म आनन्द को अन्तर में अनुभव करके नित्य ही परम शान्ति में स्थित होता है, और दुख-सुख के बन्धन से मुक्त होता है—उसका जीवन दुर्लभ है।

बचन ५. जिसने अन्तर में आत्म तत्व को अनुभव किया है, उसने ही तीन तापों से छूट पाई है, और असंग, अकर्म, निर्वास, निर्द्वन्द्व अवस्था में हर वक्त निःचल रहता है, उसने इस महा दुख रूप प्रकृति से छूट पाई है। और नित्य आनन्द को प्राप्त हुआ है। वह ही जिज्ञासु तत्त्व ज्ञान परम योग सिद्धि को प्राप्त हुआ है। उसका पुरुषार्थ परम सफल हुआ है, और उसने ही दुर्लभ कीर्ति को हासिल किया है।

बचन ६. हर वक्त एक नाम का आधार दृढ़ धारण करके कर्म इन्द्रियों और ज्ञान इद्रियों से मन को जो एकाग्र करता है— सत् स्वरूप में—वह ही परम अभ्यासी जिज्ञासु आत्म सिद्धि निर्वास स्थिति को प्राप्त होता है।

बचन ७. शरीर के मद से बुद्धि को जिसने निर्मल किया है, और एक तत्त्व स्वरूप अविनाशी शब्द के जो परायण हुआ है, और कर्म फल द्वन्द्व से नित्य ही जो निर्लेप रहता है—ऐसी दृढ़ उपासना को जो प्राप्त हुआ है। वह ही जिज्ञासु परम सिद्धि आत्म आनन्द में लीन हो जाता है।

बचन ८. शरीर का विनाश जो निश्चय में देखता है, और इन्द्रियों के भोगों से जो नित्य ही वैराग्यवान् रहता है, ऐसा परम विवेकी जिज्ञासु आत्म परायणता में दृढ़ होकर तीन गुणों के खेद से निर्बन्धन हो जाता है। यानी साची स्वरूप परमानन्द सिद्धि को प्राप्त होता है।

बचन ९. इन्द्रियों के भोग ही परम बन्धन का स्वरूप हैं। जिसने तमाम इन्द्रियों के भोगों से असंगता प्राप्त की है, यानी अनन्य प्रीत करके गुरु उपदेश में मन को जिसने निःचल किया है, और कर्म अभिमान को त्याग करके नित्य ही साची स्वरूप परम तत्त्व में जो तमाम कर्म फल समर्पण करता है, और दुख-सुख में दृढ़ निश्चय से

समता धारण करता है। वह ही महा तपीश्वर जिज्ञासु आत्म सिद्धि को पा लेता है।

बचन १०. तमाम शरीर आकार जो कर्म संयुक्त और नाशवान देखता है, और आत्म स्वरूप को जो अकर्म और असंग करके अनुभव करता है—ऐसी प्रकाशमय अनुभव गति को जो अन्तर में जान लेता है। वह ही जिज्ञासु स्थिर बुद्धि योग को प्राप्त होता है। वह ही अवस्था परम धाम है।

बचन ११. तमाम शारीरिक स्वार्थ जो अग्नि समान देखता है, और हर वक्त परमार्थ बोध में जो दृढ़ रहता है, यानी तमाम संसार से अति निर्मल और अविनाशी एक परम तत्त्व आत्मा को जानकर नित्य ही इन्द्रियों के भोगों से असंग होकर जो तीन काल अन्तर में सावधान रहता है—वह ही जिज्ञासु परम योग निर्वाण को प्राप्त होता है, और उसका तमाम पुरुषार्थ तब ही कल्याणकारी हुआ है।

बचन १२. इन्द्रियों के भोगों से ही तृष्णा रूपी अग्नि अति प्रचण्ड होती है, और जीव को इससे कई जन्म तक परम दुख प्राप्त होता है। जिस जिज्ञासु ने ऐसा निर्मल विवेक धारण किया है। वह ही इस मिथ्या भोग विकार की अग्नि से छूटने के वास्ते गुरु परायण होकर परम तत्व की खोज में अपने जीवन को दृढ़ करता है, और नित्य ही सत् अनुराग और निर्मल वैराग से एक गुरु उपदेश में मन को निःचल करता है। ऐसे यत्न से ज्यों-ज्यों सत्य परायणता को प्राप्त होता है, त्यों-त्यों अन्तर में नित्यानन्द सत् शब्द को अनुभव करता हुआ परम शान्ति निर्वास पद को प्राप्त हो जाता है। यह ही गति परम सिद्धि है। यानी वह जिज्ञासु अपने सत् प्रण से तमाम बन्धनों से निर्बन्धन होकर एक अविनाशी स्वरूप को प्राप्त करके निर्भय हुआ है, और नित्य जीवन शुद्ध स्वरूप अखण्ड शब्द को अपने आप में बोध किया है, और जानने योग्य पद को जाना है। ऐसे महा गुणी की दुर्लभ कीर्ति है।

बचन १३. चूँकि बुद्धि त्रिगुणों में अति आरूढ़ हुई-हुई हर वक्त असत् नाम रूप, गुण और कर्म में भरमती रहती है। एक लम्ह भी निश्चय आत्मिक भाव को प्राप्त नहीं होती है—यह ही भ्रम अधिक दुस्तर है। जिस जिज्ञासु ने ऐसी मानसिक अशान्ति को पहचान किया है, वह ही गुरु संगत से आत्मिक निश्चय को प्राप्त करके त्रिगुण अभिमान से निर्बन्धन होकर सहज पद अविनाशी निज रूप में निवास पाता है।

बचन १४. यह दुर्मति अंधकार अधिक यत्न से ही नाश होता है, यानी शुद्ध विवेक, शुद्ध वैराग और शुद्ध अभ्यास की दृढ़ता से ही अनात्म देह अभिमान से निर्बन्धन होकर बुद्धि अन्तर में सत्य पद को अनुभव करती है, और तमाम वासना के जाल से मुक्त होकर सत् स्वरूप में निःचल होती है। ऐसा यत्न ही परम सिद्धि के देने वाला है।

बचन १५. शुद्ध विवेक की सार यह है, कि तमाम प्रकृति को विनाश और दुख रूप समझ कर एक अविनाशी स्वरूप के परायण होना, और बार-बार अनात्म पदार्थों के मोह का त्याग करना, और सत् स्वरूप के अनुभव करने का अधिक यत्न करना। ऐसा अनुराग ही शुद्ध विवेक की दृढ़ता के देने वाला परम कल्याण स्वरूप है।

बचन १६. शुद्ध वैराग्य की सार यह है, कि तमाम प्रकृति के भोग दुख स्वरूप समझना और नाश होने वाले भी निश्चय करके जानना—ऐसा पवित्र अनुभव धारण करके तमाम शारीरिक सुख भोगों से उपरस हो जाना और केवल एक परमेश्वर के चमत्कार में अपने आपको दृढ़ करना -ऐसी स्थिति ही परम शान्ति के देने वाली है, और जिज्ञासु का परम जीवन स्वरूप है।

बचन १७. शुद्ध अभ्यास की सार यह है, कि सत् विश्वास से एक अक्षय शब्द का अनन्य भाव से अन्तर में चिन्तन करना और तमाम मानसिक मिथ्या कल्पना का निरोध करना, यानी केवल नाम के आधार ही रहना और तमाम शारीक दुख व सुख में अचल होकर

विचरना ही सत् अभ्यास है। ऐसा पवित्र पुरुषार्थ जो धारण करता है, वह ही आत्मसिद्धि को प्राप्त होता है—यानी अन्तर में आत्म साक्षात्-कार पद को अनुभव करता है। और ज्ञान-विज्ञान के दृढ़ आचरण में सर्वकाल आनन्दित रहता है। यह स्थिति ही परम योग है।

बचन १८. शुद्ध विवेक, शुद्ध वैराग्य और शुद्ध अभ्यास की पहचान और दृढ़ता केवल तत्वज्ञानी सत् गुरु की प्राप्ति से ही हो सकती है। इस वास्ते जिज्ञासु का परम आधार, परम शिक्षक, परम ठौर और परम जीवन केवल आत्मदर्शी सत गुरु की संगत और सेवा ही है पूर्ण भाग्य से जिसको प्राप्त होवे। यानी इस अद्भुत माया के दुर्मति जाल से जिज्ञासु गुरु शिक्षा को धारण करके नित्य ही अपने आप अभि-मान का निरोध करके गुरु कृपा का पात्र हो करके ही छुटकारा हासिल कर सकता है—यानी निज स्वरूप को बोध करता है, और खुद अपने आपका गुरु हो जाता है। तब हो तमाम जोवों के वास्ते उसका जीवन परम कल्याणकारी होता है।

बचन १९ शुद्ध विवेक, शुद्ध वैराग और शुद्ध अभ्यास में दृढ़ निश्चय वाला ज्ञानी ही इस कर्म द्वन्द्व अन्धकार में निर्बन्धन हो करके केवल आत्मस्वरूप में निःचल होता है, वह ही जिज्ञासु अपने आपके जानने वाला और सर्व के जानने वाला गुरु रूप हो जाता है।

बचन २०. बुद्धि जब तक देह अभिमान से भ्रमी हुई है, तब तक काम, क्रोध, मोह, लोभ और अहंकार की अग्नि में हर वक्त जलती रहती है, और नाना प्रकार के शरीर द्वारा कर्म करके इस भयानक अग्नि को ठण्डा करने का यत्न करती है, मगर सब अकार्थ। शरीर ही तो तमाम विकारों का सागर है, इसमें सत् निश्चय रखने से कैसे शान्ति प्राप्त हो सकती है? यह ही भ्रम अज्ञान है।

बचन २१ जिज्ञासु गुरु शिक्षा से शरीर अभिमान का छेदन करके शुद्ध बिबेक वैराग और अभ्यास के दृढ़ अनुराग से इस तृष्णा रूपी

अग्नि से शीतल होकर सत् स्वरुप अविनाशी शब्द को प्राप्त होता है। यानी काल चक्र शरीर यात्रा को मुकम्मिल करके सत् ठौर, निज स्वरूप आत्मा को अनुभव कर लेता है और नित्य शान्ति को प्राप्त होता है। दुर्लभ उसका प्रयत्न है।

बचन २२. अधिक यत्न से इस देह अभिमान से असंग होना ही परम भक्ति और परम वैराग्य है, जो जिज्ञासु ऐसे अनुराग को प्राप्त हुआ है, उसने ही निर्मल विजय हासिल की है।

बचन २३. देह से जीवन में असंग होना ही परम सिद्धि और शान्ति है। जिसको ऐसी दृढ़ता प्राप्त हुई है, यानी देह ममता से असंग होकर नित्य स्वरूप आत्मा में जो हर वक्त विश्राम पाता है, वह ही परम ज्ञानी है, और सर्व हितकारी है।

बचन २४. देह आकार जो तमाम कर्मों का ही सागर है, और बुद्धि निमिष २ इन कर्मों की भुक्ता होकर दुख व सुख में चलायमान होती रहती है। जिस जिज्ञासु ने इस अशान्तमय अवस्था को पूर्ण जाना है, और सत्‌गुरु शिक्षा अनुकूल सर्व साक्षी स्वरूप आत्मा के परायण होने का जो यत्न करता है, और नित्य ही दृढ़ अनुराग से अपने तमाम मानसिक दोषों की निवृत्ति करके एक अखण्ड नाम ध्यान में जो अन्तर में दृढ़ हुआ है, यानी तमाम इन्द्रियों के कर्मों से असंग होकर जो एक नाम में एकाग्र हुआ है, वह ही परम तपीश्वर सत् तत्व को अनुभव करके सर्व शान्ति को प्राप्त होता है। उसका जिज्ञासुपन अति श्रेष्ठ होने के कारण अपने आप में प्रबुद्ध होकर परम प्रसन्नता तत्वज्ञान में वह प्रवीन हुआ है। इस वास्ते अति-पवित्र जिज्ञासुपन की दृढ़ता होने से ही ऐसी निराधार सर्व शान्ति प्राप्त हो सकती है। जिज्ञासु वह ही श्रेष्ठ है, जिसने तमाम शारीरिक भोगों से उपरसना प्राप्त की है, और सत् नाम में नित्य ही जो निःचलता हासिल करता है, वह एक दिन परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है और मानुष जन्म की परम सफलता को

पा लेता है। ऐसे सत् यत्न करने वाले गुरमुख इस भ्रमरूपी संसार में अधिक दुर्लभ हैं। उनकी पवित्र करनी अनन्त जीवों को शान्ति के देने वाली है और वह ही सत् चेतावनी के प्रकाशक हैं। उनका वचन व कर्म सर्वआनन्द के देने वाला है। पूर्ण भाग्य से ही ऐसे परमहंस गुरमुखों का संयोग हो सकता है। सत् जिज्ञासु हो करके नित्य ही सत् शान्ति की खोज करनी चाहिये। इस क्षणभंगुर शरीर का यह ही परम लाभ है।

शबद

सत् जिज्ञासु होय के तत्त निर्णय ज्ञान विचारी।
अपने आप में आप को बोधे सब भ्रम कर्म होए छारी॥
अन्तर अनुभव गति प्रकाशे सत् शब्द अखण्ड निर्वाना।
गुरु के वचन में मर जीवित होए सो परसे सार ज्ञाना॥
निर्मल चित्त इक नाम कमावे, सब आपा मति गँवाए।
तीन ताप की तपन विनासे—जन निर्भय धाम समाए॥
सत्य ही सिमरे, सत्य ही बोधे, सत्य में जीवन त्यागे।
झूठ देही का गर्व विनासे घट आत्म रसना जागे॥
आत्म रस सत् शब्द अविनाशी जो अन्तर कीजे पाना।
सो जिज्ञासु सिद्ध भयो पद परमयो निर्वाना॥
साजन मार्ग निर्बन्ध खोजो सत् गुर सीख चितारो।
मानुष जन्म जग दुर्लभ पायो नित्य धर्म का खाट ब्योहारो॥
जीवन रूप सो पार गरामी नित्य अन्तर मन में ध्याओ।
मंगत यत्न यह सार है तत्त पूज परम पद पाओ॥

अनुभवी वाक समता विलास

* समाप्तम् *

सत् आज्ञा निरंकार

समत साहित्य

	रु० आ० पा०
१. ग्रंथ समता प्रकाश [उरदू] (सफेद कागज़)	५—०—०
२. ,, ,, ,, ,, (नियुज़ परिंट)	२—८—०
३. ,, ,, ,, [हिन्दी] (जिल्द वाला)	१०—०—०
४. ,, ,, ,, ,, (बिना जिल्द)	६—०—०
५. ,, ,, ,, ,, (पाँच भागों में)	२—०—० (प्रति भाग)
६. समता विलास उरदू (पहला भाग)	२—४—०
७. ,, ,, ,, (दूसरा भाग)	१—०—०
८. ,, ,, [हिन्दी] (पहला भाग)	२—४—०
९. ,, विज्ञान योग [हिन्दी] (वाणी)	१—८—०
१०. ,, ,, ,, (उरदू) (,,)	१—८—०
११. समता दर्पण का शान्ति अंक १९५३ (उरदू) (जिसमें योग मार्ग बोध और परम कल्याण बोध है)	१—०—०
१२. समता दर्पण का पवित्र जीवन अंक १९५४ (उरदू) (पवित्र जीवन, जीव उद्धारक सत् नियम, निर्मल जीवन रचा, जीवन सफलता बोध सहित)	१—०—०
१३. समता दर्पण का सत उपदेश अंक १९५६ (उरदू) (श्री महाराज मंगतराम जी के पत्र द्वारा, उपदेश, तथा प्रश्न, उत्तर सहित)	२—४—०

(नोटः—इन सब पुस्तकों को डाक द्वारा, मंगाने पर डाक का खर्चा अलग लगेगा)

मिलने का पताः—

(i) प्रबन्धक

समता योग आश्रम

जगाधरी (ज़ि० अम्बाला),

(ii) समता-दर्पण,

एफ़-२६६, न्यु राजेन्द्र नगर,

न्यु दिल्ली।

श्री

समता विलास

(दूसरा भाग)

ब्रह्म सत्येम   समता अपार शक्ति   सर्व आधार

श्री

समता विलास

(दूसरा भाग)

श्री मुख वाक् अमृत

पूजनीय श्री सत्गुरु देव मंगतरामजी महाराज
जन्मभूमि शुभ स्थान गंगोठियां ब्राह्मणां
जिला रावलपिण्डी (पञ्जाब)

प्रकाशक:—

संगत समतावाद,
समतायोग आश्रम,
जगाधरी (ईस्ट पंजाब)

"विषय सूची"

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ

(१) समता जीवन विज्ञान

(क) जीवन सफलता बोध	... ...	३
(ख) मार्ग निर्णय जीवन	... ...	७
(ग) जीवन यात्रा	... ...	९
(घ) जीवन सुधार	... ...	११
(ङ) कल्याणकारी निर्मल जीवन	... ...	१४
(च) सन्त जीवन स्थिति	... ...	१६
(छ) जीवन मार्ग सिद्धान्त	... ...	१८
(ज) सन्त शिक्षा	... ...	२३
(झ) मार्ग धर्म में गुरु शिष्य सम्बन्ध	... ...	२५
(ञ) स्त्री पुरुष जीवन सम्बन्ध		
(i) पतिव्रत धर्म	... ...	२६
(ii) पुरुष धर्म	... ...	२७
(ट) भूत प्रेत पर विचार	... ...	२८
(ठ) नवधा भक्ति का निर्णय	... ...	३१
(ड) समर्पण कर्म	... ...	३६
(ढ) विश्व शाँति संदेश	... ...	३८
(ण) रामराज्य का स्वरूप	... ...	४७

(२) समता ज्ञान मार्ग

(क) योग मार्ग बोध

(i) भोगवाद स्थिति ५१

(ii) शुद्ध विवेक ५७

(iii) शुद्ध वैराग ६३

(iv) शुद्ध निध्यास ७६

(ख) सत मार्ग स्थिति का निर्णय ९९

(ग) परम कल्याण बोध १०१

(घ) सदाचार और नाम
सिमरण का निर्णय ११२

(ङ) ईश्वर प्रेम ११४

(च) समवाद विज्ञान ११६

(छ) आत्म चिन्तन १२४

(ज) मत् स्वरूप चिंतन की भावनायें

(i) सम्बन्ध कर्मयोग या भक्ति योग १२९

(ii) सम्बन्ध ज्ञानयोग १३०

(iii) स्वास चेतावनी १३१

(झ) आत्मसिद्धि विचार १३२

(१) समता जीवन विज्ञान

ओ३म ब्रह्मसत्यम् निरंकार, अजन्मा, अद्वैत पुरुषा
सर्व व्यापक, कल्याण मूरत परमेश्वराय नमस्तं

(क) "जीवन सफलता बोध"

बचन (१) इस संसार में हर एक देहधारी जीव अपनी जीवन सफलता प्राप्ति की खातिर दिन रात कोशिश करता रहता है। मगर तमाम शारीरिक अवस्था व्यतीत करके आखिर पश्चाताप ही लेकर जाता है। यानी सही सफलता जीवन को प्राप्त नहीं हो सकता है। यह ही माया का अधिक जाल है।

बचन (२) वास्तव में जीव पाँच भौतिक शरीर को धारण करके पाँच ज्ञान इन्द्रियों और पाँच कर्म इन्द्रियों के प्रिय रस भोगों में अधिक आसक्त हो कर अपनी सही सफलता यानी निर्भय शान्ति को चाहता है। मगर तमाम इन्द्रियों के भोग छिन-भंगुर होने के कारण बजाय शान्ति के अधिक दुःख के देने वाले होते हैं। ऐसा समझना ही निर्मल विवेक है।

बचन (३) सार निर्णय यह है कि जब तक इन्द्रियों के भोगों से अधिक आसक्ता का नाश नहीं होता, यानी शुद्ध नियम अनुकूल भोगों की त्याग वृति प्राप्त नहीं होती, तब तक मानुष अपने जीवन का घातक ही बना रहता है। ऐसा विचार अनुभव करने से असली जिज्ञासु वृति प्राप्त होती है।

बचन (४) असली जीवन सफलता की प्राप्ति इन्द्रियों के भोगों से निर्बन्ध होने से ही प्राप्त हो सकती है। मगर इन्द्रियों के भोगों में जब तक अधिक राग द्वेष की महसूसात दृढ़ हो रही हैं, तब तक निर्मल कल्याण को प्राप्त होना अधिक कठिन है। यह ही अंधकार मयी दशा

यानी इन्द्रियों के भोगों की अधिक लालसा ही भव सागर रूप है। जिससे पार होना किसी ही शूरवीर महागुणी का काम है।

बचन (५) हर एक जीव अपनी-अपनी इन्द्रियों के भोगों की आसक्ति में दृढ़ होकर जीवन यात्रा को व्यतीत कर रहा है और अधिक भोगों की लालसा के वश होकर नाना प्रकार की कामनाओं के सागर में पल पल विखे गोते खाता रहता है। यह ही जीवन परम दुःख है। हर एक जीव ऐसी गिरफ़्तारी में मजबूर है।

बचन (६) जब तक सही खेद का बोध न हो सके, तब तक उस दुःख से निवृति होनी मुश्किल है, सो इस जीव को परम खेद महज़ इन्द्रियों के भोगों की अधिक आसक्ति ही है। ऐसा जानने से ही कल्याण और बन्धन के विचार को दृढ़ करके हर एक जीव सत् शान्ति जो परम सफलता है, उसको प्राप्त हो सकता है।

बचन (७) ऐसे जीवन भेद को अनुभव कर के उस से सही कल्याण हासिल करनी ही मानुष जन्म की उच्चता है। और जिन-जिन नियमों और साधनों से यह जीव असत इन्द्रियों के भोगों से निर्बन्ध होकर सत् तत्व की दृढ़ परायणता को प्राप्त होता है। उन ही मार्गों को सत् मार्ग कहा गया है। यानी असत् मार्ग साधनों के भोगों की अधिक चेष्टा से निवृत होकर सत् स्वरूप अविनाशी आत्मा में निर्मल दृढ़ता हासिल करनी ही सत् मार्ग का परम स्वरूप है और मानुष जीवन की निर्मल खोज है। ऐसा अनुभव करना चाहिये।

बचन (८) सार निर्णय यह है कि जीव इन्द्रियों के भोगों की आसक्ति में ही शुभ अशुभ कर्म कर के अपने आप को बंधन दर बंधन में डालता है। और निर्भय शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकता है। यह ही कर्म चक्र की गहरी फाँसी है। इससे छुटकारा हासिल करना ही मानुष का परम धर्म है।

बचन (९) जब तक जीव को देह अभिमान है, तब तक इन्द्रियों

के भोगों से निवृत्ति होनी अति कठिन है। इस वास्ते इस देह मद भ्रम से निर्बन्ध होना ही सत् बोध है और सत् बोध की प्राप्ति ही परम जिज्ञासा है।

बचन (१०) जब तक सर्व साक्षी स्वरूप आत्मा का विश्वास न होवे, तब तक देह मद का अभाव नहीं होता। जब तक देह मद से निर्बन्ध नहीं होता, तब तक इन्द्रियों के भोगों की वासना से छुटकारा मिलना मुश्किल है। इस वास्ते केवल एक सत् स्वरूप जीवन प्रकाश परम तत्व परमेश्वर का दृढ़ विश्वासी होना ही परम कल्याण के देने वाला है। ऐसा अनुभव दृढ़ होना चाहिये।

बचन (११) जितनी जितनी सत् तत्व में दृढ़ता जिसको प्राप्त होती है, उतना ही वह पुरुष इन्द्रियों के भोगों की आसक्ति से निर्बन्ध होकर श्रेष्ठ आचारी और निर्मल विचार वाला होता है और निर्मल त्याग के मार्ग में दृढ़ हो कर नित ही पर उपकार में विचरता है। ऐसा जीवन ही सत् धर्म का आचरण स्वरूप जानना चाहिये।

बचन (१२) सत् तत्व में जब अधिक दृढ़ता प्राप्त होती है, यानी इंद्रियों के भोगों से वैराग्यवान् हो कर केवल अज्र अविनाशी आनन्द की प्राप्ति की खातिर दृढ़ अनुराग धारण करता है। उस वक्त निर्मल जिज्ञासु हो कर अपने बंधन को सत् तत्व बोध प्राप्ति के प्रेम से खंडन करता है। यानी तमाम इंद्रियों के भोगों से विलग होकर केवल आत्म चिंतन में दृढ़ होता है। ऐसी स्थिति ही निर्मल भक्ति का स्वरूप है।

बचन (१३) ज्यों-ज्यों सत् तत्व में अनुराग होता जाता है, त्यों-त्यों तमाम कर्म वासनाओं से निवृति हासिल होती जाती है और बुद्धि तमाम इंद्रियों के भोगों से अचेष्ट हो कर सत् नाम में निश्चल होती है। तब ही निर्मल सफलता को अनुभव करती है। यानी निवास होकर स्थित होती है। ऐसी अवस्था को योगारूढ़ कहा गया है।

बचन (१४) तमाम शरीर कर्म स्वरूप है और आत्मा नेहःकर्म

स्वरूप है। जीव यानी बुद्धि जब तक शरीर परायण होकर विचरती है तब तक इन्द्रियों के भोगों की वासना में अधिक आसक्त होकर दुःख व सुख में नित ही चलायमान होती रहती है। इसी अवस्था को कर्म बंधन या आवागवन कहा गया है।

बचन (१५) आत्म विश्वास, यानी सत् विश्वास, आत्म अनुराग यानी सत् अनुराग, आत्म स्थिति यानी सत् स्थिति की दृढ़ता से ही बुद्धि कर्म बंधन से निर्बन्ध हो कर नेहःकर्म स्वरूप शान्ति को प्राप्त हो कर नित आनन्द को हासिल करती है। यह ही हालत परम सफ़लता है। जिस को प्राप्त कर के फ़िर कुछ जानने योग्य और प्राप्त करने योग्य नहीं रहता। यानी निर्वाण शान्ति तत्व स्वरूप में परम स्थिति प्राप्त कर के आनन्द स्वरूप हो जाती है।

बचन (१६) सार विवेक यह है कि इस संसार मार्ग में केवल सत् विश्वासी और सत् अनुरागी होना ही तमाम विकारों से निर्बन्ध होना है। इस वास्ते परम यत्न से अपने आप को सत् परायण बनाना चाहिये, यानी अपनी ममता को त्याग कर के प्रभु आज्ञा में अपनी तमाम जीवन क्रिया के नतीजे को समर्पण करने का निश्चय प्राप्त करना चाहिये। यह भावना ही गुरमुख मार्ग है और परम कल्याण स्वरूप है।

बचन (१७) सत परायणता के दृढ़ होने से ही असत भोग वासना से निवृति प्राप्त होती है, तब ही सौ गुनी पुरुष निर्मल कर्म आचारी होकर अपने आप के वास्ते और दूसरे मनुष्यों के वास्ते परम कल्याण-कारी हो सकता है। इस वास्ते केवल एक सत के आधार में निश्चय रखकर अपने तमाम दोषों को त्यागना चाहिए। इसी में सर्व की कल्याण है और मानुष्य जन्म की निर्मल सफलता प्राप्ति है। सब गुणियों को सत परायणता का दृढ़ अनुराग होना चाहिये, जिससे इस अग्नि रूप विकारों से सत शान्ति प्राप्त होवे।

(ख) "सार निर्णय जीवन"

बचन (१) संसार और शरीर की तबदीली निश्चय करके जाननी चाहिये।

बचन (२) अपना जीवन निर्मल कर्म में व्यतीत करना ही मानुष जन्म का परम कर्तव्य जानना चाहिये।

बचन (३) तमाम मानुष्यों के साथ निर्वैर भाव से बर्ताव करना चाहिये क्योंकि समय पै सबही तबदीली को प्राप्त हो जावेंगे। इस वास्ते प्रेम संयुक्त जीवन ही परम शिरोमणि जानना चाहिये।

बचन (४) मन और इन्द्रियों का दमन और सत स्वरूप में दृढ़ निश्चय ही इस भयानक अंधकार से कल्याण के देने वाला है यानी सत स्थिति का स्वरूप है।

बचन (५) जीवन का सही मकसद निर्बंधन होना है, यानी वासना के वेग को परित्याग करने से निर्बंधन होना हो सकता है। इस वास्ते मन बचन और कर्म से सत परायण हो कर निष्काम सेवा संयुक्त विचरना ही असली जीवन की निर्मल यात्रा है।

बचन (६) अपने निर्मल प्रण में जो दृढ़ रहता है, वह ही तमाम प्रकार की परम सिद्धि को प्राप्त होता है यानी तत्त्व स्वरूप निर्खेद आनंद को हासिल कर लेता है।

बचन (७) इस संसार का दृश्य एक गहरी आँधी के समान जानना चाहिये यानी सिवाय गर्दो गुबार और बेचैनी के और कुछ निश्चय हासिल नहीं हो सकता है। इस वास्ते इस आँधी के वेग से अपनी मनो-

वृत्ति को शाँतमयी करना केवल एक परम पुरुष परमेश्वर के सत विश्वास से ही हो सकता है। यह निश्चय तमाम गुणी पुरुषों ने हासिल करके अपनी कल्याण की है।

बचन (८) मानुष जन्म की उत्तम कीर्ति यह ही है कि अपने यथार्थ बल अनुकूल दूसरे के वास्ते कल्याणकारी बने। यह ही निर्मल कर्तव्य इस नाशवान संसार में सत शान्ति के देने वाला है।

बचन (९) ऐसा निर्मल पुरुषार्थ धारण करना चाहिये जिससे मन और इंद्रियों को सत शान्ति यानी निर्वास आनन्द प्राप्त हो सके। यह ही खोज परम गुणकारी है।

बचन (१०) संसार की विनाश व निर्मल कर्तव्य का पालन व चित्तवृति का निष्काम भाव में दृढ़ करना, यानी परम तत्व में नेहचल करने की धारणा जो धारण करता है। वह ही सही उन्नति को प्राप्त हो सकता है।

(यह सार निरना जीवन का है। सब गुणी पुरुषों को ऐसी धारणा दृढ़ करके अपनी कल्याण करनी चाहिये)।

(ग) "जीवन यात्रा"

बचन (१) बुद्धि सत स्वरूप अविनाशी तत्व को भूलकर के पाँच तत्वों के शरीर में अति मोहित होकर ज्ञान इंद्रियों और कर्म इंद्रियों के भोगों में लवलीन रहती हुई नित ही दुख व सुख में चलायमान होती रहती है और एक छण मात्र भी धीरज को प्राप्त नहीं हो सकती है। यह ही हालत परमखेद का स्वरूप है।

बचन (२) चूँकि बुद्धि शरीर के भोगों के आधार पर ही खड़ी है और भोगों से ही शरीर का बनना बिगड़ना प्रतीत हुआ जानती है, इस वास्ते एक लमह भर भी शारीरिक भोगों की आसक्ति से निर्बन्धन नहीं हो सकती है और शरीर विनाश को प्राप्त हो जाता है। बुद्धि शारीरिक भोगों की इच्छा लेकर फिर दूसरे शरीर को प्राप्त होती है, यह ही संसार का अद्भुत चक्र है।

बचन (३) मानुष जन्म की उच्चता यह ही है कि इस जीवन यात्रा यानी शारीरिक भोग वासना के भेद को समझना और विनाश होने वाले शरीर के अधिक मोह से पवित्र होकर शरीर का प्रकाशक स्वरूप जो जीवन शक्ति है—उसका दृढ़ विश्वास और निध्यास धारण करना।

बचन (४) ऐसे सत परायणता के दृढ़ विश्वास से बुद्धि शारीरिक भोगों से वैराग्य को प्राप्त होती है। यानी तमाम भोगों में संयम को दृढ़ करती है और सत नाम के निर्मल निध्यास में अपने आप को नेहचल करती है। ऐसे पवित्र निश्चय को ही त्याग और भक्ति कहा जाता है।

बचन (५) जब बुद्धि अधिक दृढ़ विश्वास से सत्याग्रह में दृढ़ होती है यानी शरीर को भोगों की खातिर नहीं समझती है बल्कि शरीर को सत पद प्राप्ति का साधन समझती है। ऐसे पवित्र भाव को प्राप्त करके तमाम मलीन वासनाओं से निर्मल हो जाती है और अनन्य प्रेम से आत्मचिन्तन में मग्न होती है।यह साधन ही निर्मल अभ्यास है।

बचन (६) जब बुद्धि शरीर के सुख व दुख के चिन्तन को छोड़ कर केवल एक नाम के चिंतन में नेहचल होती है, तब अन्तर में आत्म साक्षात्कार अविनाशी शब्द को अनुभव करके शारीरिक कर्म भोग की आसक्ति को त्याग करके एक अखंड अविनाशी शब्द जो नेहः कर्म और निर्वास स्वरूप है, उस में अपने आप को सावधान करती है। ऐसी स्थिति को ही योग आरूढ़ अवस्था कहा गया है।

बचन (७) सार विवेक जीवन का यह ही है कि शरीर मद की आसक्ति में शारीरिक भोग वासना का जाल फैलता है और बुद्धि नित ही विकराल कर्म के परम दुख में ही भयभीत रहती है—और जब शरीर मद की आसक्ति को त्याग करके केवल सत स्वरूप के परायण होती है। तब तमाम भोग वासना का अन्तर से अभाव हो जाता है और बुद्धि एकाग्र हो कर नेहःकर्म स्वरूप अविनाशी शब्द में अंतर विषे स्थिर हो जाती है। यह ही हालत परम धाम निर्वाण पद समता शाँति का स्वरूप है।

बचन (८) सार निर्णय यह ही है कि सत के विश्वास और सत के निधयास से ही बुद्धि तमाम विकारों से निर्बन्धन होकर निर्भय शाँति को प्राप्त हो सकती है। इस वास्ते अपने सही जीवन के रक्षक हो कर नित ही अपने निर्मल निश्चय को सत की खोज में दृढ़ करना चाहिये। यह ही मार्ग असली कल्याण का है। सब सज्जनों को अपनी सही कल्याण का सही यत्न करना चाहिये, जो इस जीवन यात्रा का उच्च कर्तव्य है। ईश्वर सुमति देवे।

(घ) "जीवन सुधार"

बचन (१) जन्म से लेकर हर एक जीव अपने अपने शरीर के बन्धन में आसक्त होकर विचरता है यानी शारीरिक कर्म जिसका फल द्विन्द स्वरूप दुःख व सुख है। उसमें बंधायमान होकर दुख से छूटने की खातिर और सत शाँति प्राप्ति की खातिर लमह ब लमह अनेक प्रकार की कामनाओं को धारण करके यत्न करता है। मगर द्विन्द स्वरूप कर्म चक्र में रंचक मात्र भी सत शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता है। यह ही जीवन स्वरूप माया का अद्भुत जाल है।

बचन (२) ऐसे जीवन यात्रा के भेद को जब तक यथार्थ स्वरूप से न जाना जाये, तब तक निर्मल उन्नति का सत यत्न प्राप्त होना अति कठिन है। इस वास्ते गुणी पुरुष का परम धर्म है कि इस खेद युक्त जीवन यात्रा के सही भेद को समझ करके सत मार्ग जो सत शाँति के देने वाला है उसमें अपने आप को दृढ़ करे। यह ही यथार्थ यत्न मानुष जीवन का परम लाभ है।

बचन (३) चूँकि शारीरिक कर्म छिन-छिन में तबदील होने वाले हैं और साथ ही शरीर भी तबदीली युक्त है। इस वास्ते महज़ शारीरिक भोगों की प्राप्ति कर लेने से कभी भी सत शाँति प्राप्त नहीं हो सकती है। ऐसी मूढ़ मति को धारण करके ही शरीर विनाश के समय सब को परम दुख प्राप्त होता है। ऐसा जीवन का भेद समझना ही असली विवेक है। जिसके जानने से बुद्धि हर वक्त मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करके सत अनुराग में दृढ़ होती है।

बचन (४) शरीर और शारीरिक कर्म तबदीली युक्त हैं। इस वास्ते इसमें सत शाँति का प्राप्त होना जानना महज़ अधिक मूढ़ता है जो कि हर वक्त परम अशाँति और परम दुख के देने वाली है।

बचन (५) ऐसी शारीरिक यात्रा को समझ करके नित ही अपने पवित्र निश्चय को शरीर की प्रकाशक शक्ति जिसको आत्मा, सत आनन्द, अकाल, ईश्वर और जीवन शक्ति आदि अनन्त नामों से सत पुरुषों ने गायन किया है, दृढ़ करना चाहिये। ऐसा निश्चय ही स्तवाद या आस्तिकवाद है।

बचन (६) सार विचार यह है कि शरीर और शारीरिक कर्म भोग अति बन्धन इस जीव को है। जिससे अधिक तृष्णा की अग्नि में जलता रहता है और सत शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता है। ऐसे परम क्लेश से छूटने के वास्ते एक परमेश्वर का पूर्ण निश्चय से विश्वासी हो करके तमाम शारीरिक कर्म के फल को उसकी आज्ञा में क्षण-क्षण विखे समर्पण करना ही द्वन्दखेद से छुटकारा देने वाला यत्न है। इसी परम पवित्र निश्चय को भक्ति कहते हैं।

बचन (७) निर्मल भावना से प्रभु परायण हो कर तमाम शारीरिक कर्म उसकी आज्ञा में समर्पण करने और क्षण-क्षण विखे प्रभु नाम को हृदय में चिन्तन करना और तमाम शारीरिक सुखों में समान हालत से विचरना ऐसा सत विश्वास ही सत शाँति आत्मसाक्षातकार के देने वाला है।

बचन (८) जिस गुणी पुरुष को ऐसा पवित्र भाव प्राप्त हुआ है यानी अपने आपको सत परायण करने के यत्न में जो दृढ़ हो रहा है, वह ही आन्तरिक आत्मसाक्षातकार यानी ब्रह्म शब्द को अनुभव करके नेहःकर्म स्वरूप अखण्ड शाँति को प्राप्त होता है। यह ही अवस्था परम तृप्ति और परम शाँति है। यानी तमाम शारीरिक विकारों से निर्मल हो करके बुद्धि सत स्वरूप अविनाशी शब्द में नेहचलता को प्राप्त होती है। यह ही दृढ़ता परम तप और अभ्यास है।

बचन (९) जीवन यत्न की सार यह ही है कि एक प्रभु परायण हो करके तमाम शारीरिक कर्म निष्काम भाव से धारण करते हुए इस जीवन यात्रा को व्यतीत करना—ऐसे सत यत्न से ही परम सिद्धि निर्वाण शाँति प्राप्त होती है और यह ही आन्तरिक यत्न तमाम सत पुरुषों का है।

बचन (१०) हर वक्त सत विश्वास और सत निधयास को धारण करके अपनी अनार्थक कामनाओं का त्याग करके अपने आन्तरिक में सत स्वरूप अविनाशी तत्त्व का सिमरण ध्यान करते हुए सत मर्यादा यानी पवित्र कर्म निष्काम स्वरूप में धारण करके अपने जीवन को व्यतीत करना ही जीवन का परम सुधार है। इसी से सर्व की कल्याण है। सब प्रेमी पूर्ण निश्चय से विचार करके अपने जीवन की निर्मल सफलता प्राप्त करें।

(ङ) "कल्याणकारी निर्मल जीवन"

बचन (१) ऐसे भयानक समय में जिसमें तकरीबन तमाम ब्रह्मण्ड में अशाँति ही अशाँति छाई हुई है और नित ही विशाल रूप में एक दूसरे की विनाश के उपद्रव प्रगट हो रहे हैं। उसका कारण महज़ वासना का अधिक फैलाओ ही है और वासना की अधिकता केवल भोगमयी जीवन से ही प्रगट होती है। और भोगमयी जीवन सत विवेक से हीन होने से ही जकड़ता है। सो सार निर्णय यह है कि इस अंधकार के समय में आम मानुषों ने अपना जीवन कर्तव्य केवल भोग परायण बनाना ही दृढ़ किया हुआ है। जिस कारण हर एक मानुष की तृप्ति किसी हालत में नहीं हो रही है। यह ही दुर्गम चक्र प्रभु माया का अद्भुत स्वरूप है। ऐसे अग्नि स्वरूप भयानक चक्र से छूटने के वास्ते केवल दृढ़ निश्चय से सत परायण होना और मानसिक वासना की अधिकता को त्याग करके सहज जीवन को धारण करना यानी सादगी, सत्य, सेवा आदि महा गुणों को ग्रहण करना और जीवन यात्रा का परम कर्त्तव्य केवल सत और त्याग के निर्मल अर्थ का पालन करना, निश्चय करके ऐसा जानना और धारणा करनी ही परम शाँति और यथार्थ प्रेम के देने वाला साधन है। यह ही दृढ़ता परम गुणी पुरुषों ने धारण करके अपने आपको सत शाँत किया और दूसरे जीवों के वास्ते भी एक कल्याण का आदर्श सरूप बने। ऐसे ही तमाम सज्जन पुरुषों का कर्त्तव्य यह ही है कि अपने आप को कल्याण के मार्ग में दृढ़ करते हुऐ जीवन यात्रा को व्यतीत करें। तब ही इस अन्धकारमयी वासना के झंझट से छुटकारा प्राप्त हो सकता है और आम मानुषों में निष्काम भावना से

परस्पर प्रेम प्रगट होकर सर्व शान्ति प्रकाशती है और यह ही धारणा निर्मल स्वराज्य और अहिंसावाद की सार को प्राप्त करती है। ऐसी यथार्थ जीवन की क्रिया को दृढ़ करके अपने आप को निर्मल अहिंसा-वादी बनाना हर एक मानुष का परम कर्त्तव्य है और यह ही कल्याण-कारी निर्मल जीवन है।

(च) "सत जीवन स्थिति"

बचन (१) इस संसार की जीवन यात्रा में तो सब प्राणी मात्र वैसे जीवित ही हैं और शारीरिक वासना में अति आसक्त हो कर अपनी जीवन क्रिया को अधिक विस्तार पूर्वक फैला कर आरज़ी खुशी और दायमी रंज को प्राप्त करके अपने आप में हर वक्त दुखित रहते हैं। यह ही अद्भुत माया का चक्र और काल संकट है।

बचन (२) सो ऐसे ही इस मानसिक दुख की निवृत्ति न होने के कारण जीव को शारीरिक जीवन इच्छा का अधिक मोह बना रहता है और शरीर के अन्त समय अधिक पश्चाताप को प्राप्त होता है, यानी अपूर्ण सृष्टि से तृषावंत ही जाता है। ऐसी जीवन यात्रा को विचार करके गुणी पुरुष नित ही सत परायण हुऐ हैं। यानी निष्काम कर्म द्वारा प्रभु इच्छा को दृढ़ करके निर्मान हो कर जो सत जीवन का पालन करते हैं, और अन्तर विषे निर्मल विश्वास करके एक प्रभु नाम के सिमरण को दृढ़ करते हैं। वह ही परम तपस्वी और दृढ़ अनुरागी पूर्ण पद की प्राप्ति कर के यानी सत स्वरूप को अनुभव करके सत सन्तोष को प्राप्त होते हैं। उनका ही जीवन दुर्लभ है। जो इस संसार की यात्रा में तृप्त हुए हैं।

बचन (३) इस वास्ते सब गुणियों को इस जीवन यात्रा के सही अंजाम को समझ कर नित ही अपने आपको निर्द्वन्द्व स्वरूप अविनाशी तत्त्व में स्थित करना चाहिये और दृढ़ निश्चय से अन्तर मुख में एक परम पुरुष का ही सिमरण ध्यान करना चाहिये। इस परिपक निर्मल स्मृति को प्राप्त करके ही जीव निर्वास आनन्द अविनाशी शब्द में विश्राम

पाता है, यानी कर्म वासना से निर्बन्धन हो कर परम शांति निर्वाण को प्राप्त होता है। यह ही सत्य परम कल्याणकारी और गुरमुख जीवन है, जिससे जीवन में सत स्थिति प्राप्त होती है। सब प्रेमियों को सत अनुराग और जीवन उज्ज्वलता का प्रयत्न प्राप्त होवे।

[छ] "जीवन सार सिद्धान्त"

मनुष्य की ज़िन्दगी दुरुस्त विचार हासिल करने की ख़ातिर है न कि लकीर की फ़कीरी में फँसे रहने की ख़ातिर। ब्राह्मण जाति का वह आदर्श जो कि आसमान पर चमक रहा था आज पाताल की तरफ़ जा रहा है। इस का कारण क्या है। इस को अच्छी तरह विचार करें। इस कमज़ोरी का कारण यह है कि आत्मिक उन्नति जो कि असली धर्म का स्वरूप है, अलोप हो गई और ब्राह्मण कई तरह के तोहमात (वहमों) में मुस्तग़र्क़ हो कर अपनी सामाजिक शक्ति और बुद्धि बल को खो बैठे। ज़माने की हालत को देख कर असलियत की तरफ़ करवट बदलनी चाहिये जिससे कमज़ोरी का कतई नाश हो जावे। सब से पहिले इन विचारों की तहक़ीक़ात करनीं चाहिये।

१. पैदाइश का कारण क्या है? यानी जीव को देह क्यों कर मिली?

२. यह तहकीकात करनी चाहिये कि देह और जीव का क्या सम्बन्ध है?

३. देह के नष्ट होने पर जीव की क्या हालत होती है?

४. देह की क़ैद से मुख़लिसी (छुटकारा) कैसे मिलती है।

५. देह और संसार का क्या भेद है?

६. देह का असली स्वरूप क्या है? और जीव का असली स्वरूप क्या है?

७. जितने भी महा पुरुष दुनियाँ में हैं, उनके उपदेश को सुन

कर धारण करने में कल्याण होता है ? या महज उनके दर्शन भेंट से ?

८. क्या जीव का कल्याण करने वाला उसका अपना कर्म है जो श्रवण, मनन और निध्यासन में लाया जावे या दूसरे का साधन जिसका अनुभव ही न हो ?

९. गति किसको कहते हैं, गति देह की होती है या जीव की ?

१०. जीव के कल्याण का यथार्थ साधन क्या है ?

११. धर्म नीति और रिवाज के भेद का विचार और रिवाज के सुधार का यत्न करना।

१२. ईश्वर की परस्तिश और भक्ति किस लिये की जाती है। जो ईश्वर से मुनकिर हैं। उन को क्या कमी (हानि) है ?

१३. सत पुरुषों का उपदेश क्या है ? और सत पुरुष बनाने वाले कौन कौन से असूल हैं और सत पुरुषों की पूजा का क्या सिद्धान्त है ?

अब सुन्दरता वाला सवालात के जवाब को मुतालआ करें और विचार करें कि हमारा रवैया (तर्जेअमल) क्या है और हमारा धर्म क्या कहता है। अपनी बुद्धि को विचार में गर्क करो। तब असलियत को पाओगे।

१. जीव के देह धारण करने का कारण कामना यानी ख्वाहिश है। जिस वक्त कामना अन्तःकरण में प्रगट हुई उसी वक्त देह की कैद में जीव आ गया यानी देह स्वरूप को धारण करके अपनी कामना पूर्ण करने की कोशिश करने लगा। इस कामना का नाम ही माया भ्रम है।

२. जीव और देह का सम्बन्ध मालिक और मकान के मुताबिक है, यानी शरीर रूप मकान में जीव रूप मालिक है। गीता के आठवें अध्याय में अधिभूत, अधिदेव, अध्यात्म स्वरूप प्रकृति का मालिक अधियज्ञ स्वरूप जीवन शक्ति का ब्यान है इसका विचार करें।

३. देह के नाश होने से जीव दूसरी देह को धारण करता है उसी क्षण में अपनी ख़्वाहिश के मुताबिक, यह उपदेश अर्जुन को श्री कृष्ण जी ने समझाया है कि जैसे मानुष पुराने कपड़े उतार कर नये धारण कर लेता है, उसी तरह एक देह से दूसरे देह में जीव प्रवेश करता है। नग्न हालत यानी बग़ैर योनी प्रवेश के एक लमह भी अलग नहीं रह सकता।

४. देह की क़ैद से जीव को मुक्ति निष्काम कर्म से मिलती है। गीता का सारा लुबे लुबाब (सार) यह ही है और तमाम ऋषियों और पैग़म्बरों का सिद्धान्त भी यही है यानी कामना युक्त कर्म देह के भोगों में आसक्त करते हैं। निष्काम कर्म देह की कामना से आज़ाद करते हैं। जैसे तमाम सत् पुरुषों का जीवन।

५. देह और संसार का कोई भेद नहीं है, यानी देह धारण करने से संसार का निर्वाह चलता दिखाई देता है। देह के नाश होने से ज़ाहिरी संसार अलोप हो जाता है। देह और संसार का एक ही रूप है। देह करके संसार है असलियत में संसार कोई चीज़ नहीं है। जैसी जिसकी देह है वैसा ही उसका संसार है। इसलिये देह पर काबू पाने से संसार पर काबू पाया जाता है। यह निश्चय करें।

६. देह का असली स्वरूप मजमुआ कर्म है। जीव का असली स्वरूप कर्मों का भोगता होना है। जब तक कर्मों का कर्त्ता अपने आप को मानता है तब तक जीव रूप होकर सुख और दुःख पाता है। जिस वक्त कर्त्ता भाव से आज़ाद हो गया उस वक्त समता स्वरूप ब्रह्म शक्ति में लीन हो गया (जैसे बर्फ़ और पानी का भेद)

७. जितने भी सत् पुरुष संसार में आये हैं—उनका सत् उपदेश ग्रहण करने से कल्याण होता है, महज़ दर्शन से कुछ नहीं होता। दुर्योधन, केकई और भी लाखों मिसालें मौजूद हैं, अगर महज़ दर्शन से ही कल्याण होता तो अर्जुन में कायरता पैदा न होती, और श्री

कृष्ण को उपदेश न देना पड़ता। इसलिए सत उपदेश को धारण करने की कोशिश करें। यही उसकी पूजा है और उसी में कल्याण है, विचार करें।

८. जीव के कल्याण करने वाला उसका अपना कर्म है। दूसरे (महापुरुष वगैरह) उसे ईश्वरीय कानून से छुड़ा नहीं सकते। जो इस सहारे पर हैं कि हम खुद नेक न बनें और पुत्र वगैरह या कोई पण्डित निजात दिलायगा। वह महज मूर्ख हैं। अपनी करनी से कल्याण है और अपनी करनी ही बन्धन रूप है। यह मसला कर्म है। अगर दूसरा कोई गति दे सकता होता तो जिन्दगी में नेक कर्म करने की कोई जरूरत न थी और श्री कृष्ण को कर्म योग के समझाने की अर्जुन को जरूरत न पड़ती। तमाम सत पुरुषों का सिद्धान्त है कि जीव को अपनी करनी से सुख-दुःख होता है और कर्म फल को कोई मिटा नहीं सकता यही मसला आवागमन है। अपनी करनी करके असलियत की पहचान करो, अपने सत् बुजुर्गों की हदायत के मुताबिक।

९. गति के माने कल्याण के हैं। देह की गति यही है कि आग में जला दी जावे, मिट्टी में दबा दी जावे या पानी में बहा दी जावे। हिन्दू फ़िलास्फ़ी में जलाना श्रेष्ठ माना गया है जीव की गति अपने कर्म अनुसार है, दूसरा कोई शक्ति नहीं रखता।

१०. जीव के कल्याण के वास्ते सत कर्म की धारणा है यानी खुराक, लिबास, विचार, संगत, और कोशिश नेक होवे जिससे जीव असली स्वरूप को प्राप्त हो जावे यही असली गति है।

११. धर्मनीति यानी जिन्दगी और मौत का कानून अटल है और हर एक मुल्क और मजहब के वास्ते बराबर है यानी जीव मात्र का देह धारण करना और भोगों में गिरफ़्तार होना और इस से निजात हासिल करना एक ही धार पर है। दूसरा पहलू रिवाज का है यानी वक्त के मुताबिक सोसायटी के लिये नियम, रिवाज, हमेशा बदलता रहता

है जिस तरह वक्त बदलता है उसी तरह रिवाज भी बदलता रहता है मगर धर्मनीति अटल है।

१२. ईश्वर की भक्ति जन्म मरण संसारी दुःखों से छूटने के लिये है जिससे जीव ख़्वाहिश के अज़ाब (दुःख) से छूट कर असली खुशी को हासिल कर लेवे जो हमेशा कायम है और निज आनन्द है। जो आदमी संसार की कामना की खातिर भक्ति करता है। वह भक्ति असली खुशी नहीं दे सकती। यह अच्छी तरह विचार करें। जो ईश्वर को नहीं मानते वह भी दुनियावी खुशी व ग़मी में घिरे रहते हैं। ईश्वर का मानना महज़ निजात (मुक्ति) की खातिर है।

१३. सत पुरुषों का सत उपदेश अपनी आत्मिक उन्नति के लिये है। यानी पाप कर्मों से छूट कर सत्कर्म की साधन करनी। उनका उपदेश मानना ही असली पूजा है। नेक कर्म करके वह खुद सत्पुरुष बने। निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, नेहचलता और उपकार यह गुण साधन करने और धारण करने सत्पुरुषों का जीवन है। यह ही उनकी हिदायत है और इस पर अमल करना उनकी सच्ची पूजा है।

[ज] "सत् शिक्षा"

वचन १. संसार की गर्दिश को सही विचार करके हर वक्त अपने आप को निर्मल शाँति के मार्ग पर दृढ़ करना चाहिये और इस नाशवान शरीर की यात्रा में निहायत उस कर्त्तव्य को पालन कर के अपने जीवन को प्रकाशमयी बनाना चाहिये, यह ही मानुष जन्म का परम लाभ है। ईश्वर नित सत्यपरायणता में दृढ़ विश्वास देवे। जीवन की निर्मल सार यह है कि समता के सही अनुयायी बन कर अपने आप की पहिले रहनुमाई करनी फिर दूसरों की कल्याण में यत्न करना यह ही परम कर्त्तव्य है। ईश्वर ऐसा ही दृढ़ पुरुषार्थ देवे।

वचन २. सत्यपरायणता को छोड़ कर केवल असत् परायण होना यानी पूर्ण निश्चय से भोग मयी जीवन की ही स्थिति धारण करनी। उस का नतीजा यह ही होना है कि अधिक वासना के जाल को फैला कर नाना प्रकार के सुख भोग प्राप्त कर के भी मानसिक शाँति प्रतीत नहीं होती जैसा कि आज कल के समय का चक्र चल रहा है। न राजा को शाँति है न प्रजा को बल्कि दिन बदिन अपने अधिक लालच के फैलाव में आकर नकशीकन हर एक मानुष एक दूसरे का बाधक हो रहा है। ऐसे भयानक समय को विचार करके गुणी पुरुषों का फर्ज है कि अपने मानसिक भाव को सत्यपरायणता में पूर्ण दृढ़ करने का यत्न करें, यानी अपने बढ़ते हुए लालच को त्याग कर के जीवन धारा की मुनासबत को धारण करें। मन वचन और कर्म द्वारा सब जीवों की कल्याण का निश्चय दृढ़ करें तब ही सत् भावना की दृढ़ता से मान-

सिक शाँति प्राप्त हो सकती है जो कि हर एक जीव की अन्दरूनी चाहना है और ऐसा यत्न ही मानुष जन्म का परम कर्त्तव्य है।

वचन ३. भय से ही मन सत्परायण होता है इस वास्ते मौत का भय या ईश्वर का भय मानुष के वास्ते होना लाज़मी है। ऐसे भय की दृढ़ता से ही भाव पैदा होता है यानी अपनी जीवन उन्नति का विचार प्रगट होता है और भाव से भक्ति और भक्ति से निर्मल प्रेम प्राप्त होता है। यह ही दृढ़ता मानसिक शाँति के देने वाली हैं। ऐसा निश्चय होना चाहिये। इसके उलट जितना जिसका मन अति मद को धारण किये हुये रहता है। और विकारों से डरता बिल्कुल नहीं है उतना ही वह मानुष दुराचारी और पतित कर्मों में अपने आप को नित ही जलाता रहता है और परम दुःखी रहता है। एसा विचार हर वक्त हृदय में धारण करना चाहिये और एक प्रभु का भय चित्त में रख कर नित ही सत् धर्म परायण होना चाहिये। यह ही पुरुषार्थ सत् शाँति को देने वाला है। ईश्वर सत् बुद्धि देवे।

[झ] "मार्ग धर्म में गुरु शिष्य सम्बन्ध"

मार्ग धर्म का कठिन है, सहजे नहीं नर पाई ।
मत कोई चालो धर्म के मार्ग यहाँ देखना सीस लगाई ॥
गुरु तो पाया प्रेम अहारी, नित ही प्रेम को खाये ।
अन्न पानी की सेवा कर के शिष्य गुरु को पतियाये ॥
कह विद्धि सांझ बने दोनों की नहीं मोल तोल चुकाये ।
वस्त कहीं ढूंढे कहीं जतन अकार्थ जायें ॥
सीस लिये बिन नहीं गुरु पतियाये कठिन सांझ यह भारी ।
गुरु मुख हो के रमज पछाने तब लेखा सुखकारी ॥
सन्मुख दर्शन नहीं जन कीजे पाछे प्रेम लगायें ।
जब खेले तब हार को पावे मनुआं नित पछतायें ॥
समझ सोच के सांझ बनाओ दोहां धिरां दी मीता ।
लेखा पूरन पूर होवे तब जीवन हो सुख रीता ॥
सिर सिर बाजी उठ के खेलो छोड़क जंगल वासा ।
सत् गुरु सेवा नाम की पूजा कीजे, बन्ध खुलासा ॥
गुरु मुख जीवन जग में पाओ सांझ को तोड़ निभाओ ।
मंगत कीरत निर्मल जग में लख लख तुम समाओ ॥

(ञ) "स्त्री पुरुष जीवन सम्बन्ध"

(i) पतिव्रत धर्म

पतिव्रत के धर्म को जो तिरिया पाले नित ।
पूर मनोर्थ तिस के जो धारे सत परतीत ॥

प्रभु स्वरूप सम जान के निज पति पूजे जो नार ।
सत आज्ञा नित पालन करे नित राखे सत आधार ॥

पति कुटुम्ब की दासी होवे प्रेम से सेव विचारे ।
शरम पत पूरन चित राखे नित निर्मल बचन उचारे ॥

ग्रह धर्म का पालन करे अति प्रीति को धार ।
सत संगत से प्रीत करे नित राखे चित उपकार ॥

सत धर्म का जीवन पावे सो सतवन्ती नार ।
अधिक सुख प्राप्त होवे देव पाये परिवार ॥

नित सतवादी, नित परउपकारी, नित सादा रहनी धारी ।
पति आज्ञा में मन तन अरपे पावे पतिव्रत सो नारी ॥

जग जीवन होये देव समाना यश कीरत बहु पाई ।
"मंगत" माता जगत की सो नारी नाम धराई ॥

(ii) "पुरुष धर्म"

सदाचारी मन सुशील गुरु भगत नित होवे ।
एक प्रभु का राखे विश्वासा नित निर्मल कर्म परोये ॥
गृहस्त धर्म का पालन करे नित साँची नीति धार ।
गुरु बचन में प्रीत रक्खे निर्मल सुने विचार ॥
अपनी देह का अंग नित निज नारी को जाने ।
धर्म युक्त होवे सेवा करे यह नीति सार पिछाने ॥
पर नारी सम मात पिछाने नित संगत साची धारे ।
अहार पवित्र विचार नित निर्मल नित साँचा करे व्यवहारे ॥
मात पिता की आज्ञा माने नित चित से सेवा कीजे ।
पर उपकारी जीवन राखे सर्व जियाँ सुख दीजे ॥
सादा जीवन नित ही राखे प्रभ चरनी प्रीत विचारे ।
आज्ञा प्रभ में सब कुछ देखे दृढ़ निश्चा यह धारे ॥
धर्मयुक्त परिवार बनावे नित साची रहनी रहावे ।
दीन दुखी की सेवा कीजे जग जीवन सार लखावे ॥
कठिन मार्ग यह ग्रहस्त का मीता जो धर्म सहित नित धाई ।
"मंगत" देव स्वरूप सो जग में नित पावे सुख अधिकाई ॥

(ट) भूत प्रेत पर विचार

बीमारियाँ तीन प्रकार की होती हैं :—

१. आधि :—जो मन की कल्पना से उत्पन्न हुई हों।

२. व्याधि :—जो शरीर के तत्वों के बिगड़ने से प्रगट हों। जिनको आम बीमारियाँ कहते हैं।

३. उपाधि :—जो बाहिर से शरीर पर कष्ट प्राप्त होवें, कोई जख़्म आ जावे या गिर पड़े या किसी बैरूनी ताल्लुक से खेद प्राप्त होवे।

(१) आधि रोग यानी मन की कल्पित जो बीमारियाँ हैं, बहुत ग़म, बहुत भय, बहुत गुस्सा और बहुत खुशी से मन बुद्धि अपने असल उसूल को छोड़ कर ग़शी में चली जाती हैं और हालते ग़शी में तरह तरह के वाक्यात ब्यान करती है। उस बेहोशी हालत को जिन्न, भूत, पिशाच, देव, परी आदि नामों से लोग पुकारते हैं। दरअसल अति पाप कर्मों का जब अन्दर ज़ोर हो जाता है उस वक्त वह पाप कर्म ही भय देने वाले हो जाते हैं। ज़्यादा ग़म, ज़्यादा भय, ज़्यादा गुस्सा, ज़्यादा खुशी से यह हालतें होती हैं, उनका इलाज भी यह ही है कि जिस तकलीफ़ से यह हालत हुई हो वह दूर होवे। बाकी जो जिन्न वग़ैरा निकालना है, वह भी एक ढंग है, जिससे बीमार की बुद्धि पर अच्छा असर पड़े और उस भय से निर्भय हो जावे। यह कई एक तरीके हैं। मगर यह सब मन के तोहमात हैं, और पाप कर्मों की हालत है। इन

सबका बड़ा इलाज सतकर्म और ईश्वर नाम सिमरण है। इन तोहमात पर मोतकिद (विश्वासी) होने से बुद्धि ज्यादा कमजोर हो जाती है और उल्टी भ्रमों में फंसकर ईश्वर हस्ती से मुनकर हो जाती है और ज्यादा ऐसे अज़ाबों (दुखों) में ग़िरफ्तार हो जाती हैं। इस वास्ते बिल्कुल इन वहमों को दिल में जगह न देनी चाहिये जिससे कभी भी ऐसी हालत तारी न होवे। महा पुरुषों ने इस मन के आधि रोगों की खातिर केवल उपाय शुद्ध आचार बतलाया है और कभी भी इन तोहमात की कथा प्रसंग श्रवण न करें। जिससे बुद्धि बलवान रहे। ऐसी बीमारियाँ मन के भ्रम से होती हैं। अपनी अनार्थक कल्पना जिन्न, भूत के स्वरूप में दिखलाई देती है। कोई खास स्वरूप नहीं है। जो इन तोहमात को ज्यादा तसव्वुर में लायेगा ज्यादा तकलीफ पायेगा। इस वास्ते हर घड़ी ईश्वर विश्वास और नेक कर्म धारण करने चाहियें। जब ऐसी हालत किसी पर तारी हो जावे उस वक्त सतपुरुषों के नाम की दोहाई के मन्त्र वगैरह भूत के निकालने वाले पढ़ते हैं और कुछ धूप वगैरह देते हैं जिससे बुद्धि फिर निर्भय हो जाती है। यह निश्चा करे कि सत् पुरुषों के नाम की इतनी बरकत है, जिससे बुद्धि फिर अपने असली स्वरूप में आ जाती है। आखिरी फैसला यह है कि पाप कर्मों से बुद्धि कमजोर होकर ऐसे रोग में मुब्तिला हो जाती है। कई नामों से लोग इन बीमारियों को पुकारते हैं। तमाम शारीरिक मानसिक बीमारियों का इलाज ईश्वर विश्वास और नेक कर्म हैं। हर वक्त धर्म परायण होना चाहिये जिससे मन में कभी भी खौफ पैदा न होवे और ना ही बुद्धि ऐसी हालत में मुब्तिला होवे। यह निश्चय कर लेवें। जिन्न, भूत वास्तव में कोई चीज नहीं है। यह अपने मन की विपरीत कल्पना का स्वरूप है। गाह बगाह कोई जीव ऐसी हालत में मुब्तिला होता है। शारीरिक रोग जो इस किस्म के होते हैं, वह सत् पुरुषों के नाम की दुहाई और धूप दीप सत्संग से जाते हैं। यह कोई अहम मसला नहीं है। अपनी बुद्धि के मुताबिक कुछ

न कुछ लोग समझते हैं। मगर यथार्थ निर्णय यह ही है कि मन का भयभीत हालत में हो जाना। हर वक्त धर्म परायण जीवन जो रखने वाले हैं और इन तोहमात को दिल में जगह नहीं देते हैं। वह कभी भी इस भयंकर हालत को प्राप्त नहीं हो सकते हैं।

(ठ) "नवधा भक्ति का निर्णय"

नौ प्रकार की जो भक्ति है वह सब अन्तर्मुखी मन की भावना अनुकूल आत्मदेव की पूजा है। सिर्फ अज्ञानी लोग बहिर्मुखी उन असूलों को अपना कर ही भक्ति मान बैठे हैं। मगर बगैर सत विचार के मानसिक दोष नाश नहीं होते हैं और न ही निष्कामता चित्त को प्राप्त होती है। खवाहे बाहिर्मुखी कितने ही ठाठ क्यों न बना लेवे। जितने भी गुणी पुरुष सत शांति को प्राप्त हुए हैं, वह सब अन्तर्मुखी निर्मल भक्ति को प्राप्त करके ही निर्भय हुये हैं। अन्तर्मुखी नवधा भक्ति को धारण करना असली पूजा है बाहिर्मुखी सब नकल है। इससे निर्मल शाँति प्राप्त नहीं होती। इस वास्ते अन्तर्मुखी नवधा भक्ति का सार निर्णय यह है:—

(१) **श्रवण**—यानी शरीर और संसार को निश्चय करके नाशवान् देखना और आत्म तत्त्व को सर्व व्यापक और अविनाशी जान कर नित ही सत्संग द्वारा महिमा श्रवण करनी और अन्तर विषे शब्द को सत यत्न करके श्रवण करना जिस करके मन सब कर्म विकारों से निर्मल हो कर स्थिरता को प्राप्त हो जावे।

(२) **कीर्तन**—जब अन्तर्मुख सत शब्द को श्रवण किया, तब बुद्धि सब संसार को तुच्छ जान कर उस परिपूर्ण तत्त्व को अनुभव करके अति ही महिमा विचार करती है और प्रेम में आकर मन बचन कर्म द्वारा उस निर्भय आनन्द को प्रगट करती है। सत पुरुषों के जीवन से अकसर ऐसी लीला का पता लग ही जाता है। मन करके निर्मानता और उदासी

बचन करके अति उस्तत का विचार प्रगट करना । खवाहे साधारण भाव से कर्म करके सब जीवों को सुख देना और अंतर से निर्लेप रहना । यही असली प्रभु कीर्तन है जो कि तत्व ज्ञानी के जीवन से ही अनुभव हो सकता है । वैसे कई डूम और भाँड नाच-नाच कर अद्भुत लीला प्रभु की प्रगट करते हैं मगर बहिर्मुखी होने से थोड़े ही समय के अन्दर सब रस जाता रहता है । कई बड़े-बड़े प्रसिद्ध महात्माओं ने प्रभु लीला को राग द्वारा गायन किया । वह तब ही हुआ जब उनके अन्दर प्रभु का राग अखण्ड शब्द अद्‌भुत स्वरूप से प्रगट हुआ और हृदय में समाई न खाने के कारण उन सत पुरुषों ने राग तथा विचार के स्वरूप में बाहिर लीला को प्रगट किया । उसके आनन्द को वह खुद ही जानते हैं, मगर संसारी जीव अन्र्तमुखी भेद को न जानते हुये बाहिर से नकल बना कर अपना समय गंवा देते हैं । असली कीर्तन को प्राप्त नहीं होते कि जिस को प्राप्त करके फिर दूसरी वस्तु का मोह नहीं रहता । अन्र्तमुखी कीर्तन जिनको प्राप्त हुआ है, वह ही निर्मल कीर्तन के भेद को जानने वाले हैं बाकी सब दिखलावा और मन परचावा है । न ही नकल से प्रभु प्रसन्न होते हैं और न आन्तरिक शाँति प्राप्त होती है । सिद्ध पुरुषों का राग और प्रेम में आ कर बेसुध हो जाना, इस गति को वह खुद ही जानते हैं । जो उनकी नकल उतारने वाले होते हैं और आंतरिक भेद को यानी शब्द कीर्तन को नहीं जानते वह अकसर दम्भ करके लोगों को गुमराह करने वाले और ठगने वाले होते हैं, उनका प्रभाव प्रभु भक्ति को नाश करने वाला होता है । आज कल इस नकली कीर्तन का बड़ा प्रभाव फैल रहा है । बताओ कितने एक जीव निर्मोह हो कर प्रभु अनुराग में सत शाँति को प्राप्त हुये हैं । कई पाखंडी नकली कीर्तन करके लोगों को भरमा कर कुछ न कुछ आखिर दम्भ ही करते पाये गये हैं । सार विचार यह है कि पहिले अन्तरमुखी शब्द को अनुभव करें फिर उसका कीर्तन यथार्थ रूप से प्राप्त होगा, जिसको प्राप्त करके हर समय राग अनुराग में लीन रह कर दुनिया को भूल जाओगे । वोह ही हालत निर्भय शाँति की

है। कोई ही गुरमुख इस निर्मल भेद को जानता है और निर्मल कीर्तन रूपी भक्ति को प्राप्त होता है—गौर करके यह विचार करें।

(३) सिमरण—यानी अन्तर्मुखी हो कर सर्व महिमा को हृदय में स्थित करके उस अखण्ड आत्म तत्व का सिमरण करना। इसका विस्तार आगे बहुत दफा हो चुका है। सिमरण का सार निर्णय यह है कि जिसको सिमरते हुये उसी का स्वरूप हो जावे, ऐसा सिमरण प्रभु का करने से सब पाप नाश हो जाते हैं। कोई ही परम सन्त इस सिमरण भक्ति को जानता है या प्राप्त हुआ है।

(४) पाद सेवन—पाद सेवन का निर्णय यह है कि तमाम जीवों को प्रभु का स्वरूप जानना और हृदय से सब के चरणों की सेवा करनी, यानी सबको प्रसन्न करना। ऐसी निष्काम प्रीति से जो जीवों को सुख देता है और प्रेम करता है, वह ही प्रभु के पाद-सेवन करने वाला है। यानी सर्व-व्यापक एक अखण्ड स्वरूप का अनुभव करके तब ही तन, मन, धन से सब जीवों को जो सुख देता है, वह ही समदर्शी पुरुष प्रभु पाद-सेवन भक्ति को प्राप्त करके प्रभु रूप हो जाता है।

(५) अर्चन—का निर्णय यह है कि क्षमा, दया रूपी धूप से सब जीवों के हृदय को प्रसन्न करना और चित्त में अधिक निर्मानता को धारण करना। ऐसी अर्चन रूपी भक्ति को जो प्राप्त हुआ है, वह ही ईश्वर की लीला को जानने वाला है और परम भक्त है। यानी आन्तरिक में आत्म स्वरूप में सदैव काल अचल रहता है। संसारी मोह, माया का जाल उसको लेप नहीं कर सकता। कोई ही इस निर्माण और निष्काम अर्चन रूपी भक्ति को पाता है।

(६) वंदन—का निर्णय यह है कि सब संसार को विनाशी समझ कर एक अविनाशी तत्व को अविनाशी जानकर वन्दन करना और सब जीवों में उसका प्रकाश समझ कर सबके चरणों की धूल को दुर्लभ जानना ही असली बन्दना है। कोई ही परम योगी इस बन्दना रूपी

भक्ति को प्राप्त होता है। ऐसी निर्माण गति को जो प्राप्त हुआ है वोह ही त्रिगुण माया के जाल से निकल कर आत्म स्वरूप में लीन हो जाता है।

(७) दास्य भाव—भाव का निर्णय यह है कि जो कर्त्ता हर्त्ता प्रभु को जानकर हृदय में नित ही निर्माण भाव से प्रभु का ध्यान करता है वह ही अखण्ड शब्द को अनुभव कर सकता है। यानी दास भाव में दृढ़ हो कर सर्वनाथ को प्राप्त होता है।

(८) सखा भाव—का निर्णय यह है कि शरीर का साक्षी नित प्राप्त एक आत्मा को जानना। वोह ही परम मित्र तीन काल रक्षक समझना। यह ही भाव सखा भक्ति है।

(९) आत्म निवेदन—का निर्णय यह है कि अन्तर बाहिर सर्व स्वरूप एक आत्मा को अनुभव करना। आपापर के भ्रम को हृदय से नाश कर देना। यह अवस्था आत्मा निवेदन की है, यानी कैवल स्वरूप एक आत्मतत्व को ही जानना।

यह सब अंग भक्ति के हैं। जो भी अंतर्मुखी साधन करने वाला है, वह ही इन तमाम भावों सहित होकर आत्म स्वरूप में लीन हो जाता है। निर्मल चित्त से विचार करें। बाहिरमुखी भक्ति के अंग धारण करने से निर्भय स्वरूप नारायण प्राप्त नहीं हो सकता, जब तक कि भक्ति रूपी सूरज हृदय में प्रकाश न करे। जो भी आत्मदर्शी पुरुष हुआ है, या होगा, उन सबमें यह भक्ति के अंग मौजूद होते हैं। दुर्मति को नाश करने के वास्ते यह भक्ति रूपी सार साधन है। जो भी निर्मल चित्त से अन्तर्मुख होकर प्रभु परायण होता है, वह ही भक्ति के निर्मल भेद को जान सकता है—इस निर्णय के अलावा सब दिखलावा है और अंधकार है। निर्मल चित्त से विचार करें। निर्मल भक्ति का सार स्वरूप यह है कि निष्काम भाव से सब कर्म आत्म समर्पण करके और निमष २ करके एक

नाम का सुमरण करना, दुख सुख प्रभु इच्छा में देखना, ऐसी दृढ़ भावना से देह मद का नाश हो जाता है, जो परिपूर्ण अविनाशी पद है। जो खोज करता है, वह पाता है। वैसे कथनी से कुछ हासिल नहीं होता। प्रभु अमली जीवन देवें।

(ड) "समर्पण कर्म"

समर्पण कर्म का निर्णय यह है, कि बुद्धि कर्त्तापन को धारण करके शारीरिक कर्मों में आसक्त होकर के नित ही शुभ-अशुभ कामनाओं के ज़ेर असर होकर कर्म फल द्वन्द्व में अपने आपको बंधायमान करती है। यानी प्रिय और अप्रिय कर्म के फल में नित ही चलायमान होती रहती है। यह ही अवस्था अज्ञानमयी खेद युक्त स्थिति है।

ऐसी स्थिति में अनन्त प्रकार की वासनाओं को धारण करके बुद्धि कर्म फल द्वन्द्व के भोग में अपने आप को अति आसक्त करके नित ही दुख व सुख के भयानक जाल में अधीर रहती है। यह ही अवस्था संसार का पूर्ण रूप और अति अज्ञानमयी परम दुख है। इस अज्ञान के विनाश करने के वास्ते कर्म योग यानी समर्पण कर्म का मार्ग सहज और परम पद निज स्वरूप की स्थिति के देने वाला है, यानी कर्त्तापन जो मूल अशान्ति का कारण है, इसको दृढ़ निश्चय से ज्यों-ज्यों बुद्धि त्याग करके आत्म स्वरूप को कर्त्ता जानती है, त्यों-त्यों कर्म फल द्वन्द्व के खेद से धीरज को प्राप्त होती है, और मलीन वासनाओं से निर्मल होकर के सत्, श्रद्धा, सेवा, अनुराग को प्राप्त करके सत् नाम के चिन्तन में दृढ़ होती है।

जब सत नाम परायणता में बुद्धि नेहचलता धारण करती है, यानी लमह ब लमह सत नाम के चिन्तन में प्रवीण होती है और तमाम शारीरिक कर्मों का फल प्रभु आज्ञा में समर्पण करती हुई केवल निमित मात्र कर्म करती है, तब ऐसी दृढ़ अनुराग सहित उपासना को प्राप्त कर

के अपने आप में परम एकाग्र और शुद्ध हो जाती है और अपने अन्तर में परम तत्व अविनाशी स्वरूप अखण्ड शब्द को अनुभव करके परम शान्त और तृप्त होती है, यानी आत्म स्वरूप जो अखंड, अभेद, अद्वैत, सर्वज्ञ, समस्वरूप, निराकार, निर्वास, नेहकर्म और निर्वाण स्वरूप है उसमें अपने आपको लीन करती है और शारीरिक कर्मों के फल से बिलकुल निर्बन्ध होकर अंतर में पूर्ण शरीर से विलग हो जाती है। यह ही अवस्था नेहचल बुद्धि और समपद स्थिति का पूर्ण स्वरूप है। ऐसी सत स्थिति को जब बुद्धि प्राप्त होती है तब जन्म मरण के चक्र से छूट कर अपने आप में पूर्ण स्वरूप हो जाती है, जो अकथ और अलेख पद है। जिसने इस परम पवित्र अखंड शान्तमयी अवस्था को प्राप्त किया है, यानी अपने निज स्वरूप को अखंड निश्चय से जान लिया है, वह ही पुरुष धन्य है और उसका आनन्दमयी जीवन दूसरों के वास्ते परम कल्याण-कारी और दुर्लभ शिक्षक है। इस अति गुप्त विचार को बार बार विचार करके अपने अंतर समर्पण भावना को दृढ़ करें। ऐसी दृढ़ता से ही बुद्धि निर्वास और निष्पाप होकर के सत स्वरूप को अनुभव कर सकती है। ईश्वर सत परायणता की अधिक श्रद्धा बख्शे।

(ढ) "विश्व शान्ति संदेश"

(१) जब तक जीवन-यात्रा की सही तहक़िक़ात (ठीक खोज) न की जावे, तब तक सही यत्न की प्राप्ति होनी अति कठिन है, और सही यत्न के बग़ैर (बिना) परम शान्ति का प्राप्त होना नामुमकिन (असम्भव) है। इस वास्ते मानुष-जीवन की उच्चता इसी में है कि इस जीवन-रूप संसार को अच्छी तरह से समझ कर अपने आपको सही उन्नत करने का यत्न किया जावे, जिससे जीवन का अंजाम (परिणाम) मुकम्मिल (पूर्ण) शान्ति का सरूप हो जावे।

(२) सार निर्णय यह है कि हर एक मनुष्य तथा पशु तथा जड़ योनी के जीव भी अपनी-अपनी सही शान्ति की खोज में अपनी-अपनी जीवन-यात्रा में यत्न-प्रयत्न कर रहे हैं, मगर गहरी ग़ौर करके देखा जावे तो अंजाम में सब यत्न नामुकम्मिल ही प्रतीत हो रहा है। बल्कि कई गुना ज़्यादा अशान्ति का ही सामना करना पड़ता है—यह ही परम खेद स्वरूप संसार का अद्भुत चक्र है। इस में सही तहक़ीक़ात जो परम शान्ति, परम तृप्ति और परम निर्भयता के देने वाली है, वह तहक़ीक़ात असली है। नहीं तो तमाम यत्न-प्रयत्न जो कि शान्ति के वास्ते दिन-रात सब कर रहे हैं, अकारथ ही जायगा—यह निश्चय होना चाहिये।

(३) जीवन निर्णय—बुद्धि अहंकार की मलीनता सहित शरीर रूपी संसार को धारण करके सत् की सत्यता यानी (अर्थात्) जीवन-शक्ति

की सत्यता को भूल कर के असत् को सत् बनाने के यत्न में और असत् में सत् शान्ति की प्रतीति रखती हुई प्रत्यक्ष ब्रह्माण्ड में शरीर द्वारा विचर रही है, यानी जीवन-शक्ति को भूल करके अहंकार की मलिनताई में गिरफ़्तार होकर के शरीर और शरीर के मुख्य भोगों की तब्दीली से इन्कारी करती हुई अति मोह वश हो करके शारीरिक भोगों में अति आसक्त हो करके—सत्-शान्ति की तलाश कर रही है—यह ही अवस्था अज्ञानवाद, नास्तिकवाद, प्राकृतवाद और भोगवाद की है।

(४) बुद्धि ऐसे ही अधिक शारीरिक ममतावाद में गिरफ़्तार हो करके नाना प्रकार के शारीरिक भोगों को एकत्र करने के यत्न में दिन रात लगी रहती है। और सत् शान्ति न प्राप्त होने के कारण अति से अति विस्तार रूप में भोगों को एकत्र करती रहती है। यानी चक्रवर्ती राज्य तक को भी प्राप्त कर लेती है, मगर सत् शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती है—यह ही आश्चर्य जीवन का चक्र है।

बुद्धि इन्द्रियों के भोगों की अति चेष्टा में गिरफ़्तार हो करके ऐसे-ऐसे विलक्षण कर्म करती है, यानी चोरी, कत्ल, जुआ, मनुश्यात (मादक वस्तुओं का) सेवन, दुराचार, छल-कपट आदि महा विकराल कर्मों को धारण करके हर वक्त परम क्लेश-युक्त रहती है— यह ही नरक स्वरूप जीवन संसार है। ऐसे ही विकराल कर्मों के करने से अति अहंकार की जड़ता को प्राप्त हो करके शरीर को विनाश कर देती है, और अधिक क्लेश में ही शरीर से जुदा होती है—यह ही भोगवाद जीवन का नतीजा है।

(५) जिस शान्ति की तलाश में शरीर को धारण किया और अधिक-से-अधिक जद्दोजहद (यत्न-प्रयत्न) की गई, मगर अन्जाम में सब नतीजा नादुरुस्त (अपूर्ण) निकला—ऐसा समझना ही गुणी पुरुषों का धर्म है।

(६) बुद्धि जितनी भी शारीरिक भोगों की आसक्ति में आकर के

बहिर् तत्त्वों की खोज़ में दृढ़ होती है, उतनी ही नये-से-नये अजायबातों (आश्चर्यों) को अनुभव करके अति मोहित होती है और अपने-आपमें नित्य ही अधीर रहती है, यानी तत्त्वों की खोज से अधिक-से-अधिक आश्चर्य मुतालया (अध्ययन) प्रगट होते हैं, जो कि अंजाम में परम दुःख और नाश के देने वाले होते हैं। उन में सत् शान्ति की प्रतीति रखना अति मूढ़ता है। ऐसे अहंकारवाद जीवन के भेद को समझना चाहिये। अगर अहंकारवाद को इस क़दर धारण कर भी लिया जावे, जिससे सूर्य, चन्द्रमा, पवन, पानी आदि ताक़तों पर पूरा-पूरा कन्ट्रोल हो जावे तो भी अन्तर की बेचैनी और अधीरता से छुटकारा हासिल करना ना-मुमकिन है। इस वास्ते इन्द्रियों के भोगों के वश हो करके बाहर के तत्त्वों की तहक़िक़ात करके नए-से-नए सुख-पदार्थ प्राप्त करने में बजाय शान्ति के अधिक-से-अधिक अशान्ति और भय ही प्राप्त होता है—यह निश्चय होना चाहिये जैसा कि आज-कल की साइन्स का असर हरएक के अन्तःकरण में हो रहा है। हरएक मनुष्य बजाय ज़िन्दगी की क़ायमी के ज़िन्दगी को नाश की तरफ़ ले जा रहा है। इस वास्ते इस बैरूनी तहक़िक़ात (बाहिरी खोज) यानी अधिक मादा-परस्ती जिसका नतीजा भयानक अशान्ति, भ्रष्टाचार, अति छल-कपट और अति नाश के देने वाला है, इससे जागृति हो करके यानी मादा-परस्ती की तहक़िक़ात को छोड़ करके जीवन-शक्ति की तहक़िक़ात करनी चाहिये, जिससे असली मुद्दा (लक्ष्य) जो परम शान्ति निर्भय पद का है, वह पूरा हो जाय और यह मानुष-जीवन-यात्रा सफल होवे।

(७) मादा-परस्ती यानी इन्द्रियों के भोगों में अधिक आसक्ति ही परम नाश के देने वाली है। जिस वक्त आम मनुष्य (जन साधारण) ऐसे भोगमयी जीवन में अन्धे हो जाते हैं, उस वक्त अपने अन्तर में बढ़ती हुई तृष्णा की अग्नि अधिक उपद्रव की तरफ़ राग़िब करती है, यानी दूसरे के नाश के यत्न को धारण करती है, तब साथ ही अपनी भी

नाश हो जाती है—यह भयानक भ्रष्टाचार का नतीजा है।

(८) बुद्धि अहंकारवाद में मलीन हुई-हुई पाँच तत्त्वक शरीर में अति जड़ हो जाती है और पाँच तत्त्वों का स्वभाव जो पाँच विकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार हैं, उन में असली शान्ति को प्राप्त करने का यत्न इख़्त्यार (धारण) करती है। जितनी २ इन विकारों में आसक्त होती है, उतनी ही अधिक मलिनताई और क्लेश को प्राप्त होती है, एक लहमा (क्षण) भर भी निर्भय नहीं हो सकती है। यह ही महान कष्ट रूप जीवन-संसार है। इस मादापरस्ती से विकारों की अग्नि अधिक प्रचण्ड हो जाती है और किसी किस्म का भी परहेज और संजम अन्तर में नहीं रहता है, तब मनुष्य एक पशु से भी बदतर हो जाता है और सर्वनाश को प्राप्त होता है। जितनी-जितनी मादा-परस्ती में बुद्धि आसक्त होती है, उतनी ही अधिक जरूरतों को फैला करके अपनी अशान्ति को दूर करने की ख़ातिर दूसरों के सुख को हरण करने का यत्न करती है, मगर शान्ति की बजाए अधिक-से-अधिक अशान्ति को ही प्राप्त होती है—यह असुरवाद जीवन सर्व-संकट का स्वरूप है।

(९) ऐसा भोगवाद, प्राकृतवाद और नास्तिकवाद जीवन के नतीजे को समझ करके अपनी गलत तहक़ीक़ात से बाहोश होकर के जीवन-शक्ति की तहक़ीक़ात में यत्न करना चाहिए। जिससे अन्तर में सत्-शान्ति प्राप्त हो और बाहर भी सत्-शान्ति अनुभव होवे। इस मादा-परस्ती और भोगवाद जीवन को धारण करके जो चौबीस घण्टे अन्तर तृष्णा की अग्नि जलाती रहती है और अधिक बेकरार करती है। ऐसी बेचैनी में गरक हुए-हुए मनुष्य जो बाहर अमन का ढिंढोरा पीटते हैं, वे खुद धोखे में हैं और दूसरों को धोखा दे रहे हैं, यानी अमन का स्वरूप अपने तईं तो अनुभव ही नहीं है, फिर दूसरों के वास्ते अमन का कौन-सा रास्ता हो सकता है। इस वास्ते हरएक मनुष्य का प्रथम धर्म यह है कि अपने अन्तर की बेचैनी को दूर करे और निर्भय

शान्ति को प्राप्त होवे—तब दूसरों के वास्ते उसका जीवन और वचन कल्याणकारी है।

(१०) मनुष्य जब तक मादा-परस्ती की दृढ़ता में दृढ़ है, तब तक पाँच विकार जो असली बदअमनी और बेचैनी का स्वरुप हैं, इनसे छुटकारा हासिल नहीं कर सकता है, बल्कि इन विकारों का बेतरीका इस्तेमाल (प्रयोग) करके अपनी नाश और दूसरों की भी नाश कर देता है—यह ही असुर मार्ग है जो कि सर्व-कीर्ति और उन्नति के नाश के देने वाला है।

(११) जब बुद्धि मादा-परस्ती का नतीजा नाश-रूप और खेद-रूप अनुभव करती है, यानी शारीरिक तबदीली और शारीरिक भोगों की तबदीली को निश्चय से समझती है, जैसा कि प्रकृति का असली स्वभाव है तब इस भोगवाद की आसक्ति से छूटने का यत्न इख़्त्यार करती है—ऐसी बुद्धि वाला ही बाहोश मनुष्य है।

जब बुद्धि को दृढ़ निश्चय से शारीरिक तबदीली प्रतीत होती है, तब शारीरिक दोषों से असंग होने का यत्न करती है—यह ही निश्चय सत्य की तहक़ि़क़ात है।

(१२) ज्यों-ज्यों असत् शरीर का मोह नाश होता है, त्यों-त्यों बुद्धि से अहंकार की मलिन उतरती जाती है और परम विवेक प्रवीण हो करके असलियत की खोज में लग जाती है, यानी नाशवान् शरीर जिस शक्ति से जीवित है। उसके अनुभव का यत्न करती है। जब जीवन-शक्ति का निश्चय अधिक बढ़ता जाता है। तब भोगवाद मादा-परस्ती से असंगता प्राप्त होती है, जो परम शान्ति का ज़हुर (प्रकाश) है।

(१३) आख़िर जब बुद्धि अधिक दृढ़ निध्यासन से जीवन-शक्ति का अनुभव करने का यत्न करती है। तब तमाम इन्द्रियों के भोगों से वैराग्य को प्राप्त होती है। उस वक्त तृष्णा की अग्नि से ठंडक प्रतीत करती है, और अपने-आपमें प्रसन्नता का अनुभव करती

है। ऐसे ही जब अधिक श्रम से अपने-आपको सत्-स्वरूप में अन्तर में नेहचल करती है, तब तमाम अहंकार की मलिन नाश हो जाती है और शुद्ध स्वरूप परम शान्त जीवन-शक्ति आत्मा का बोध होता है। ये ही हालत मुकम्मिल बोध, मुकम्मिल सुख, और मुकम्मिल तृप्ति की है। ऐसी अवस्था को प्राप्त करके पूर्ण आशा-वादी सन्तुष्ट पद को प्राप्त होता है, जो कि वास्तव में हर एक जीव की चाहना है। यह थोड़ा सा विचार नतीजा मादा-परस्ती की तहक़ीक़ात और जीवन शक्ति की तहक़ीक़ात का लिखा जाता है। इस वास्ते सब गुणी सुचेत होकर के असली कल्याण का मार्ग जो जीवन-शक्ति की तलाश का है—उसके परायण होने का यत्न करें, और मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करें, जिस से सर्व का कल्याण होवे। अधिक मादा-परस्ती से अधिक बेचैनी बढ़ती है और इन्द्रियों के भोगों की तृष्णा अधिक प्रचंड होती है जो कि सर्व अशांति का स्वरूप है। इसके उलट जो जीवन शक्ति की तहक़ीक़ात है वह सही त्याग, सही उपकार और परम पवित्रता को सब विकारों से देने वाली है। इस वास्ते सही कल्याण का मार्ग सत्-परायणता को धारण करना ही अपनी कल्याण और सर्व की कल्याण है।

(१४) एक मनुष्य का जीवन तथा सब मनुष्यों का जीवन आन्तरिक अशान्ति में एक ही जैसा है। इस वास्ते जब तक सतवाद का बुनियादी असूल पूर्ण निश्चय से धारण न किया जावे, तब तक निजी जीवन, परिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, तथा राजनैतिक जीवन कभी भी शान्तिमय नहीं हो सकता है। इस वास्ते इस मादावाद के जमाने से बाहोश हो करके सतवाद के मार्ग पर चल करके निर्मल त्याग को प्राप्त करके अपनी बढ़ती हुई जरूरतों को मर्यादा में लाने की कोशिश करनी चाहिये; क्योंकि जरूरतों की अधिकता ही परम अशान्ति और भ्रष्टाचार के फैलानेवाली हैं और तमाम विश्व में अशान्ति का कारण बनी हुई हैं।

(१५) मादा-परस्ती से कभी भी ज़रूरतों की अधिकता कम नहीं होती, बल्कि दिन-बदिन बढ़ती जाती है और तमाम मनुष्यों में शत्रुपन का भाव प्रगट करती है और नित्य ही खेद के देने वाली है। इस वास्ते इस खेद युक्त नामुकम्मिल जीवन के निश्चय को त्याग करके जीवन-शक्ति जो सत्य का स्वरूप है उसके परायण होना और अपनी ज़रूरतों को बिल्कुल कम करने की कोशिश करना ही परम कल्याण और परम पवित्रता के देने वाला यत्न है, चूँकि यह जीवन-निर्णय का प्रसंग अति गुह्य है और इसका वर्णन करते करते कई ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। इस वास्ते थोड़ा-सा विचार तमाम गुणी पुरुषों की भेंट किया जाता है, जिससे वह इस बढ़ते हुए मादा-परस्ती, खुद परस्ती और भोग-परस्ती के सैलाब को रोकने की कोशिश करें। अपने-अपने पवित्र आचरण और सत् गृही निश्चय से, अगर यह सैलाब रोका न गया तो इसका नतीजा एक निहायत विनाश की शक्ल अख़्त्यार कर लेगा, और इस मादीयत की चमक-दमक के ज़माने को एक तारीकी की सही शक्ल में तब्दील कर देगा, क्योंकि मादा-परस्ती का नतीजा अक्सर ऐसा ही होता है। सब गुणी पुरुषों को जीवन की सही तहक़िक़ात में कोशिश करनी चाहिये। जिससे निर्मल त्याग, परहित, निर्भयपन, अखण्ड शाँति निर्वास पद प्राप्त होवे, जो इस जीवन का असली मिशन है।

(१६) केवल सदाचार की दृढ़ता से यानी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकारों पर काबू पाने से ही अपने-आपको शान्ति प्राप्त होती है, ऐसे ही दूसरों को भी पवित्र आचरण की ठंडक से सत् शान्ति प्रतीत होने लगती है। यह ही रास्ता अमन और शान्ति का है। इसके विरुद्ध जितना भी जीवन विकारमयी होता जावेगा, उतनी ही अशान्ति बढ़ती जावेगी और मनुष्य पशुओं से भी बुरे स्वभाव वाले बन करके एक-दूसरे के नाशक हो जावेंगे।

(१७) सदाचार की दृढ़ता केवल सत् परायणता की दृढ़ता से ही प्राप्त होती है। इस वास्ते जो राजा सदाचार का रक्षक होता है और

खुद भी परम उच्च आचरण वाला होता है उसके निर्मल त्याग से सब मनुष्यों के अन्दर शुभ भावनाएँ पैदा होती हैं, और पूर्ण शान्ति का सब में प्रकाश होता है। हरएक एक-दूसरे के कल्याण का चाहक बनता है। ऐसा समय ही देवतों का समय होता है।

(१८) जो सदाचार की उच्चता को नहीं समझते हैं और ऐसा कहते हैं कि लोक-सेवा में अपने ज़ाती (व्यक्तिगत) आचरण की कोई ज़रूरत नहीं है बल्कि लोक-सेवा का प्रोग्राम मुकम्मिल निभाना चाहिए, ऐसे सज्जन प्राकृत मार्ग में बिल्कुल अनजान हैं क्योंकि सब से पहले एक-दूसरे पर असर आचरण का ही होता है। शुद्ध आचरण वाला पुरुष सब जनता के हृदय में निवास करता है और भ्रष्टाचारी चतुर, सब कुछ पब्लिक सेवा करते हुए भी, लोगों के दिलों में उसके जीवन का कोई असर नहीं रहता है बल्कि जिनकी सेवा की जाती है वे ही दुश्मन बन जाते हैं। इस वास्ते इस निर्णय को अच्छी तरह से समझना चाहिये।

(१९) अगर कोई सही उन्नति करना चाहता है तो पहले अपने आपको सत्-परायण बना करके अपने आचरण को अधिक-से-अधिक शुद्ध करने का यत्न करे। तब उसका उच्च जीवन उसके अपने कल्याण और दूसरों के कल्यण के वास्ते परम शिरोमणि हो सकता है—यह ही सत् पुरुषों का मार्ग है। अपने त्याग से और अपनी सत् गृही भावना से दूसरों के अन्दर सत्-त्याग और सत् भावनाएँ पैदा होती हैं जो कि असली शान्ति का स्वरूप है। हर एक मनुष्य अपनी सही मानसिक पवित्रता को प्राप्त करने का यत्न करे, क्योंकि परम सुख और सर्व विजय इसी में है और यह ही अमन और शान्ति का रास्ता है। सब गुणी पुरुषों को यह प्रसंग गौर करके पढ़ना चाहिए और फिर उस पर अमल करने की कोशिश करनी चाहिए तब ही सही जीवन उन्नति के भेद को समझ में पा सकेंगे।

(२०) गो इस अति गुह्य विचार को हर एक सज्जन समझने की

कोशिश न करेगा। मगर फिर भी बार-बार इन विचारों को अपनी आन्तरिक हालत में घटा करके देखें, तो जीवन का सही निर्णय पाएँगे। और इस मादा-परस्ती की विचारधारा को रोकने की चेतावनी दी गई है। जिससे इस भयानक भ्रष्टाचार का नाश होवे, और सदाचारी जीवन की दृढ़ता सब को प्राप्त होवे। और सरब मानुष मात्र में एकता प्रेम प्रगट होवे। जिस करके निर्मल शान्ति से सब गुणी अपनी-अपनी जीवन-यात्रा को मुकम्मिल कर सकें और इस समय को देवताओं का समय बना देवें।

(ग) "राम राज्य का स्वरूप"

१—ज़रूरतों की मुनास्बत यानी ज्यादा नुमायशी, अय्याशी, जिन्दगी से परहेज़।

२—तमाम जनता को आत्म निश्चय की दृढ़ता यानी तौहमात से छुटकारा प्राप्त हो।

३—राज्य सेवक तथा जनता में परस्पर प्रेम हो।

४—राज्य-सेवक निष्पक्ष, निर्लोभ और शुद्धाचारी हों।

५—विद्या का आचरण सदाचारी यानी ब्रह्मचर्य और सादगी सहित हो।

६—स्त्री जाति की आज़ादी एक मर्यादा तक होनी चाहिये। अध्यात्मिक विद्या में स्त्रियों को अधिक दृढ़ता होनी चाहिये।

७—तमाम नशे और नाक़िस गिज़ाओं पर पाबन्दी होनी चाहिये।

८—कारोबार के तमाम सिलसिले मर्यादा और समय की पाबन्दी सहित होने चाहिएँ।

९—विद्या निध्यासन में लड़के-लड़कियों के स्कूल अलहदा अलहदा होने चाहिएँ। एवं सदाचारी जीवन अनुकूल विद्या का प्रबोधन (ज्ञान) होना चाहिये।

१०—हर किस्म की विद्या का जो मुस्तहिक (अधिकारी) होवे उसको वैसी ही सिखलानी चाहिये।

११—राज का बढ़ता हुआ धन ज्यादा से ज्यादा विद्या निध्यासन में खर्च करना चाहिये।

१२—सब जीवों को अपनी सही उन्नति की आज़ादी और सहायता होनी चाहिये।

१३—सत असूलों का ज़्यादा से ज़्यादा प्रचार होना चाहिये, यानी सादगी, सत्य, सेवा, समानता और प्रेम आदि महागुणों का।

१४—राज्य-सेवक निहायत उच्च और पवित्र कर्त्तव्याचारी हों।

१५—अधिक त्याग, अधिक अध्यात्मिक निश्चय, पूर्ण शुद्धाचार, ईश्वर भक्ति और देश भक्ति में अधिक विश्वास, सब जीवों में समानता भाव, राज्य-सेवक और जनता में इन गुणों का होना ही असली राम-राज्य है।

(२) समता ज्ञान मार्ग

ओ३म् ब्रह्म सत्यम् निरंकार अजन्मा अद्वैत पुरुषा।
सर्ब व्यापक, कल्याण मूरत परमेश्वराय नमस्तं ॥

(क) "योग-मार्ग-बोध"

(i) भोगवाद स्थिति

बचन १- दृश्यमान संसार में हर-एक शरीर-धारी जीव ख़्वाहे किसी ही शरीर में मौजूद है अपनी-अपनी तसल्ली की खातिर दिन-रात यत्न-प्रयत्न कर रहा है, ऐसे ही मनुष्य का जीवन भी है, गहरी-गौर करके विचार किया जावे तो जीवन निर्णय मालूम हो सकता है। नहीं तो स्वभाववश हो करके हर-एक जीव अपनी तसल्ली की खातिर जीवन यात्रा के अधिक से अधिक प्रोग्राम बनाता हुआ इस भयानक संग्राम रूप संसार में दौड़ रहा है। न ही अपनी असली शान्ति के मरकज़ को समझ सकता है और न ही अशान्ति के कारण स्वरूप को समझ सकता है। ऐसी हालत को ही अज्ञानवाद और जड़वाद करके कहा गया है।

बचन २—ऐसे अज्ञानवाद जीवन के भेद को समझना ही मानुषपन है। जिससे अपने सही कल्याण के मार्ग को समझ करके अपने आपको सत-मार्ग में नेहचल करके सत-शान्ति प्राप्त करली जावे। यही मनुष्य-जन्म की उच्चता है। अगर जीवन निर्णय का ऐसा भेद नहीं समझा है और अज्ञानवाद की दृढ़ता में ही असली कल्याण चाहता हुआ जो जीवन-यात्रा को व्यतीत कर रहा है, वह महज एक पशु से भी नीच है। क्योंकि इस कठिन संसार संग्राम में जीवन-यात्रा के परम उच्च ध्येय को समझना और फिर अनुकूल यत्न पर यत्न करना ही परम कल्याण के देने वाला सत् साधन है और मानुष जन्म की निर्मल कीर्ति है।

बचन ३- -वास्तव में हर-एक जीव ख़्वाहे किसी भी शरीर में मौजूद

है अपने शारीरिक भोगों की पूर्णता को चाहता हुआ नाना प्रकार के यत्न परयत्न करता हुआ अपनी-अपनी शारीरिक यात्रा को पूर्ण कर रहा है। ख़्वाह ऐसे यत्न से पूर्णताई हासिल होवे या ना होवे, मगर सबकी आन्तरिक तृषा ऐसी ही बनी रहती है। यही संसार की असली दौड़ का स्वरूप है।

बचन ४—हर-एक जीव पाँच तात्विक शरीर को धारण करके पाँच विकारों की आसक्ति में आकर पाँच ज्ञान इन्द्रियों और पाँच कर्म इन्द्रियों के भोगों में अति आसक्त हो करके विचर रहा है। यानी इन्द्रियों के भोगों में अविनाशी शाँति की प्राप्ति की खातिर दिन-रात हर-एक जीव यत्न प्रयत्न कर रहा है, मगर क्षण भंगुर यह भोग-क्रीड़ा होने के कारण बजाय शान्ति के अधिक अशाँति ही अशाँति प्राप्त होती है। यह ही खेद-रूप संसार है।

बचन ५—पाँच तात्विक शरीर-रूपी संसार को धारण करके हर एक जीव निर्भय सुख की प्राप्ति की खातिर दौड़ रहा है। मगर क्षण-भंगुर इस देह की यात्रा में नाना प्रकार के शारीरिक भोग भोगता हुआ नित्य निराशा और प्यासा ही रहता है। यानी शारीरिक भोगों को पूर्ण करने की खातिर राजा राज क़ायम करता है, धनी धन को संचित करता है, परिवारी परिवार में चिन्तावान रहता है। और भी जैसी-जैसी कोई सामग्री सुख भोगों की एकत्रित करता है उसका मुद्दा सिर्फ़ सत् शाँति ही है। मगर ऐसे अपूर्ण शारीरिक सुख भोगों में बजाय शाँति के अशाँति को ही प्राप्त होता है। यह ही अद्भुत माया का जाल है। ऐसी जीवन-यात्रा को सही समझना ही मनुष्य जन्म की सार है। और सत्-शाँति प्राप्ति का प्रथम प्रयत्न है।

बचन ६—शरीर रूपी संसार को धारण करके हर एक जीव शारीरिक भोगों की आसक्ति में ही विचर रहा है। जैसे-जैसे भी भोग प्राप्त किये जाते हैं, उतनी ही अशान्ति बढ़ती जाती है। इन्हीं हालात के मुता-

बिक जैसे एक चक्रवर्ती निराशा और प्यासा है, ऐसे ही एक दरिद्री भी अपनी अशान्ति में विचर रहा है। यानी जो भी शरीर धारी देखने में आ रहा है, वह अपने आप में नित्य ही अधीर और अशान्त है। ऐसे अन्धकारमयी जीवन के पूर्ण भेद को समझ करके सत्-शान्ति प्राप्ति का निर्मल प्रयत्न धारण करना ही मनुष्य देह का परम लाभ है।

वचन ७—इस अद्भुत माया के चक्र का निर्णय यह है, कि जीव यानी बुद्धि-अहंग-भाव को धारण करके यानी मैं करता को धारण करके त्रैगुनरूपी तृष्णा के जाल को कलपती है और कर्मफल द्वन्द रूपी पाँच तात्विक स्थूल सृष्टि रूपी देह को धारण करती है और नित स्वरूप अविनाशी आत्मा को भूल करके अनित्य स्वरूप देह आकार में सत्शान्ति की तलाश करती हुई नित ही भयभीत रहती है। ये ही जीवन स्वरूप विचरत संसार है। अज्ञानवाद, प्राकृतवाद और नास्तिकवाद का पूर्ण रूप है।

वचन ८—अपनी-अपनी हंगता को धारण करके हर एक शरीररूपी सृष्टि में बुद्धि नित आसक्त और अधीर रहती है। यानी पाँच तात्विक शरीर के संजोग से पाँच विकार रूपी तृष्णा की अग्नि में नित ही जलती रहती है। और ऐसे ही पलक-पलक विषे काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार आदि पाँच विकारों में अपनी सन्तुष्टि चाहती हुई प्रत्यक्ष ब्रह्माण्ड में शरीर द्वारा भरमती है। नाहीं इन विकारों की अग्नि ठण्डी होती है, और नाहीं सत्शान्ति अभय पद को प्राप्त हो सकती है। ऐसा जीवन निर्णय जानना ही असली जानना है।

वचन ९—पाँच तात्विक शरीर को धारण करके पाँच विकारों की वासना को पूर्ण करने की खातिर हर वक्त बुद्धि शारीरिक कर्मों में आसक्त रहती है। न ही इन विकारों पर विजय हासिल कर सकती है, और न ही सत्शाँति को अपने आप में अनुभव करती है, यह ही परम दुःख स्वरूप संसार है। जब लोभ की अधिकता में बुद्धि गिरफ्तार होती है, तब अपने में अति अधीरता को धारण करके अनुकूल और प्रतिकूल कर्म

करके अति धन माल को एकत्र करती है। ऐसे ही जब बुद्धि अति मोह में गिरफ़्तार होती है तब अपनी शारीरिक और परिवारिक ममता में फैलती है और दूसरों की नाश का यत्न करती है। ऐसे ही जब काम के वेग में आसक्त होती है, तब अति भोग क्रीड़ा में अपने आप को नाश करती है, और भ्रष्टाचार में लवलीन रहती है। ऐसे ही जब क्रोध के वेग में बुद्धि आ फँसती है, तब अपनी नाश और दूसरों की नाश करने में दृढ़ हो जाती है, ऐसे ही जब अहंकार के वेग में बुद्धि अन्धी होती है, तब अपने समान दूसरा कोई दिखलाई ही नहीं देता है, और अंतर से दूसरों के साथ ईर्षा-वाद को धारण कर लेती है। ये ही हालत परम खेद और सर्वनाश की है।

बचन १०—इन्हीं पाँच विकारों की अग्नि में तमाम देहधारी जल रहे हैं और जितना भी खेद संसार में प्रतीत हो रहा है, वह इन विकारों का ही वास्तविक रूप है, यानी बुद्धि अहंग भाव के वश हुई हुई पाँच तत्त्वक शरीर को धारण करके इन पाँच विकारों की वासना में नित ही जलती रहती है। न ही अहंग-भाव से पवित्र हो सकती है और न ही इन विकारों से छुटकारा हासिल कर सकती है। यह ही भयानक दुःख स्वरूप संसार है और जितना भी प्राकृतिक चक्र चल रहा है, वह तमाम का तमाम ही इन विकारों के आधार पर ही चल रहा है।

बचन ११—बुद्धि अज्ञान वश हुई हुई अविनाशी स्वरूप आत्मा जो निर्विकार है, उसको भूल करके पाँच तात्विक शरीर में पाँच विकारों की जड़ता को धारण करके इन विकारों की भोग क्रीड़ा को ही जीवन स्वरूप मान रही है और नित ही इन विकारों में पूर्ण तृप्ति चाहती हुई शरीर द्वारा संसार यात्रा में फैलती है, क्योंकि यह तमाम विकार तृष्णा की अग्नि को बढ़ाने वाले हैं। इस वास्ते इनमें सतशान्ति प्रतीत रखनी ही मूल भोगवाद और महा मूढ़ता है।

बचन १२—बुद्धि अहंग भाव के वश हो करके पाँच विकारों की

वासना को प्रगट करती है और इन विकारों में ही असली तृप्ति चाहती है। यानी जिस बद परहेज़ी से रोग बढ़ता है उस बदपरहेज़ी से रोग की शांत को चाहती है, मगर ऐसी मूढ़ता में कहाँ रोग से निवृत्ति हो सकती है। अच्छी तरह से इस आन्तरिक रोग को समझना चाहिये जिससे रोग निवृत्ति का सत् यत्न प्राप्त हो सके।

बचन १३—जितने भी पाँच तात्विक आकारमयी जीव हैं, वह इन विकारों की कोशिश में ही नित नई तबदीली को धारण कर रहे हैं—और सत् शान्ति की प्राप्ति के बजाय काल कर्म के खेद में विचर रहे हैं। न ही इन विकारों की पूर्णताई हासिल होती है और ना ही जीव को सत् शान्ति प्राप्त हो सकती है। यह ही मृग तृष्णा रूपी संसार है। यानी इन विकारों का कारण तृष्णा है और तृष्णा का कारण अहंभाव है। जब तक बुद्धि अहंभाव से पवित्र नहीं होती है, तब तक इन विकारों पर विजय हासिल नहीं कर सकती है, जो परम संकट का स्वरूप है।

बचन १४—इन महा विकारों के भोगने की आसक्ति यानी बन्धन ही बड़ा खेद है, जो हर वक्त बुद्धि को भरमाता रहता है, किसी हालत में भी निर्भय होने नहीं देता है। इन विकारों में मुनास्बत और मर्यादा धारण करनी ही पवित्र आचरण और उच्च जीवन है, जिस विद्या से, जिस संगत से, जिस प्रभाव से बुद्धि इन विकारों पर विजय हासिल कर सकती है वह तमाम के तमाम साधन ही परम कल्याणकारी हैं। ऐसे साधनों से ही बुद्धि बलवान हो करके सत् स्वरूप जो निर्विकार है उसको अनुभव कर सकती है और परम शान्ति को प्राप्त होती है।

बनच १५—इन विकारों की आसक्ति ही परम दुःख और अधिक बन्धन है, जिसमें हर एक देहधारी अशान्त हो रहा है। और इन विकारों की भोग क्रीड़ा का पूर्ण बोध हर एक जीव को है और बग़ैर किसी के सिखलाये और समझाये सबके सब पूर्ण निश्चय से इन विकारों की भोग क्रीड़ा में अति चतुर हो करके विचर रहे हैं। ये ही अद्भुत माया का

जाल है। मानुष जन्म की केवल उच्चता यही है कि इस संकटरूप भोग-मयी जीवन से निरबन्ध हो करके सत् पद अविनाशी स्वरूप का बोध हासिल कर लिया जावे।

बचन १६—अज्ञानवश हुए हुए तमाम के तमाम जीव इन महा विकारों की भोग क्रीड़ा को ही जीवन समझ रहे हैं और नित ही इनमें पूर्ण निश्चय से विचर रहे हैं। ऐसे भोगवाद संकट से निरबन्ध होना अति कठिन कमाई है और परम शूरवीरता है, जिसको ऐसी परम स्थिति प्राप्त होवे। इसी भोगवाद रूपी भयानक आसक्ति के सागर से अबूर पाने की खातिर ही मानुष जीवन में शुद्ध विवेक की धारणा, शुद्ध वैराग की धारणा और शुद्ध अनुराग की धारणा है, जिसको धारण करके सत्स्वरूप अविनाशी आत्मा के बोध को प्राप्त करके निर्विकार, निर्विषाद स्थिति में लीनताई हासिल करली जावे जो परम शान्ति स्वरूप है।

बचन १७—जब तक बुद्धि इन शारीरिक भोग विकारों को खेद रूप नहीं जानती है, तब तक बिल्कुल जड़स्वरूप है और किसी सूरत में भी इन विकारों से छुटकारा हासिल नहीं कर सकती है। ऐसी असुरवाद स्थिति से निर्मल होने की खातिर ही शुद्ध विवेक की धारणा है, जिससे सही सूक्ष्म स्थूल प्रकृति के गुण व कर्म के खेद को समझ करके अपने आपको निरबन्ध करने का सत् यत्न प्राप्त कर लिया जावे जो परम कल्याण स्वरूप है।

(ii) 'शुद्ध विवेक'

बचन १८—बुद्धि अहंगभाव को धारण करके त्रिगुण वासना के जाल में बन्धायमान हो जाती है और इन्हीं गुणों के जेर असर होकर के शुभ अशुभ कर्म इन्द्रियों द्वारा करके अपने आपको नित ही चलायमान करती है। ये ही अवस्था खेद स्वरूप है, यानी बुद्धि कर्तापन को धारण करके सात्विकी राजसी और तामसी कामनाओं द्वारा अनन्त प्रकार के कर्म कल्पित करके इन्द्रियों द्वारा भोग क्रीड़ा में लवलीन रहती है, और कर्म फल द्वन्द को धारण करके राग द्वेष की अग्नि में तप्त रहती है। एक लम्हा भी सत् शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकती है। ऐसे जीवन के खेद को जानना ही सत् विवेक है।

बचन १९—कर्तापन से कर्म भोग वासना प्रगट होती है और कर्म भोग से कर्मफल द्वन्द के ग्रहण व त्याग का बन्धन प्राप्त होता है। यानी सत् शान्ति की खातिर बुद्धि कर्तापन को धारण करके कर्मफल भोग वासना के द्वन्द में नित ही गिरफ़्तार रहती है और नाना प्रकार के कर्म सूक्ष्म व स्थूल रूप में धारण करती है, मगर इस भयानक झंझट से एक पलक भी छुटकारा नहीं हासिल कर सकती है, यह ही बन्धन परम खेद स्वरूप है।

बचन २०—कर्तापन ही कल्पित संसार की जड़ है, और वासना रूपी तुरंग संसार का फैलाव है और कर्मफल द्वन्द रूपी शाखें और कोंपलें हैं, जो नित ही कल्पित संसार की रचना में लवलीन रहती है, यानी कर्तापन से वासना और वासना से कर्मफल द्वन्द को प्राप्त करके

अधिक अशान्त रहती है। ऐसी खेद स्वरूप जीवन यात्रा का बोध करना ही परम विवेक है।

वचन २१—बुद्धि कर्तापन की अधिक गिरफ़्तारी में जकड़ी हुई कर्मफल द्वन्द की भोग क्रीड़ा में ही सत् शान्ति प्रतीत करती हुई नाना प्रकार के शरीरों को धारण करती है, मगर सत् शान्ति की बजाय अशान्ति दर अशान्ति को ही प्राप्त होती है। यह ही आवागवन का चक्र है। यानी कर्त्तापन भी कल्पित और भ्रम रूप है। और कर्मफल द्वन्द भी तबदीली युक्त है। इस वास्ते ऐसे कल्पित संसार के चक्र में कहाँ से शान्ति प्राप्त हो सकती है, महज़ खेद ही खेद है।

बचन २२—चूँकि कर्मफल द्वन्द की तबदीली लाज़मी है और इस तबदीली को रोकने की ख़ातिर बुद्धि हर वक्त नये से नये कर्म करती है यानी कर्म फल द्वन्द जो सुख व दुख का स्वरूप है और तबदीलीयुक्त हैं, इनमें बुद्धि सुख की स्थिरता और दुख की निवृत्ति का यत्न करती है, मगर सुख का अभाव होना लाज़मी है और दुख की प्राप्ति भी लाज़मी है। इस वास्ते तमाम का तमाम यत्न ही अकारथ जाता है। आख़िर दुखमई हालत में ही एक शरीर से दूसरे शरीर को धारण करती है और नये सुख प्राप्ति की ख़ातिर अधिक यत्न करती है, मगर नाशवान सुख में कहाँ शान्ति प्राप्त हो सकती है। ऐसा समझना ही यथार्थ बोध है।

बचन २३—कर्म फल द्वन्द जो सुख व दुख का स्वरूप है, इनमें केवल सुख की प्रतीत रखनी ही असली मूढ़ता है। क्योंकि सुख का अन्त दुख स्वरूप ही होता है और बुद्धि दुख से छूटने की ख़ातिर नए से नए जो सुख के सामान रचती हुई अनेक प्रकार के शरीरों को धारण करती है, मगर सुख की बजाय दुख को ही प्राप्त होती है। यही काल चक्र रूप संसार है।

बचन २४—बुद्धि कर्त्तापन की जड़ता को धारण करके कर्मफल

द्वन्द जो पाँच तत्त्वों के विकार सरूप हैं, इनमें मन शान्ति तलाश करती हुई अनेक प्रकार के पलक पलक विषै करम करती है, मगर द्वन्द खेद में सत्शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकती है। इस वास्ते हर वक्त नये सुख की चाहना बनी ही रहती है, और दुःख का भय अन्तर में मौजूद रहता है, यानी पाँच तत्त्वों से पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ सहित जो प्रगट शरीर भासता है और इन इन्द्रियों के कर्मों का फल ही द्वन्द स्वरूप है। यानी अनुकूल व प्रतिकूल है। अनुकूल फल को प्राप्त करके बुद्धि राग को प्राप्त होती है, और प्रतिकूल फल से द्वेष को प्राप्त होती है। ऐसे ही द्वन्द रूप संसार में नित ही चलायमान होती रहती है, एक पलक भी धीरज को प्राप्त नहीं हो सकती है। ये ही वास्तविक खेद रूप संसार है।

बचन २५—बुद्धि कर्तापन की जड़ता को धारण करके इन्द्रियों के भोगों द्वारा मन शान्ति को प्राप्त करने का यत्न करती है, मगर चूँकि इन्द्रियों के भोग द्वन्द स्वरूप तबदीली युक्त हैं, इस वास्ते इस भोग क्रीड़ा में अधिक क्लेशवान ही रहती है। यानी वासना पूर्ति की खातिर इंद्रियों के भोगों की लालसा में अधिक से अधिक यत्न करती है, मगर बजाय वासना पूर्ति के वासना बढ़ती जाती है और जो नये से नये कर्म धारण किये जाते हैं, वह ज्यादा से ज्यादा खेद देने वाले हो जाते हैं। यह ही अति भयानक रूप संसार है।

बचन २६—कर्तापन से वासना और वासना से कर्म फल द्वन्द प्रगट होता है और कर्म फल द्वन्द की आसक्ति में आ करके फिर जो नये से नये कर्म किये जाते हैं, वह वासना रूपी अग्नि को अधिक प्रचण्ड करते हैं। इस वास्ते ही कोई भी देहधारी अपने आप में एक पलक के वास्ते भी धीरजवान नहीं है, बल्कि अधिक से अधिक क्लेशों को प्राप्त हो करके वासना की भयानक अग्नि में तमाम जल रहे हैं। ऐसे वास्तविक संसार के सरूप को बोध करना ही निर्मल विवेक है।

बचन २७—वासना की गिरफ़्तारी ही परम दुःख है और वासना की पूर्ति यानी निवृत्ति ही परम सुख है। तमाम जीव वासना की पूर्ति की खातिर ही नये से नये कर्म करके अपने आपको जकड़ रहे हैं, परन्तु वासना की निवृत्ति नहीं हो सकती है। ये ही माया भ्रमजाल असगाह है। जो मनुष्य कर्मफल द्वन्द भोग में वासना की पूर्ति चाहते हैं। वह महज़ एक मूढ़ से भी मूढ़ हैं, क्योंकि कर्मफल द्वन्द की तबदीली ही वासना को फैलाती है। इस आसक्ति में पूर्ण आशावादी होना समझना अधिक अज्ञान जड़वाद का निश्चय है।

बचन (२८) कर्त्तापन से वासना प्रगट होती है और कर्म फल द्वन्द से वासना फैलती है। ऐसे भयानक जाल में पूर्ण आशावादी होने का निश्चय रखना अधिक मूढ़ता है। और ऐसे ही मूढ़पने में बड़े से बड़े गुणी संसार चक्र में भ्रम रहे हैं, मगर सत् शान्ति रूप पूर्ण आशावादी पद को प्राप्त नहीं हो सकते हैं। जब तक बुद्धि कर्त्तापन में गिरफ़्तार है, तब तक कर्म फल की वासना से पूर्णताई होनी अति कठिन है और जब तक कर्म फल की वासना मौजूद है तब तक नई से नई इच्छा और नये से नया संसार और नये से नये खेद को प्राप्त होना ही पड़ेगा। यही प्रकृति का चक्र है।

बचन (२९) ऐसे अद्भुत जीवन चक्र को निर्मल भाव से समझ करके ही अपनी निर्मल उन्नति का यत्न करना चाहिये, जिससे पूर्ण आशावादी पद प्राप्त होवे, जो कि वास्तविक हर एक जीव की चाहना है। इच्छा रहित होना ही परम सुख है और इच्छा सहित होना ही परम दुख है। जब तक इच्छा का कारण कर्त्तापन अभाव नहीं होता है तब तव कर्म फल द्वन्द की आसक्ति जो इच्छा का विस्तार है, इससे असंग हाना अति कठिन है।

बचन (३०) अति मूढ़पने में आकर के जड़ बुद्धि ऐसा चतुर भाव धारण कर लेती है, कि कर्मफल द्वन्द की भोग क्रीड़ा ही पूरन आशा-

वादी करने वाली है और ऐसे निश्चय को लेकर अधिक से अधिक इंद्रियों के भोगों को प्राप्त करने का यत्न करती है। जैसा कि आजकल के साइँसदानों और मादावादी विद्वानों का निश्चय है। मगर ज्यों-ज्यों इंद्रियों के भोगों का फैलाव बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों वासना की अग्नि अधिक प्रचंड होती जाती है, जो परम खेद का स्वरूप है। इस वास्ते इस जीवन रूप संसार में पहले खेदमयी जीवन के भेद को समझना ही परम उच्चता है।

वचन (३१) बुद्धि अति अहंकार की जड़ता को धारण करके वास्तविक आन्तरिक खेद को न समझती हुई इंद्रियों के नाना प्रकार के भोगों में आसक्त होकर के नित ही अपने आप में अधीर रहती है और इसी काल चक्र संसार में सत् शान्ति की तलाश करती हुई अपनी मूढ़ता के कारण नित अशान्ति को ही प्राप्त होती है। ऐसे इस महा संकट रूप जीवन से जागृत हासिल करनी ही मानुष जन्म की सार है।

वचन (३२) बुद्धि कर्त्तापन की जड़ता को प्राप्त होकर के कर्म फल द्वन्द की भोग क्रीडा में नित ही चलायमान रहती है, जब तक कर्त्तापन से पवित्रता प्राप्त नहीं होती है, तब तक कर्म फल भोग की आसक्ति से निर्बन्धन होना अति कठिन है। विचरित संसार की हालत में कर्त्तापन से कर्म वासना और कर्म वासना से द्वन्द खेद नित ही बढ़ता है और इसी खेद से छूटने की खातिर बुद्धि अधिक से अधिक यत्न करती है और नाना प्रकार के शरीरों को धारण करती है, मगर कर्त्तापन अभिमान की मलिनताई को धारण किये हुए सत् शान्ति अकृतपद आत्मा को बोध नहीं कर सकती है, जो निर्वाम और अचल स्थिति है।

वचन (३३) कर्त्तापन कर्म वासना और कर्म फल द्वन्द की आसक्ति ही परम अशान्ति का कारण है। जब तक इस मूल भ्रम अंधकार से पवित्रता प्राप्त न होवे, तब तक सत शान्ति नित स्वरूप आत्मा का बोध नहीं हो सकता है, जो परम शान्त पद है।

बचन (३४) सार विवेक यह है कि कर्त्तापन मूल भ्रम जड़वाद की आसक्ति से जब तक बुद्धि शुद्ध न होवे, तब तक कर्म वासना और कर्म फल द्वन्द के खेद से छुटकारा हासिल करना अति कठिन है। क्योंकि कर्त्तापन ही कारण इच्छा और कारण संसार है। इस वास्ते इस भव-दुस्तर जाल से छूटने का केवल उपाय यही है, कि तमाम खेद का जो कारण स्वरूप अहंग भाव है उससे निवृति प्राप्त होवे, और सत् तत् अविनाशी नित अकर्म स्वरूप आत्मा में लीनताई हासिल होवे जो परम शान्त और कल्याण स्वरूप है।

बचन (३५) बुद्धि भ्रम अंधकार के वश हुई हुई शारीरिक भोगों में ही सत शाँति प्रतीत करती हुई शारीरिक यात्रा में विचर रही है, यानी नाशवान शरीर में सत् शान्ति की प्राप्ति की चाहना रख कर के अधिक से अधिक शारीरिक भोग प्राप्त करने के यत्न में लगी रहती है, न ही शारीरिक भोगों में संतुष्टि प्राप्त होती है, चूँकि भोग क्रीडा क्षण भंगुर है, और न ही शारीरिक जीवन सदैव काल रह सकता है। मगर अभिमान वश होने के कारण कभी भी सही सोचने और समझने का यत्न नहीं करती है बल्कि अपने स्वभाव के मुताबिक ही शरीर और शारीरिक सुख हमेशा के वास्ते कायम करना चाहती है, मगर ऐसा हो नहीं सकता है। इस वास्ते ही इस अनर्थ भ्रम अंधकार में तमाम का तमाम जीवन समय व्यतीत हो जाता है। न ही शारीरिक सुखों की चाहना पूर्ण होती है और न ही शरीर हमेशा रह सकता है।

(iii) "शुद्ध वैराग"

वचन (३६) बुद्धि अति अभिमान के वश होकर के किसी समय भी शारीरिक यात्रा और शारीरिक नतीजा को समझ नहीं सकती है। ऐसे ही मिथ्या भरवास में शरीर और शारीरिक भोगों को कायमी के यत्न में दिन रात लगी रहती है, जिसका नतीजा अन्त को सिवाय पछताने के और कुछ नहीं निकल सकता है। ये ही आश्चर्य माया का चक्कर है कि नाश में मन को प्रतीत करना और दुख में सुख की कामना रखनी। इस भ्रम जाल में तमाम के तमाम देह धारी विचर रहे हैं, कोई ही परम विवेकी इस प्रकृति के सही चक्र नाशवान को समझ करके सतपद प्राप्ति की खोज में दृढ़ होता है।

वचन (३७) मानुष जन्म की उत्तमता यही है कि अति निर्मल भाव से इस जीवन यात्रा को समझा जावे। जाहरी चमक दमक और दौड़ धूप तमाम जीवों की देह करके है। अगर सार विचार न की जावे तो देखा देखी भ्रम जाल में सब जीवन ममा नष्ट हो जाता है। आखिर निराशावादी हो करके ही इस नाशवान संसार से जाना होता है। जैसा कि तमाम जीवों की अन्तिम समय की दशा होती है।

वचन (३८) बुद्धि अहंगभाव सहित हो करके शरीर रूपी संसार को धारण करती है और शारीरिक भोगों में ही सत् शान्ति प्रतीत रखती हुई तमाम शारीरिक जीवन यात्रा को खत्म कर देती है, मगर नाशवान इस देह क्रीड़ा में कहाँ सत शान्ति प्राप्त हो सकती है। बजाय परम संकट के और इस अंधकार मयी जीवन यात्रा में कुछ प्राप्त नहीं हो

इन विकारों को फैला करके अपना एक परम संकट रूप संसार रच लेती है। जिससे तड़प तड़प करके आख़िर शरीर की अंतिम दशा को प्राप्त होती है। कोई राजा है या भिखारी, कोई गुनी है या मूढ़, कोई परि-वारी है या विरक्ति, जैसा तैसा भी जो कोई जिस शरीर को धारण किये हुए है, वो ही इन विकारों की अग्नि में जल रहा है। वाह वाह यह संसार की अद्‌भुत लीला है।

बचन (४५) ऐसे अंधकारमयी जीवन या विकारमयी जीवन को जब तक बुद्धि निर्मल विवेक द्वारा समझ नहीं सकती है, तब तक इन विकारों की अग्नि में ठंडक को प्राप्त नहीं हो सकती है। बल्कि इन विकारों के अति ज़ोर असर हो करके तमाम देहधारी एक दूसरे के नाशक बनते हैं और ये ही विकार तमाम संसारी रचना को तबदीली के देने वाले है। यानी जिस वक्त बुद्धि पर यह विकार ग़ालिब आ जाते हैं, उस वक्त विचारहीन धीरज हीन हो करके इन विकारों का अति प्रतिकूल इस्तेमाल करती है। तब परम संकट और नाश को प्राप्त होती है।

बचन (४६) तमाम के तमाम देहधारी जन्म से ही इन विकारों की गति को समझते हैं, ख़्वाहे कोई जंगल निवासी है, ख़्वाहे बड़े गंधहख शहर का रहने वाला है। मनुष्य क्या बल्कि पशु पक्षी जड़ योनियों के जीव भी इन विकारों की महसूसात में अपनी अपनी शारीरिक यात्रा को व्यतीत कर रहे हैं। इस प्राकृतिक विज्ञान का सबको जन्म से ही बोध है। और प्रकृति का पूर्ण रूप भी यही है।

बचन (४७) मनुष्य जन्म की उच्चता अगर है तो यह ही है, कि इन विकारों की गिरफ़्तारी से असली आज़ादी को प्राप्त किया जावे। विद्या का निध्यासन, सत्पुरुषों की संगत, और ईश्वर का विज्ञान महज़ इन विकारों से ही छूटने के उपाय हैं। जो परम खेद और नित निरा-शावादी जीवन से ही निर्खेद और पूर्ण आशावादी पद के देने वाले हैं। यह ही उच्च कर्तव्य मनुष्य जन्म की सार है। इस जन्म में आकर

के ही इन विकारों की अग्नि से सत् शान्ति प्राप्त हो सकती है। अगर मनुष्य जन्म में आ करके भी इन विकारों की अग्नि को शुद्ध विवेक के जल से ठंडा नहीं किया गया तो वह मनुष्य क्या पशु से भी नीच है। क्योंकि अपने कल्याण के बजाय वोह अपनी नाश की तरफ दौड़ रहा है।

बचन (४८) परम खेद, अति अविद्या, परम अंधकार अगर कोई है तो यह ही पाँच विकार हैं। मनुष्य जन्म में आकर के मन विचार के बल से इन विकारों पर विजय प्राप्त कर लेनी ही असली विजय है। सत् पुरुषों का सत् उपदेश और धर्म का सही सरूप और राजा का सही न्याय यह ही है, कि इन विकारों की बढ़ती हुई अग्नि को मन विचार के बल से, राज बल से, तथा तपोबल से रोका जावे, जिससे तमाम मनुष्य सत् आचारी हो करके शान्ति पूर्वक जीवन यात्रा को निर्विकार अवस्था तक ले जाने की कोशिश कर सकें।

बचन (४९) ये विकार ही परम खेद स्वरूप हैं। इनमें अधिक से अधिक मर्यादा धारण करनी ही मानुष जीवन का परम लक्ष्य है, और ये ही जीवन सदाचारी है, और ये ही मनुष्य जीवन की असली नीति है, इन विकारों की अति प्रधानता जब सबके अन्दर आ जाती है, तब बुद्धि नास्तिक हो करके परम नाश, परम संकट को प्राप्त होती है। ऐसा निश्चय करके जानना चाहिये।

बचन (५०) यह विकार ही परम हिंसक रूप हैं और ये विकार ही नित अशान्ति का सरूप हैं। इनसे सत् विवेक के बल से जितनी भी पवित्रता प्राप्त की जावे उतना ही जीवन अपने ताईं और दूसरों के ताईं कल्याणकारी हो सकता है। इसलिये सत् विचार की धारणा ही मानुष जीवन के वास्ते कल्याणकारी है, जो कि इन तमाम विकारों से पवित्रता के देने वाली है। इन विकारों की प्रधानता से ही चोरी, कपट, छल, कत्ल, झूठ और भ्रष्टाचार फैलता है जो कि तमाम का तमाम ही अशान्ति और नाश के देने वाला है।

बचन (५१) मानुष जन्म में उत्तम कर्तव्य, उत्तम बोध, उत्तम सूझ ये ही है कि बुद्धि को सत् विचारों की ठण्डक में ठण्डा करके सत् अनुराग के मार्ग में दृढ़ किया जावे, जिससे तमाम विकार शान्त हो करके निर्विकार सरूप अविनाशी आत्मा के बोध को प्राप्त होवे, जो नित मंगल सरूप है। विकारमयी जीवन से निर्विकार होना ही असली उन्नति है। असली कल्याण असली पुरुषार्थ है। जिसने अपने मानसिक विकारों से विजय हासिल नहीं की है, वह मनुष्य जन्म में आ करके भी कुछ जीवन की सार को प्राप्त न कर सका और उल्टा पतित मार्ग को धारण करके अति नीच गति को प्राप्त हुआ। ऐसे जीवन के भेद को जानना चाहिये।

बचन (५२) निर्मल बोध को प्राप्त करके अपने आन्तरिक शत्रुओं पर नित विजय हासिल करने का यत्न करना ही उत्तम यत्न है। क्योंकि ये विकार ही मूल सन्ताप हैं। इनके बन्धन में आकर बुद्धि सत् पद नित शान्त सरूप आत्मा को भूल गई है और नए से नए खेद को धारण करके इन विकारों की अग्नि में अधिक भयभीत रहती है। इस विकारमयी नित नाश स्वरूप जीवन से असली नित का जीवन निर्विकारमयी धारण करना ही सर्व विजय और सर्व-शान्ति के देने वाला यत्न है।

बचन (५३) निर्मल विवेक द्वारा जब बुद्धि इन विकारों का नतीजा परम दुःख रूप जानती है, तब ही विकारों के राग से पवित्र होने का यत्न करती है और सत् स्वरूप आत्मा जो नित निर्विकार और निर्विषाद है, उसकी खोज में दृढ़ होती है, वो ही परम कल्याण सरूप है। पाँच तत्वों की खोज में पाँच विकारों की भोग क्रीडा बढ़ती है और जीवन शक्ति आत्मा की खोज से इन विकारों से निर्बन्ध अवस्था प्राप्त होती है। जितनी बुद्धि सत् परायण होती जाती है, उतनी ही इन विकारों की अग्नि से ठंडक को प्राप्त होती है। इस वास्ते मनुष्य जीवन का उत्तम

कर्तव्य सत् की खोज ही है। सत् वो ही वस्तु है जिससे असत जड़ संसार प्रकाशवान् हो रहा है, जिसके जानने से सब कुछ जाना जाता है और सब कुछ प्राप्त हो जाता है। यानी वासना ही जो इन सब विकारों का मूल है, शान्त हो जाती है और बुद्धि परम प्रसन्नता निर्भय पद को प्राप्त होती है। ऐसी यथार्थ खोज और यथार्थ धारणा ही निर्विकारमयी जीवन के देने वाली है।

वचन (५४) जब बुद्धि निश्चय करके तमाम शारीरिक भोग और शारीरिक यात्रा को क्षण भंगुर प्रतीत करती है, तब ही तमाम शारीरिक विकारों से निर्बन्ध होने का यत्न करती है और साक्षी सरूप के सत् अनुराग की झलक अन्तर में अनुभव करती है। ज्यों ज्यों सत् अनुराग में दृढ़ होने का यत्न करती है, त्यों ही त्यों आन्तरिक सत शान्ति निर्वाण अवस्था को प्राप्त होती जाती है। असली मूल विकारों की आसक्ति का निर्णय यह है कि बुद्धि शारीरिक भोग विकारों में अधिक सत शान्ति का निश्चय दृढ़ किये हुये भोगों के संग्रह में दिन रात यत्न करती रहती है। भोग प्राप्ति तथा अप्राप्ति में अधिक तृष्णावन्त रहती है। ये अवस्था ही अति जड़ता की है।

वचन (५५) बुद्धि अभिमान के मल से पवित्र हो करके यथार्थ सरूप में जब प्रकृति के चक्र को अनुभव करती है, यानी तमाम स्थूल आकार और अपना शरीर भी आदि अन्त सहित, वासना सहित, खेद सहित, कर्म सहित, तबदीली युक्त और नित ही भयदायक प्रतीत करती है और किसी वस्तु में भी सत् शान्ति को अनुभव नहीं करती है, बल्कि हर एक वस्तु परस्पर नाश के चक्र में अपनी अपनी शक्ल को तबदील करती यथार्थ रूप में दिखलाई देती है। ऐसी पवित्र अनुभवता का ही वैराग कहा गया है।

वचन (५६) शुद्ध वैराग की प्राप्ति से बुद्धि तमाम शारीरिक विकारों से निर्मोह हो करके सत् तत्त्व अविनाशी, निर्खेद सरूप के दृढ़

अनुराग को प्राप्त होती है यानी शारीरिक आधार में नित ही अशान्ति और संकट प्रतीत करती हुई शरीर का साक्षी तत् जो आत्म सरूप है, उसके आधार को प्राप्त करने का यत्न करती है। ऐसा निश्चय ही सत्वाद आस्तिकवाद का सरूप है।

बचन (५७) बुद्धि जब तमाम का तमाम संसार चक्र तबदीली युक्त और खेद सहित प्रतीत करती है, तब तमाम शारीरिक भोग वासना के बन्धन से निर्बन्धन होने का यत्न करती है और परम सुख की असली चाहना उस वक्त अन्तर में प्रगट होती है जो नाश से रहित है। क्योंकि जो नाशवान् सुख भोग प्रतीत होते हैं, उनका अन्जाम अति संकट रूप दिखलाई देता है। ऐसा निर्मल विवेक और निर्मल वैराग जब अन्तःकरण में जागृत होता है, तब यथार्थ रूप में संसार की गति को अनुभव करके बुद्धि तमाम मिथ्याकार वासनाओं से पवित्र होने के सत् यत्न को प्राप्त होती है। ऐसी स्थिति ही कल्याण का सरूप है।

बचन (५८) जब तक बुद्धि ऐसे निर्मल वैराग और अनुराग को प्राप्त नहीं होती है, तब तक सत् सरूप जो परम शाँति का सागर है, उसको अनुभव नहीं कर सकती है। इस वास्ते यथार्थ रूप में तमाम संसार की गर्दिश को समझ करके असत् भोग वाद संकट रूप जीवन से उपरसता प्राप्त करके सत् परायण होने का यत्न करना चाहिये। ऐसा यथार्थ यत्न ही सरब कल्याण सरूप है।

बचन (५९) प्रथम जीवन यात्रा को यथार्थ रूप में बोध करना चाहिये। फिर यथार्थ सत् यत्न में प्रवीण हो करके अपने तमाम जीवन खेदों से छुटकारा हासिल करना चाहिये। ऐसे निर्मल कर्तव्य से जब अपने आप में परम पवित्रता, परम त्याग, परम धीरज प्राप्त होता है, तब वह मानुष सर्व जगत् की कल्याण करने वाला हो सकता है। यानी अपनी सत्-स्थिति के बल से तमाम जीवों के मानसिक दोष हरण करता है और सत् शान्ति को प्रकाशता है।

बचन (६०) तमाम प्रकृति जाल विकारमयी, खेदमयी और अज्ञानमयी सरूप हैं। इसके उलट मत सरूप आत्मा आनन्दमयी, ज्ञानमयी और अखंड शान्तमयी सरूप है। ऐसा यथार्थ निर्णय समझ करके अपने आपको प्रकृतिमयी विकारों से पवित्र करके एक मत सरूप के परायण बनाना चाहिये, यानी जब तक बुद्धि नाशवान शरीर के परायण हुई हुई है, तब तक शारीरिक विकारों से किसी पलक भी पवित्र और निर्बन्ध नहीं हो सकती है। यह ही प्रकृति जाल अति कठिन है।

बचन ६१. तमाम प्रकृति जाल खेदमयी और नाशवान् समझ करके सत् स्वरूप की खोज में दृढ़ होना चाहिये। असत शरीर जिसकी शक्ति करके सत् प्रतीत हो रहा है, काल स्वरूप संसार जिसकी सत्ता से प्रकाशवान् हो रहा है, सर्व निरन्तर जो व्याप रहा है, ऐसे नित स्वरूप के निर्मल अनुराग को प्राप्त करके तमाम मानसिक विकारों से पवित्र होना ही परम निर्मल यत्न है।

बचन ६२. जो आदि अन्त से न्यारा है, नित सम स्वरूप है, जिसमें काल कर्म और वासना का खेद नहीं है, जो अपने आप में आधार सरूप है, जो पूर्ण बोध, पूर्ण आनन्द और नित परिपूर्ण है, ऐसे सत् तत्व के परायण होना ही परम कल्याण सरूप है।

बचन ६३. जो तमाम मानसिक विकारों के नाश करने वाला है, और निर्भय शान्ति के प्रकाशने वाला है, ऐसे अविनाशी सरूप की खोज में दृढ़ होना ही कल्याणमयी यत्न है। जन्म से लेकर प्रकृतिमयी विकारों में नित अधीर रहता हुआ और नाना प्रकार के यत्न करके फिर निराशावादी रहता हुआ, जीवन इच्छा और मृतक काल से भय रखता हुआ, और सर्व सुख प्राप्त करके फिर दुःख में भयभीत रहता हुआ, नित कल्याण के यत्न करता हुआ, फिर बन्धन दर बन्धन को प्राप्त होता हुआ जो जीवन चरित्र काल सरूप है, इसको अच्छी तरह से समझ करके सत् परायण होने का यत्न करना चाहिये। जिससे ये तमाम के तमाम

दोष नाश को प्राप्त होवें, और बुद्धि निर्भय नित सुख आत्मा के सरूप में स्थिति प्राप्त करे, जो ठौर परमधाम निर्वाण शान्ति है।

बचन ६४. जिस सरूप के बोध से तमाम वासनाओं की निवृति प्राप्त होवे और तमाम काल कर्म का खेद अभाव हो जावे, जिसकी प्राप्ति से परम तृप्ति निर्द्वन्द स्थिति का बोध होवे, ऐसे समरस विज्ञान सरूप आत्मा की खोज में दृढ़ होना चाहिये। ऐसी खोज, ऐसा यत्न, ऐसी सूझ और ऐसा दृढ़ अनुराग धारण करके तमाम मिथ्याकार वासनाओं से निर्बन्ध हो करके जो सत् सरूप में निश्चल हुआ है, वह ही सर्व कामानी, सर्व कल्याण जीवन का दाता है।

बचन ६५. जिस परम तत्त्व के बोध से सर्व ज्ञाता बुद्धि हो जाती है और तमाम संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा नाश को पूर्ण भेद से जान लेती है, ऐसे नित सरूप की खोज में दृढ़ होना चाहिये। सबका जो आदि सरूप है और अपने आप में जो नित्य अनादि है, तमाम विद्याओं का जो अनुभव बोध सरूप है। ऐसे विज्ञान सरूप परम प्रकाश आत्मा में सत् स्थिति प्राप्ति का सत् यत्न धारण करना ही परम कल्याण सरूप है।

बचन ६६. तमाम संकटों का नाशक, सर्वकाल रक्षक, नित प्राप्त, सर्व समीप, नित जीवन-दाता, सत् प्रकाश, आत्म स्वरूप के परायण होने का यत्न धारण करना ही परम यथार्थ उद्यम है। ऐसे नित निरन्तर वासी परम पुरुष के सत अनुराग को प्राप्त करके तमाम भरम अन्धकार द्वन्द सरूप से असंग होने का यत्न धारण करना चाहिये, जिससे शरीर की विचरत हालत में तथा नाश की हालत में निर्वास स्थिति प्राप्त होवे।

बचन ६७. परम अन्धकारमयी भोग क्रीड़ा और नित असन्तुष्टी सरूप कर्म चक्र से छूटने के वास्ते केवल सत् सरूप जीवन शक्ति एक आत्मा के सिमरण ध्यान में दृढ़ होना ही यथार्थ योग है। ऐसे योग की प्राप्ति करके मिथ्या भोगवाद की अग्नि से सत शान्त होना चाहिये जो वास्तविक जीवन है।

वचन ६८. असत् विश्वास यानी शरीर और शारीरिक भोगों में सत् शान्ति प्रतीत करने की जो मिथ्या भावना अन्तःकरण में दृढ़ की हुई है, इससे जागृत हो करके सत् विश्वास यानी नित सरूप आत्मा के परायण होने का यत्न धारण करना चाहिये। ऐसे सत् विश्वास के बल से ही बुद्धि तमाम मानसिक विकारों से निर्मल हो करके अविनाशी सुख को प्राप्त हो सकती है, यह ही सत् यत्न भोग वाद आसक्ति से निर्मल करने वाला है, और आत्म स्वरूप में नेहःचलता के देने वाला योग है। नित ही स्वतन्त्र हो करके सत मार्ग में स्थिर होना चाहिये।

वचन ६९. सत विश्वास की दृढ़ता से असतवाद की आसक्ति से असंग हो करके सत् सरूप में नेःहचलता धारण करनी ही कल्याण-कारी साधन है। ऐसे सत् पुरुषों की संगत में नित प्रति प्रवृत हो करके सत् विश्वास और सत अनुराग की दृढ़ता हासिल करनी चाहिये, क्योंकि ऐसे कामिल लोगों ने खुद अपने जीवन का सुधार किया है, और निर्वाण स्थिति पर तृप्ति को प्राप्त हुए हैं।

वचन ७०. जब तमाम शरीर का आधार एक आत्मा ही निश्चय में आता है, और उसकी शक्ति से ही तमाम विश्व क्रीड़ायुक्त भासता है, तब जड़वाद की मलिन से परम पवित्रता प्राप्त होती है और मिथ्या आधार वासना रूप को त्याग करके सत आधार एक आत्म स्वरूप निश्चय में दृढ़ होता है। ऐसा निर्मल विश्वास ही परम कल्याण स्वरूप है। अधिक से अधिक निर्मल विवेक द्वारा ऐसे सत् विश्वास में दृढ़ होना चाहिये।

वचन ७१. जब तमाम आकार मण्डल संसार जड़ सरूप प्रतीत होता है और एक आत्मा चेतन सरूप सर्व का आधार जान पड़ता है, तब बुद्धि निर्मल विवेक को प्राप्त होती है और तमाम कामना कल्पना के जाल को छेदन करके एक सर्व आधार कल्याण सरूप आत्मा के चिन्तन करने में निहचल होती है। ज्यों-ज्यों आत्म परायणता को प्राप्त

होती है त्यों-त्यों तमाम कर्म वृन्द की आसक्ति का अभाव होता जाता है और बुद्धि अन्तर आत्म सरूप के आनन्द में मग्न होती है।

बचन ७२. सर्व जगत् का प्रकाशक तत्त्व एक आत्मा को जान करके उसके आधार में तमाम शारीरिक क्रिया को देखना और अधिक निर्मल प्रेम से सत् तत् के सिमरण में बुद्धि को निहचल करना ही निर्मल विश्वास है। ऐसे विश्वास के बल से तमाम जन्म-जन्म के मिथ्याकार संस्कार नाश को प्राप्त होते हैं और बुद्धि सत्तत्त्व के परायण हो करके अपने आपको निर्बन्ध करनेका यत्न करती है।

बचन ७३. इस भोगवाद की जड़ता से जागृत हो करके अपने तमाम विकारों से छुटकारा हासिल करने का यत्न धारण करना चाहिये, क्योंकि शारीरिक भोग ही तमाम खेदों के देने वाला है और मानुष जन्म की उच्चता यही है कि इस भोग क्रीड़ा के संग्राम से अधिक से अधिक पवित्रता प्राप्त की जावे। यानी आहार, व्यवहार, आचार और संगत की अधिक से अधिक पवित्रता प्राप्त की जावे। तमाम मनुश्यात से, माँस आदि से परहेज़ रखना आहार की शुद्धि है। अपनी हक की कमाई में सन्तोषवान् रहना व्यौहार की शुद्धि है। अपने बचन और कर्म को सत् के आधार पर कायम करना यह आचार की शुद्धि है। नित ही श्रेष्ठ आचारी और सत-गृही पुरुषों की संगत करनी ये संगत की पवित्रता है। ऐसी नित की पवित्रता जब प्राप्त होती है, तब बुद्धि परम आसक्ति से जागृत होकर के सत् मार्ग कल्याण सरूप में नेहचल होती है। प्रथम जीवन उन्नति का साधन सार यही है।

बचन ७४. जिस वक्त नित का जीवन परम श्रेष्ठ आचारी हो जाता है यानी सादगी, सत, सेवा, सत्संग और सत् सिमरण आदि महा गुणों को धारण करके बुद्धि तमाम भ्रष्टाचार से पवित्र हो जाती है, उस वक्त सत् विश्वास, सत् अनुराग और सत् निध्यास एक आत्म सरूप का प्राप्त होता है, जो परम कल्याणकारी सरूप है।

बचन ७५. अधिक निर्मल बुद्धि द्वारा मत आचरण में दृढ़ होकर के तमाम अशुद्ध वासना का त्याग करना चाहियें। यानी चोरी जुआ, कपट, ईर्ष्या द्वेष पर हानि की भावना को त्याग करके मन शील, सन्तोष, दया, क्षमा आदि श्रेष्ठ गुणों को धारण करना चाहिये। ऐसी देव भावनाओं को धारण करके जब बुद्धि आत्म निध्यास में दृढ़ होती है, तब थोड़े समय में ही परम सिद्धि को प्राप्त हो जाती है।

बचन ७६. जीवन यात्रा में समय की अधिक पाबन्दी को धारण करके हरएक कल्याणकारी कर्म समय पर करना चाहिये। यानी स्वार्थ कामों से समय को निकाल करके परमार्थ सम्बन्धी कर्मों में दृढ़ होना चाहिये। सिमरण, सेवा, सत्संग आदि महा साधनों में अधिक से अधिक प्रेम और अधिक समय देना चाहिये, जिससे जल्दी ही मानसिक दोषों का अभाव होवे और बुद्धि सत् परायणता में पूर्ण रूप से निश्चल होवे।

'शुद्ध निध्यास'

बचन ७७. जब बुद्धि तमाम शारीरिक भोगों का नतीजा परम दुख रूप जानती है, तब पूर्ण निश्चय से सत् परायण होने का यत्न करती है। सत् सरूप आत्मा पूर्ण रूप से शरीर के अन्तर व्याप रहा है। जैसे दूध में घृत और फूल में सुगन्धि का निवास है। यथार्थ यत्न से, यथार्थ प्रेम से, यथार्थ विधि से जब पूरण निश्चय से निध्यास में दृढ़ता प्राप्त होती है तब सत् सरूप का अन्तर में बोध होता है, जो परम कल्याणसरूप है।

बचन ७८. सत् सरूप आत्मा आकार शरीर में निराकार हो करके व्याप रहा है। द्वन्द में निरद्वन्द कर्मयुक्त और वासनायुक्त शरीर में निर्वास और नेह कर्म होकर व्याप रहा है। आदि अन्त सहित, खेद सहित, अल्पज्ञ, अनन्त प्रकार के परमाणु सहित जो शरीर है इसमें अनादि, अखेद, सर्वज्ञ और निराकार हो करके प्रकाशता है। तमाम के तमाम शारीरिक दोषों से भिन्न, अपने आप में परिपूर्ण, नित आनन्द चेतन सरूप हो करके व्याप रहा है।

बचन ७९. अनन्त प्रकार की उपमा सहित जिसका कोई प्रमाण नहीं है, ऐसे अवगत शब्द सरूप आत्मा की खोज, आत्मा का सिमरण, आत्मा का ध्यान और आत्मा का साक्षात्कार ही योग का सरूप है। अधिक से अधिक सत् यत्न से ऐसे योग में दृढ़ होना तमाम प्राकृति दोषों के निर्बन्ध करने वाला यत्न है और परम विजय सरूप है।

बचन ८०. शरीर रूपी संसार में बुद्धि जकड़ी हुई अनन्त प्रकार

के कर्म पलक पलक विषे धारण करती है और ऐसी आसक्ति में नित ही खेद युक्त रहती है। इस भयानक संकट से छूटने के वास्ते केवल सत् सरूप आत्मा की खोज में दृढ़ होना ही परम कल्याण है। ऐसे परम तत् निर्भय पद की खोज के वास्ते आत्म नेष्ठी सतगुरु की रहनुमाई अधिक लाज़मी है। ऐसी परम स्थिति में प्राप्त हुए हुए महापुरुषों का निर्बन्ध जीवन यानी निष्कामता निर्मानता, उदासीनता, नेह चलता औरपरोपकार सहित परम शुद्धता को धारण किए हुए जो नित ही अन्तर विज्ञान सरूप में नेहचल रहते हैं। ऐसे सत्पुरुषों की सत् शिक्षा से मन्दबुद्धि वाला पुरुष भी सत पद को प्राप्त हो सकता है।

बचन ८१. जिस सत पुरुष के अन्तर आत्म साक्षात्कार हुआ है और तमाम शारीरिक दोषों से जो पवित्र हुआ है, यानी तमाम इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा से जो निर्द्वन्द हुआ है। ऐसे महान तपीश्वर सन्त की संगत और शिक्षा से सत्मार्ग में सफलता प्राप्त होती है। अहंकार सहित बुद्धि तमाम शारीरिक विकारों में ही विचरती है और शारीरिक विकारों का ही चिन्तन करती है। एक लमहा भर भी निर्विकार नेहकर्म नहीं हो सकती है। ऐसे परम अन्धकारमयी जीवन से जिसने निर अहंगभाव में स्थिति प्राप्त की है, और आत्मा नेहकर्म सरूप के चिन्तन में जो जागृत हुआ है ऐसे तत्त्वदर्शी सत पुरुष की संगत से निर्मल योग प्राप्त होता है।

बचन ८२. कथनी और करनी को मुकम्मल करके जो केवल अखण्ड अविनाशी शब्द आत्मा में स्थित हुआ है और स्थूल प्रकृति से असंगता और अचेष्टा को जो प्राप्त हुआ है और तमाम शारीरिक विकारों से जो नित काल निर्बन्ध रहता है। ऐसे निवास शान्त गति के बोधक सन्त की शरणागति होने से निर्मल भक्ति और योग प्राप्त होता है।

बचन ८३—जब बुद्धि परम शुद्धता को धारण किये हुए तमाम मानसिक विकारों के खेद से निर्बन्ध होने का यत्न करती है, तब ही ऐसे परम तत्व वेत्ता पुरुष की संगत से तृप्त को प्राप्त होती है। क्योंकि उस महापुरुष ने खुद अहंकार की मलिन से पवित्रता प्राप्त की है और परम शुद्ध सरूप आत्म रस को पान करके निर्वास और नेहकर्म स्थिति को प्राप्त हुआ है। ऐसे सतपुरुषों के निर्मल विचारों को बार बार निध्यासन करने से बुद्धि सतमार्ग में दृढ़ होती है।

बचन ८४—शरीर रूपी संसार को धारण करके बुद्धि मन की अनन्त प्रकार की मनन भावनाओं में आसक्त हो करके मिथ्या नाम रूप, गुण व कर्म के खेद को धारण करती रहती है। जब तक सत् स्वरूप आत्मा के चिन्तन को प्राप्त न किया जावे, तब तक मिथ्या नाम रूप के खेद से निर्बन्ध होना अति कठिन है जो संसार का सूक्ष्म मूल सरूप है, और नित जन्म मरण के चक्र में फिराने वाला दोष है, और कर्तापन त्रिगुणी माया का जो फैलाओ है।

बचन ८५—बुद्धि जब मनन रूप को धारण करती है, तब उसको मन कहते हैं। यानी नित ही इन्द्रियों के अनुकूल और प्रतिकूल भोगों की चेष्टा को पलक पलक विखे मनन करना ही मन का स्वरूप है। ऐसे मन अनन्त प्रकार की चेष्टाओं को मनन करता हुआ नित असत नाम रूप गुण व कर्म रूपी सूक्ष्म स्थूल संसार को धारण करता रहता है। जब तक बुद्धि ऐसे अनर्थक मनन भाव के त्याग को प्राप्त नहीं होती है, तब तक मन के वश हो करके नित ही प्रतिकूल करम करती है।

बचन ८६—असत् नाम रूप गुण व कर्म जो मिथ्याकार वाणी हर वक्त अन्तर में प्रगट होती रहती है, जब तक बुद्धि इस मन वाणी के खेद से निर्बन्ध नही होती है, तब तक निर्वाण सरूप आत्मा का बोध नहीं हो सकता है, इस वास्ते इस असत् नाम रूप की कल्पना से निर्मल होने

का सार यत्न यह ही है कि सत सरूप आत्मा के चिन्तन में दृढ़ता धारण की जावे। यानी सत सरूप के चिन्तन से असत् नाम रूप के चिन्तन की जड़ता नाश को प्राप्त होती है और सत सरूप अविनाशी शब्द के बोध को प्राप्त करके बुद्धि नेहखेद हो जाती है।

बचन ८७—जिस तरह पर पक्क निश्चय करके बुद्धि असत नाम, रूप, गुण व कर्म के खेद को धारण करती रहती है और अपने आपको कर्ता भोगता मानती हुई नित ही कर्म द्वन्द में चलायमान होती रहती है। ऐसे अज्ञानमयी निश्चय से जब बुद्धि सतनाम का दृढ़ निश्चय चिन्तन करती है और कर्ता हर्ता एक चेतन सरूप प्रभु को ही जानती है, तब असत्नाम रूप की कल्पना को त्याग करके अपने आप में एकाग्र होती है। केवल सत् सरूप अनुभव करके परम प्रसन्नता को प्राप्त होती है।

बचन ८८—ऐसी यथार्थ विधि से सतनाम का जब अन्दर बाहर पूर्ण निश्चय से बुद्धि चिन्तन करती है, तब असत कल्पना का अभाव होता जाता है और सत सरूप की अनुभवता को प्राप्त होती है, जो परम शुद्ध और शाँत तत्त्व है। तमाम इन्द्रियों की चेष्टाओं से असंग हो करके केवल एक नाम परायण जब बुद्धि होती है, तब निर्विकार पद को प्राप्त होती है, जो अति आश्चर्य है।

बचन ८९—इस तमाम द्वन्द रूपी संसार का मूल असत् नाम रूप की कल्पना ही है, जो मिथ्या भ्रम बुद्धि में दृढ़ हुआ हुआ है। इस मूल भ्रम का नाश केवल सत नाम का चिन्तन है। जो यथार्थ विधि और निर्मल प्रेम से धारण किया जावे। ज्यों-ज्यों बुद्धि असत नाम रूप को त्याग करके सत नाम को ग्रहण करती है, त्यों-त्यों ही तमाम संकल्पत संसार के अभाव को प्राप्त होती है और आत्म सरूप की अनुभवता में एकाग्र हो करके निर्मल योग गति में प्रवीण होती है।

बचन ९०—तमाम मानसिक विकारों को शुद्ध विवेक की तलवार से काट कर निर्मल वैराग को धारण करके एक आत्म चिन्तन को प्राप्त करना ही परम कल्याण के देने वाला निध्यासन है। इस वास्ते अधिक से अधिक यत्न सतनाम के चिन्तन में करना चाहिये—क्योंकि असत्‌नाम रूप की कल्पना सतनाम के चिन्तन से ही नाश को प्राप्त होती है, जो तमाम विकारों की जड़ है।

बचन ९१—तमाम शारीरिक बल और सुख एक आत्मा ही के आधार जान करके अनन्य प्रेम से आत्म चिन्तन में दृढ़ होना ही परम कल्याणकारी निश्चय है। क्योंकि बुद्धि शारीरिक आसक्ति से तब ही छूट सकती है, जब शरीर का प्रकाशक तत्व निश्चय में दृढ़ होवे।

बचन ९२—एक आत्मा को ही मूल जीवन रूप जान करके तमाम शारीरिक मद मान त्याग करके जब बुद्धि निर्मल नाम चिन्तन में दृढ़ होती है, तब ही सर्व शुद्ध आत्म अनुभवता को प्राप्त होती है। यानी तमाम संसार व शरीर का कर्त्ता हर्त्ता एक आत्म सरूप महाप्रभु को जान करके जब बुद्धि नाम चिन्तन में दृढ़ होती है। तब नेह संकल्प आनन्द को प्राप्त होती है।

वचन ९३—अधिक यत्न से, अधिक प्रेम से और अधिक विवेक के बल से अपने मानसिक दोषों से पवित्र होने की ख़ातिर नित ही सतनाम के चिन्तन को दृढ़ करना चाहिये, क्योंकि नाम परायणता से बुद्धि देह परायणता जो मूल विकार सरूप हैं, उससे निर्बन्ध होती है, और शुद्ध सरूप आत्म तत्व को बोध करती है।

बचन ९४—नाम का असली निर्णय यह है कि जो खास बीज मन्त्र किसी सिद्ध पुरुष से प्राप्त हुआ होवे और अन्तर्गति व बहिर्गति में पूर्ण रूप से चिन्तन किया जा सके, और पल पल विखे सतगुरु शरणागत

धारण करके एक नाम के आधार ही पर अपनी तमाम की तमाम मनोवृत्तियों को निहचल करके बुद्धि को एकाग्र किया जावे ऐसे साधन को ही नाम चिन्तन और योग कहा गया है।

बचन ६५—जो नामुकम्मिल साधु के उपदेश को धारण किया होवे, जिसने खुद अपने अन्धकार को दूर नहीं किया हो, तो उस उपदेश में सफ़लता होनी कठिन है। क्योंकि इस योग मार्ग में गुरु करनी वाले के बग़ैर सत पद की प्राप्ति होनी अति कठिन है, जैसा कि आम बनावटी गुरु घर घर उपदेश देते फिरते हैं। उसका नतीजा महज़ एक व्योहार है, ना कि कल्याण है। नामुकम्मिल साधु का उपदेश न यथार्थ कल्याण दे सकता है और न ही बुद्धि उस पर पूर्ण निश्चय गत हो सकती है। ऐसा अच्छी तरह से समझना चाहिये।

बचन ६६—शिष्य ने गुरु की कुर्बानी को देख करके ही कुर्बानी करनी है। गुरु की पवित्रता को देख करके ही पवित्रता प्राप्त करनी है। गुरु के वैराग, अनुराग और निध्यास को देख करके ही शिष्य सर्वमयी गुण को धारण करके अपने तमाम अवगुणों से छूट सकता है। जब गुरु अवगुण वादी और महज़ कथनी ही है, तो शिष्य भी ऐसी ही गति को प्राप्त कर सकेगा। यह यथार्थ निर्णय समझना चाहिये, कि गुरु की सत् स्थिति से ही शिष्य निर्मल हो सकता है।

बचन ६७. जब कामिल सत पुरुष की शिक्षा प्राप्त होवे, तब बुद्धि गुरू के श्रेष्ठ गुणों को धारण करके सहज ही निर्मल भक्ति नाम चिन्तन को प्राप्त हो जाती है, और अपने तमाम अवगुणों को त्यागने में समर्थ होकर के निर्मल स्थिति को प्राप्त होती है, यानी गुरु जिससे निर्मल निर्वास पद को प्राप्त हुआ है, सत यत्न करके उसी परम स्थिति की प्राप्ति में शिष्य दृढ़ होता है।

बचन ६८. ऐसे वीतराग सत्पुरुष के सत उपदेश को ग्रहण करके नित ही एक नाम परायण होने का जब यत्न बुद्धि करती है, तब सहज

ही निर्मल योग को प्राप्त होती है। जो नेह खेद पद है। इस वास्ते पूर्ण निश्चय से, पूर्ण यत्न से, सतपुरुषों की संगत और सत नाम का चिन्तन दृढ़ करना चाहिये, जिससे मानसिक शुद्धि निर्भय सुख प्राप्त होवे।

बचन ९९. जब आहार सूक्ष्म व शुद्ध और व्यौहार शुद्ध मर्यादायुक्त और संगत केवल सत्पुरुषों की और स्वाध्याय केवल सत्पुरुषों के जीवन का धारण किया जाता है, तब एक नाम चिन्तन में दृढ़ता प्राप्त होती है। यानी तमाम भरोसे त्याग करके एक नाम के आधार बुद्धि निहचल होती है। ये ही अवस्था निर्मल भक्ति की है।

बचन १००. अधिक से अधिक समय जब नाम चिन्तन में ही दिया जाता है और तमाम लौकिक व्यौहार सूक्ष्म मर्यादा का धारण किया जाता है, तब बुद्धि नाम परायण हो करके तमाम शारीरिक विकारों की आसक्ति से निर्बन्ध हो जाती है और अन्तर में सत सरूप के बोध को प्राप्त होती है, ऐसी दृढ़ता को ही परम तपस्या कहा गया है।

बचन १०१. जब बुद्धि नाम चिन्तन में दृढ़ हो करके तमाम कर्मफल द्वन्द प्रभु आज्ञा में समर्पण करती है और अन्न प्रेम करके एक नाम को स्वांस स्वांस में चिन्तन करती है, तब कर्म दोषों से पवित्रता को प्राप्त होती है। यानी मिथ्याकार वासना का अन्तःकरण से अभाव हो जाता है और निर्वास अवस्था आत्म शब्द को अन्तर में अनुभव करती है। कर्म फल द्वन्द की आसक्ति से ज्यों ज्यों धीरज प्राप्त होता जाता है, त्यों त्यों कर्तापन की मलिन भी नाश को प्राप्त होती है जो मूल अन्धकार सरूप है।

बचन १०२. एक नाम के दृढ़ चिन्तन से कर्म फल द्वन्द की आसक्ति को त्यागना और प्रभु इच्छा में तमाम कर्मों को देखना ही निर्मल भक्ति है। ऐसे निर्मल त्याग को प्राप्त करके तमाम शारीरिक

दोषों से बुद्धि असंगता को प्राप्त होती है, जो परम कल्याण स्थिति है। द्वन्द् आसक्ति से नई से नई तृष्णा बढ़ती है और तृष्णा के बढ़ने से कर्तापन की आसक्ति प्राप्त होती है। यानी मजबूरी में भोग वासना को पूर्ण करने की खातिर कर्म करना पड़ता है। यह ही कठिन संसार का संग्राम है।

बचन १०३. अधिक यत्न से नाम चिन्तन में बुद्धि को एकाग्र करके होना और न होना जो कर्म फल द्वन्द् हैं, उसको प्रभु आज्ञा में समर्पण करते हुए जो निमित्त मात्र सत्कर्म करते हुए योगीजन विचरते हैं, वह ही कर्म जाल से विलग हो करके सत् सरूप नेहकर्म गति को प्राप्त होते हैं।

बचन १०४. शरीर द्वारा जो कर्म करने होते हैं उनका कर्ता और भोगता अभिमान त्याग करके जो गुणी निमित्त मात्र कर्म में विचरते हैं, और ईश्वर को ही कर्ता भोगता दृढ़ निश्चय से जानते हैं और निमष निमष विषे एक नाम चिन्तन में नेहचल होते हैं, वह ही परम तपोश्वर नेहकर्म गति और आत्म साक्षात्कार सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

बचन १०५. हर हालत में एक नाम का चिन्तन जो दृढ़ निश्चय से मन और पवन से करते हैं और मानसिक दोष पलक पलक विषे सत अनुराग के बल से अन्तर से त्यागते हैं, वह ही परम विवेकी सहज ही परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं। यानी नाम के दृढ़ चिन्तन से मिथ्या-कार चिन्तन का अभाव हो जाता है और बुद्धि एकाग्र हो करके केवल सत् सरूप में नेहचल होती है।

बचन १०६. नाम ही जिनका आधार है, नाम ही जिनका परम भोजन है, नाम ही जिनका परम व्योहार है, वह ही सत् गृही पुरुष तमाम विकारों से निर्मल हो करके आन्तरिक सत शान्त पद आत्म सरूप में स्थित होते हैं। यानी एक लमहा भी जब बुद्धि नाम का आधार नहीं छोड़ती है, तब तमाम कामनाओं और कल्पनाओं से पवित्र हो

करके सत सरूप अविनाशी शब्द में जाग्रत को प्राप्त होती है, जो अनन्त महिमा का सागर है।

बचन (१०७) नाम सिमरण से कर्त्तापन और कर्मफल द्वंद महा विकराल रूप संसार जब नाश को प्राप्त होता है, तब अकर्त सरूप अविनाशी शब्द का बोध होता है, जो नित निर्वास और निर्खेद है। इस वास्ते एक नाम के सिमरण को अधिक से अधिक यत्न करके दृढ़ करना चाहिये, जिससे तमाम मिथ्याकार संस्कारों का अभाव होवे, और परम शुद्ध सरूप निर्विषाद शब्द का बोध होवे, जो परम स्थिति है।

बचन (१०८) कर्तापन और कर्म वासना के जाल को केवल प्रभु समर्पण भाव से जो त्यागते हैं और एक नाम के पूर्ण आधार को प्राप्त करने का यत्न करते हैं, वह ही परम योगी आत्म सिद्धि को प्राप्त होते हैं। स्वांस की अंतरगति और बाहरगति में लगातार नाम का चिन्तन करना ही परम सिमरण है। और तमाम कर्मों का फल साथ साथ त्याग करके अपने कर्त्तापन से निर्बन्धन होना ही परम भक्ति है। ऐसी दृढ़ उपासना जब अन्तर में नेहचल होती है, तब बुद्धि अधिक निर्मल हो करके सत् सरूप अविनाशी शब्द आत्मा के बोध को प्राप्त होती है, जो केवल सरूप है।

बचन (१०९) एक नाम के आधार को प्राप्त करके तमाम मिथ्याकार वासनाओं से विजय प्राप्त करनी और आसक्ति रहित हो करके शारीरिक कर्मों में अचेष्ठ रूप में विचरना ही निर्मल योग है, यानी बुद्धि तमाम शारीरिक कर्मों की वासना से शुद्ध हो करके परम एकाग्रता को प्राप्त होती है और अन्तर में अविनाशी शब्द अखंड को अनुभव करती है, जो निर्भय पद है।

बचन (११०) जब तक कर्त्तापन और कर्म वासना अन्तःकरण में मौजूद रहती हैं, तब तक नाम चिन्तन में प्रभु को कर्त्ता, हर्त्ता, सुखदाता, सर्वाधार और रक्षक करके चिन्तन करना चाहिये। ऐसे निर्मल

प्रेम के बल से ही बुद्धि असतवाद जड़ता को त्याग करके केवल सत् परायण हो सकती है और परम शुद्धि को अन्तर में अनुभव करती है।

बचन (१११) जब बुधि ऐसे दृढ़ निश्चय में नाम परायण होती है। जिस तरह से जल को मीन चिन्तन करती है, तब शारीरिक भोगों के राग से निर्बन्ध हो करके वीतराग अवस्था आत्म सिधि को प्राप्त होती है, यानी तमाम शारीरिक आसक्ति एक नाम के दृढ़ चिन्तन के बल से त्याग करके नौ द्वारों से अन्तरमुख हो करके एक अखंड अविनाशी शब्द को अनुभव करती है, जो नित निर्विकार और निर्खेद है। यानी ऐसे निर्मल अभ्यास से जब बुद्धि नौ द्वारों की चेष्टाओं से असंग होती है, तब अविनाशी शब्द को अन्तर में अनुभव करके परम प्रसन्नता को प्राप्त होती है।

बचन (११२) महा विकारों की अग्नि शुद्ध चिन्तन के बल से ही नाश को प्राप्त होती है। इस वास्ते तमाम का तमाम यत्न एक नाम के चिन्तन में दृढ़ करना चाहिए, यह ही तपस्या भक्ति और योग है। अधिक विवेक सहित अधिक श्रद्धा सहित हो करके जो नाम परायण होने का यत्न करते हैं, वोह अधिक जड़ बुद्धि वाले भी सहज में ही परम सिधि को प्राप्त हो जाते हैं।

बचन (११३) परम तप, परम जप, परम त्याग और परम स्थिति केवल एक नाम के चिन्तन से ही प्राप्त होती है, जो निर्मल भावना और निर्मल जुगति करके धारण किया जावे, यानी जो नाम प्राण सन्धि को दृढ़ करके अन्तर बाहर पूर्ण रूप से उच्चारण किया जावे वो ही नाम अन्तःकरण में नेहचल होता है, और तमाम असत् नाम रूप कामनाओं को नाश करके अविनाशी शब्द का साक्षात्कार करता है। इस वास्ते ऐसे नाम में नेहचल हो करके अपने जीवन का उद्धार करना ही परम उच्च कर्तव्य है।

बचन (११४) जो दृढ़ निश्चय से एक नाम के परायण हुए हैं, और कर्म फल की आसक्ति प्रभु आज्ञा में नित समर्पण करते हैं, और

तमाम जीवों की जो कल्याण चाहते हैं, ऐसे परम विवेकी ही निर्भय स्थिति आत्म पद को बोध कर सकते हैं। निर्मल विवेक और निर्मल अनुराग के बगैर ऐसी नाम की अखंड स्मृति प्राप्त होनी अति कठिन है। इस वास्ते ही इस विज्ञान मार्ग में चलते तो बहुत हैं, मगर परम स्थिति को प्राप्त कोई विरला ही होता है।

बचन (११५) जिसने निश्चय करके तमाम शारीरिक भोगों से उपरसता प्राप्त की है और अधिक विश्वास जो गुरु बचनों में रखता है और सत् साधन में जो अधिक चतुर है, यानी एक पलक भी नाम साधन के बगैर जो नहीं त्यागता है, ऐसा दृढ़ अनुरागी ही परम सिधि आत्म साचात्कार पद को प्राप्त होता है, जो अकथ और अलेख है।

बचन (११६) दृढ़ निध्यासन जब नाम का धारण किया जाता है, तब तमाम संकल्प विकल्प अभाव हो जाते हैं और बुद्धि एक ध्यान में नेहचल होती है और द्वन्द की आसक्ति से निर्वन्धन होती जाती है। ऐसे दृढ़ अभ्यास की प्राप्ति से अन्तर में सत शब्द आत्म जोत अनुभव होती है। प्रथमे शब्द की अनुभवता नाभि स्थान में प्रतीत होती है। बाद में वह अखण्ड धार ऊपर मस्तिष्क के दरम्यान अनुभव होने लगती है। ऐसी स्थिति जब अन्तर में बोध होवे, तब बुद्धि शारीरिक कामनाओं से पवित्र हो करके आत्म सरूप में एक ध्यान होती है। जब ऐसी ध्यान की अवस्था अधिक परपक्व हो जाती है तो मस्तिष्क के ऊपर शुन्न शिखर में अखण्ड नाद अनुभव होता है। तब बुद्धि दुर्मत छाया से पवित्र हो करके अपने निज सरूप में विश्राम पाती है और तमाम शारीरिक दोषों से विलग हो जाती है, भूख, प्यास, निद्रा पर विजय हासिल कर लेती है। द्वन्द खेद सरूप राग द्वेष की अग्नि से बिल्कुल शीतल हो जाती है और तमाम इन्द्रियों के भोगों में अचेष्ट रूप होकर विचरती है। ऐसी अवस्था ही परम सिद्धि योग आरूढ़ता का सरूप है।

बचन (११७) मानसिक विकार अधिक प्रबल हैं। अधिक यत्न

करने से भी बुद्धि की पवित्रता को नाश कर देते हैं। इस वास्ते इस योग कल्याण मार्ग में परम धीर पुरुष ही पूर्ण कामयाब हो सकता है। यानी कर्तापन अभिमान अधिक से अधिक मत यत्न करने से ही अभाव होता है, जो आत्म सरूप की अनुभवता पर छाया हुआ है।

बचन (११८) नाम के दृढ़ निध्यासन से और तमाम कर्म फल प्रभु आज्ञा में समर्पण करने से कर्त्तापन अभिमान का सहज ही अभाव हो जाता है। ऐसे निश्चय को ही भक्ति योग, कर्म योग करके कहा गया है। बगैर समर्पण बुद्धि के नाम के निध्यासन में परिपक्व होना अति कठिन है। क्योंकि द्वन्द खेद एक लमहा भी अचिन्त और अडोल होने नहीं देता और ऐसी चंचल हालत में आत्म रस का अनुभव करना महज़ नासमझ लोगों का विचार है।

बचन (११९) बुद्धि की चंचल हालत ही संसार का स्वरूप है, और बुद्धि का निश्चल होना ही सरूप का बोध होना है और कर्तापन अभिमान जब तक बुद्धि में छाया हुआ है, तब तक कर्म फल द्वन्द की भयानक वासना बुद्धि को एक लमहा भी अकर्म नहीं होने देती। इस वास्ते अधिक यत्न प्रयत्न से अपने कर्तापन को त्याग करना और साक्षी सरूप को कर्ता हर्ता जानना और द्वन्द खेद की आसक्ति से असंग होना समर्पण बुद्धि करके, यह ही कल्याणकारी योग है।

बचन (१२०) आत्मा नित अकर्ता और नेहकर्म स्वरूप है और बुद्धि कर्तापन सहित और कर्म वासना संयुक्त है। इस वास्ते जब तक इस कर्तापन मूल अन्धकार का अभाव न हो जावे, तब तक आत्मा का बोध नहीं हो सकता है। भक्ति योग, कर्म योग और ज्ञान योग की सार यही है कि बुद्धि कर्तापन को त्याग करके अकर्ता सरूप आत्मा का बोध प्राप्त करे जो नित नेहखद और परम प्रकाश सरूप है।

बचन (१२१) ज्यों ज्यों बुद्धि कर्तापन में दृढ़ होती है, त्यों त्यों कर्म फल द्वन्द की आसक्ति को धारण करके अनन्त प्रकार की वासना

और अनन्त प्रकार के कर्म चक्र में चलायमान होती रहती है। एक पलक भी नेहकर्म और निर्वास नहीं हो सकती है। यह ही अवस्था मिथ्यावाद और नास्तिकवाद की है।

बचन (१२२) ऐसे कर्तापन अद्भुत भ्रमजाल से छुटकारा प्राप्त करने का केवल यह ही मार्ग है, कि सर्व साक्षी सरूप आत्मा की परायणता और अनुभवता प्राप्त की जावे, जो सर्व शान्ति सरूप है। जब तक प्रथम देह परायणता को त्याग करके आत्म परायणता को प्राप्त न किया जावे, तब तक आत्म अनुभवता को प्राप्त होना अति कठिन है। इस वास्ते अधिक सत् विश्वास और सत् अनुराग के बल से तमाम शारीरिक भोग क्रीडा से निर्बन्ध हो करके केवल आत्म परायणता में अपने आपको निश्चल करना ही सर्व दोषों के नाश करने वाला साधन है।

बचन (१२३) ऐसे परम तत्व सरूप आत्मा को नित ही जानने की कोशिश करनी परम कल्याण सरूप है। यानी नेहकर्म, निर्वास, अचल, अडोल, अकर्ता, अभोगता, अछेद, अभेद, सर्वज्ञ और नित सरूप होने के कारण सर्व प्रकृति के दोषों से भिन्न है और बुद्धि ऐसे अविगत सरूप के सिमरण ध्यान के बल से तमाम प्रकृति के दोषों से निर्बन्ध हो जाती है। मानुष जन्म का यह ही यथार्थ साधन है।

बचन (१२४) परम तत्व आत्मा की परायणता को छोड़ करके महज़ कर्तापन अभिमान के वश हो करके कर्म फल द्वन्द की आसक्ति में जड़ हो करके विचरना पशु से भी नीच जीवन है, क्योंकि अधिक कर्तापन की जड़ता और अधिक कर्मफल द्वन्द की जड़ता से भयानक वासना का जाल प्रगट होता है, जो कि अपनी भी नाश और दूसरों की भी नाश करने वाला होता है। यह ही जीवन असुरवाद का सरूप है। यानी कर्तापन की जड़ता से कभी भी कर्मफल भोग की वासना पूर्ण नहीं होनी है, बल्कि कर्म फल भोग की अति आसक्ति में आ करके

ऐसे ऐसे क्रूर कर्म बुद्धि धारण करती है, जिससे अपनी भी घातक और दूसरों की भी घातक हो जाती है।

बचन (१२५) मानुष जन्म की उच्चता यह ही है कि इस घोर खेद सरूप प्रकृति जाल से असंगता प्राप्त की जावे। जो परम शान्ति का सरूप है, उस शान्ति की चाहना हर एक के अंदर मौजूद है, मगर कर्तापन प्राकृतिक जाल की असंगता की बजाये उसमें जड़ हो करके अविनाशो शान्ति की तलाश सब कर रहे हैं। यह ही अवस्था अति मूढ़ता की है।

बचन (१२६) तमाम वेद शास्त्रों और सिद्धों की सार यह ही है कि अपने भ्रम अंधकार कर्तापन को त्याग करके अकृत सरूप अविनाशो तत्व के बोध को प्राप्त किया जावे, जो अचल शान्ति है। अधिक यत्न से, अधिक विवेक से, अधिक प्रेम से, और अधिक अपनी निर्मल कल्याण की चाहना रखते हुए एक आत्मा सर्व जीवन शक्ति के विश्वास और निध्यास को दृढ़ करते हुए निर्मल बोध को प्राप्त कर लेवें—जो निज धाम है।

बचन (१२७) जब निश्चय करके बुद्धि तमाम शारीरिक विकारों को विकार सरूप करके देखती है और इनमें अधिक अशान्ति प्रतीत करती है, तब सत् सरूप के परायण होने का यत्न करती है। आगे ज्यों ज्यों सत् आधार को प्राप्त होती है, त्यों त्यों कर्तापन की मलिन से शुद्ध होती जाती है। आखिर अधिक निर्मल प्रेम के बल से सत् सरूप की अनुभवता को प्राप्त होती है, जो सर्व सरूप और निर्भय धाम है।

बचन (१२८) ऐसे साक्षी सरूप के परायण हो करके विचरना ही सर्व दोषों से पवित्रता के देने वाला निश्चय है। ज्यों ज्यों बुद्धि सत् आधार को प्राप्त होती है, त्यों त्यों अशुद्ध वासना से पवित्र होती जाती है। अशुद्ध वासना के त्याग से अशुद्ध कर्म का त्याग प्राप्त होता है, और अशुद्ध कर्म के त्यागने से बुद्धि बलवान हो करके अपने आपको

केवल सत् परायण बनाने का यत्न करती है। ये निश्चय ही ईश्वर भक्ति का सरूप है।

बचन (१२९) जिसने मानसिक दोषों से पवित्रता प्राप्त नहीं की है और जो निश्चय करके अंतर से सत् परायण नहीं हुआ है और बाहर से दिखलाने मात्र बड़े धर्म कर्म को धारण किये हुए है, वह तुच्छ बुद्धि वाला अपने जीवन में कुछ हासिल नहीं कर पाया है, बल्कि दम्भ को धारण करके अपने आपकी नाश की है।

बचन (१३०) जन्म से ही हर एक शरीरधारी अपनी कल्याण की खातिर यत्न पर यत्न कर रहा है, मगर अन्ध बुद्धि होने के कारण अपनी कल्याण महज़ शारीरिक भोगों में ही देखता है। इस वास्ते अपने अपने शारीरिक भोगों की प्राप्ति में हर एक जीव चतुर हो करके दौड़ रहा है। मगर प्राकृतिक स्वभाव के मुताबिक तमाम प्राकृत जाल तबदीली युक्त और खेद स्वरूप है। इसमें सत् शान्ति की चाहना रखनी महज़ एक अधिक मूढ़ता है। न ही शरीर पूर्ण है और न ही शरीर के भोग पूर्ण हो सकते हैं। इस वास्ते पूर्ण तत्व की खोज करनी ही जीवन का पूर्ण आशावादी होना है। सो पूर्ण तत्व एक आत्म स्वरूप है। जो तमाम जड़ और काल सरूप संसार को प्रकाश कर रहा है।

बचन (१३१) ऐसे नित परिपूर्ण अविनाशी तत्व की खोज करनी ही परम कल्याण सरूप है, इस वास्ते परम यत्न से एक आत्मा के परायण हो करके अपनी मिथ्याकार वासनाओं से पवित्र होना चाहिये जो परम खेद सरूप है। वासना की पूर्ति शारीरिक भोगों से नहीं हो सकती है, बल्कि आत्मा के अनुभव से होती है। ये यथार्थ ज्ञान हर समय निश्चय में दृढ़ करना चाहिये।

बचन १३२. तमाम प्रकृति वासना का ही सरूप है और वासना से हीं हर एक की तबदीली हो रही है, और वासना के खेद को पूर्ण करने की खातिर तमाम देहधारी दौड़ रहे हैं, मगर वासनायुक्त

पदार्थों को धारण करके बजाय वासना की पूर्ति के उल्टे वासना के जाल को फैला करके नित अधीरता को प्राप्त हो रहे हैं। ऐसे संसार के सही भेद को जान करके परिपूर्ण तत्व आत्म स्वरूप की खोज करनी चाहिये जो तीन काल निर्वास और निर्दोष है।

बचन १३३. वासना की पूर्ति की खातिर, कर्म के खेद से छूटने की ख़ातिर और नित नए से नए जन्म मरण के चक्कर को समाप्त करने की खातिर, नित तृप्त नित नेहकर्म और नित सम सरूप अविनाशी आत्मा की खोज में दृढ़ होना चाहिए। वह ही परम पद कल्याण सरूप है।

बचन १३४. ऐसे परम तत्व के निश्चय को प्राप्त करके अपनी कल्याण और दूसरों की कल्याण करनी चाहिये। यह ही देवताओं का मार्ग है। अपने बन्धन को, अपने भ्रम को, अपनी अशान्ति को दूर करने की ख़ातिर खुद सत यत्न धारण करना चाहिये, क्योंकि अपने सत यत्न से ही सर्व कल्याण है। जो सत् यत्न को छोड़ करके कल्पित इष्ट देवों का आसरा बना लेते हैं, वो इस भयानक प्राकृतिक चक्र में हर प्रकार दुखित रहते हैं।

बचन १३५. इस अधिक भ्रम चक्र संसार से जागृत हो करके अपने कल्याण के मार्ग को प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि शरीर की विनाश निकट आ रही है। जिस गुणी पुरुष ने शरीर की अन्तिम दशा का विचार किया है और शारीरिक भोगों की अशान्ति को भी अनुभव किया है, वह ही निर्मल विवेकी सत्वाद के मार्ग को धारण करके परम सिद्धि को प्राप्त होता है।

बचन १३६. अपने निर्मल विवेक से और सत पुरुषों की संगत में जब बुद्धि निर्मल निध्यास को प्राप्त होती है, तब तमाम जन्म जन्म के संस्कारों को सहज ही भस्म करके अपने निज सरूप में नेहचल हो जाती है।

बचन १३७. जब बुद्धि तमाम प्राकृतिक विकारों से पवित्रता को प्राप्त होती है, और एक नाम के निश्चास में अधिक दृढ़ होती है, तब नेहकर्म सरूप आत्मा को अन्तर में अनुभव करके परम शान्ति को प्राप्त होती है और शारीरिक कर्मों में नित निरासक्त हो करके विचरती है। ये अवस्था ही सहज है, जो ऐसी स्थिति को प्राप्त हुआ है, वो ही पूर्ण संसार की गति को जानने वाला पुरुष है। उसका आदर्श जीवन दूसरे जीवों के वास्ते परम कल्याणकारी है।

बचन १३८. जब बुद्धि शरीर से भिन्न हो करके आत्म सरूप को अनुभव करती है, तब तमाम शारीरिक कर्म दोषों से निर्बन्ध हो जाती है। क्योंकि आत्मा तीन काल अकर्म और अखेद सरूप है। मगर शरीर से भिन्न करके आत्मा को तब ही जान सकती है, जब तमाम शारीरिक विकारों की आसक्ति को त्याग करके दृढ़ निश्चय से अपने आपको एक आत्मा के समर्पण करती है। जो ऐसे सत् यत्न को प्राप्त नहीं हुए हैं और न ही प्रकृतिक दोषों से उपरामता प्राप्त की है वह कथनी ज्ञानी ऐसे ही जानने चाहियें जैसे सागर व दरियाओं का नक्शा देख करके कोई अपनी प्यास बुझा लेवे।

बचन १३९. अधिक निर्मल यत्न से अपने भ्रम की फाँसी को काट करके एक आत्म सरूप के दृढ़ निश्चय को प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि आत्म निश्चय ही सरब तोहमात और सरब आसक्ति से निर्बन्धन करने वाला है। जिसने आत्म निश्चय को छोड़ करके अनात्म पदार्थों में सत् शान्ति तलाश की है, वो इस संसार सागर से परम दुःखत और निराशावादी ही होकर के चला है।

बचन १४०. तमाम संसार तबदीली युक्त है। ऐसे ही हर एक का शरीर। ऐसे तबदील होने वाले चक्र से जागृत हो करके नित सरूप आत्मा की खोज करनी चाहिये, जो तीन काल अनादि है। इस प्रकृति की दौड़ में सब से अधिक जानते हुए भी अनजान है।

अधिक पदार्थ प्राप्त किये हुए भी तृषावन्त है । अधिक जिये हुए भी जीवन आशा मौजूद है । इस भ्रम जाल से स्वतंत्र हो करके खोज करनी चाहिये कि जिसके जानने से सब कुछ जाना जाए और जिसकी प्राप्ति से सर्व प्राप्ति हो जावे । यानी तमाम आशा पूर्ण हो जावे । वोह एक केवल सत सरूप आत्मा ही है । जिसने ऐसा निश्चय किया है वो ही परम प्रवीण पुरुष है ।

बचन १४१. ऐसे परम तत्व आत्मा के परायण हो करके ही तमाम खेदों से कल्याण प्राप्त होती है, क्योंकि आत्म निश्चय से अनात्म भावना नाश होती है । आत्म चिन्तन से अनात्म चिन्तन नाश होता है । आत्म अनुभवता से संसार की सत्ता का नाश हो जाता है, जो बार बार बुद्धि को भरमाता है ।

बचन १४२. जब दृढ़ निश्चय से बुद्धि अपने आपमें एकाग्र हो करके सत् सरूप आत्मा को अनुभव करती है तब ऐसी केवल शान्ति को प्राप्त होती है, जो अगोचर और अलेख है । यानी शरीर रूपी संसार की अधिक तृष्णा जो नाना प्रकार के कर्म चक्रों में जकड़ती है, वह नाश को प्राप्त होती है और बुद्धि निर्वास और नेहकर्म हो करके स्थिर होती है ।

बचन १४३. जब बुद्धि अधिक विश्वास से जीवन शक्ति आत्मा को ही तमाम जड़ प्रकृति का आधार जानती है, तब तमाम प्राकृतिक विकारों से निर्बन्ध हो करके आत्म चिन्तन में आरूढ़ होती है, और अधिक प्रेम की प्रबलता से तमाम कर्तापन अन्धकार से निर्मल हो करके नेहकर्म सरूप आत्मा में स्थित होती है ।

बचन १४४. जब बुद्धि अधिक निर्मल प्रेम से एक आत्म चिन्तन में दृढ़ होती है, तब तमाम कामना और कल्पना को छेदन करके नौ द्वार शरीर के अन्तर अडोल हो जाती है । तब सत सरूप अविनाशी शब्द में रस का पान करके जन्म जन्म की तपन से शीतलता को प्राप्त होती है । उस वक्त और कोई पदार्थ दुर्लभ इस संसार में उस गुनी के

वास्ते नहीं रहा है। धन्य वह पुरुष हैं, जिसको ऐसी स्थिति प्राप्त होती है।

बचन १४५. जब बुद्धि केवल आत्म प्रेम को दृढ़ करती है, तब तमाम शारीरिकि सम्बन्धियों से निर्मोह हो करके विचरती है यानी तमाम आकारमयी शरीर नाश रूप दिखलाई देते हैं, और एक आत्मा निराकार ही अविनाशी सरूप प्रतीत होता है। इस वास्ते नाश सरूप से क्या प्रेम किया जावे। वो तो केवल अविनाशी के प्रेम में ही मगन हो रहा है, और अपने आप में निर्मल प्रसन्नता को प्राप्त किया है।

बचन १४६. जब बुद्धि दृढ़ निश्चय से एक आत्म सरूप के परायण होती है, तब तमाम शारीरिक दुःख व सुख की आसक्ति से निर्बन्ध हो जाती है और अधिक निर्मल ध्यान में नेहचल हो करके आत्म आनन्द को अनुभव करती है। जैसा कि आत्मा को शरीर में व्यापा हुआ भी और न्यारा भी करके देखती है। ऐसे आश्चर्य को अनुभव करके परम शून्य अवस्था को प्राप्त होती है, जो नित शान्ति है।

बचन १४७. जब बुद्धि आत्म चिन्तन के दृढ़ निध्यास को प्राप्त होती है, तब अन्तर में एक आत्म सरूप को अनुभव करती है, जो काल में अकाल, वासना में निर्वास, आकार में निराकार, द्वन्द में निर्द्वन्द, कर्म में अकर्म, द्वैत में अद्वैत, माया में ब्रह्म सरूप हो करके व्याप रहा है। जब ऐसी महिमा को अन्तर में जानती है, तब अपने आप में परम स्वतन्त्र हो करके शारीरिक कर्मों से निर्शोक, निर्मोह हो करके स्थिर होती है। ये स्थिति ही परम कल्याण सरूप निर्वाण है।

बचन १४८. जब बुद्धि आत्मा का अन्तर में साक्षात्कार कर लेती है, तब शारीरिक क्रिया में निर्मान, निर्मोह, निष्काम, निर्द्वन्द हो करके विचरती है। यानी नित ही अपने में असंग और अलेप हो करके स्थित होती है, और तमाम शारीरिक वासना के जाल से विलग हो

जाती है। ये ही परम नेहचलता है। जिसको प्राप्त हुई है, वोह सर्व कीर्ति योग पुरुष हैं।

बचन १४९. ऐसे अद्भुत माया के चक्र से उसी पुरुष ने विश्राम पाया है और नित शान्ति को प्राप्त हुआ है, जिसने शारीरिक यात्रा के होते होते एक परम तत्व आत्मा में स्थिति प्राप्त की है और तमाम शारीरिक विकारों से निर्बन्ध हो करके निर्भय हुआ है। उस पुरुष का यत्न और कर्म तमाम मनुष्यों के वास्ते एक आदर्श सरूप है।

बचन १५०. जिस मनुष्य ने अति मद को धारण करके सहज भोग क्रीड़ा में ही जन्म व्यतीत किया है या जिसने एक आत्म चिन्तन को छोड़ करके शारीरिक भोगों की खातिर अनन्त प्रकार के इष्टदेव बना कर पूजे हैं और भी कई तरह के अनार्थक साधन धारण किये हैं। सबका नतीजा और सबका यत्न बजाये कल्याण के उल्टा अकल्याण सरूप ही जानना चाहिये।

बचन १५१. जिसने अति मद को धारण करके परमार्थक ग्रन्थों का अधिक निश्यास किया है और अपने दोषों से पवित्रता हासिल नहीं की है। उस विद्वान ने हाथ में रोशनी लेकर कुंए में छलांग लगाई है और अपने जीवन को निरर्थक ही खो दिया है।

बचन १५२. जिस पुरुष ने अहंकार की मलिन से शुद्धता प्राप्त नहीं की है। और सतश्रद्धा युक्त हो करके एक आत्म सरूप के परायण नहीं हुआ है वह बड़े से बड़ा विद्वान और बड़े से बड़ा जाहरी धर्मवान् होते हुए भी नीच पुरुष ही जानना चाहिये, क्योंकि अन्तःकरण के दोष सत् परायण होने के बग़ैर छूट नहीं सकते हैं। कपट, झूठ और बनावट सत् स्थिति के बाधक हैं।

बचन १५३. अति स्वतन्त्र बुद्धि को धारण करके अपनी निर्मल कल्याण की खातिर जिस पुरुष ने सत धर्म का आसरा लिया है और नित मानसिक दोषों को पवित्र करने के यत्न में जो दृढ़ हुआ है वह सहज ही निर्मल भक्ति को प्राप्त हो करके अपनी पूर्ण कल्याण को

प्राप्त कर लेवेगा। यानी निर्मल भावना से निर्मल यत्न प्राप्त होता है, और निर्मल यत्न से निर्मल सिद्धि प्राप्त होती है। इस वास्ते सत विश्वास की दृढ़ता से इस भव दुस्तर से जीवित में ही सत विजय हासिल कर लेनी चाहिये।

बचन. १५४. सत परायण होने से असत् परायणता जो अन्धकार का मूल है, वह नाश होता है और सत परायणता से निर्मल प्रेम प्राप्त होता है, जो सत् तत्व की अनुभव गति को देने वाला है। इस वास्ते पूर्ण निश्चय से, पूर्ण प्रेम से, एक आत्म सरूप के परायण हो करके अपने तमाम शारीरिक विकारों से निर्बन्ध होना चाहिये और मन करके, वचन करके, और शरीर करके दूसरे जीवों की अधिक सेवा करनी चाहिये, ज्यों-ज्यों अपने तमाम सुख दूसरों की सेवा में समर्पण किये जाते हैं त्यों-त्यों अविनाशी आत्मानन्द अंतर में जागृत होता है, जो परम प्रसन्नता का सरूप है।

बचन १५५. एक आत्मा के परायण हो करके निष्काम सरूप में अपने जीवन को दूसरों की कल्याण की खातिर ही समझना और भली प्रकार करके दूसरों की सेवा करनी, ऐसे सत् यत्न के धारण करने से तमान अहंग विकार की मैल शुद्ध हो जाती है और बुद्धि निरअहंग अवस्था को प्राप्त करके अपने आप में निर्मल बोध को प्राप्त होती है। यानी सत सरूप में स्थिर होती है। ये ही अवस्था योग की परम स्थिति है।

बचन १५६. मूल, भ्रम, अहंग विकार से शुद्ध होने की खातिर प्रथम भोगवाद और मिथ्यावाद के अद्भुत विस्तार को समझना चाहिये। जब ऐसे शुद्ध विवेक को धारण कर लिया जावे, तब एक सत सरूप जीवन शक्ति के निश्चय को दृढ़ करना चाहिये और बढ़ते हुए मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करनी चाहिये। यानी सादगी, सेवा, सत्, सत्संग और सत नाम के सिमरण में दृढ़ता धारण करनी चाहिये। जब ऐसे सदाचार में बुद्धि नेहचल होवे तब ही भयानक काम,

क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की अग्नि शीतलता को प्राप्त होती है, और अन्तःकरण में देव वृत्तियाँ पूर्ण रूप में प्रकाशित होती हैं।

बचन १५७. जब निष्कामता, निर्मानता, उदासीनता, नेहचलता और परोपकार आदि श्रेष्ठ देव गुण अन्तःकरण में प्रगट होते हैं, तब पूर्ण निश्चय से बुद्धि आत्म परायण हो जाती है और देह परायणता जो तमाम विकारों का मूल है इससे निर्बन्ध हो जाती हैं। तब ही निर्मल भक्ति में अपने आपको परम शुद्ध यानी निरसंकल्प करके सत् सरूप आत्मा में नेहचल होती है। यही परम सिद्धि की अवस्था है।

बचन १५८. तमाम शारीरिक विकारों से पवित्र होने की खातिर एक आत्म निश्चय को दृढ़ करना चाहिये। तमाम भय व रंज से छूटने की खातिर एक आत्म चिन्तन को धारण करना चाहिये। परम प्रसन्नता निर्भय पद प्राप्ति की खातिर एक आत्म सरूप का साक्षात्कार करना चाहिये।

बचन १५९. इस भयानक संसार संग्राम में नित ही निर्मल कर्तव्य को पालन करते हुए अपने मानसिक दोषों को छेदन करके एक परम तत्व अविनाशी सरूप आत्मा के परायण हो करके इस जीवन यात्रा को पूर्ण कर लेना चाहिये। यानी जीवित में ही परम प्रसन्नता, परम निर्भयता और सर्व आत्म सरूप की अनुभव गति को प्राप्त करके अपने आपमें परम सन्तुष्ट हो जाना चाहिये।

बचन १६०. इस नाशवान शरीर में आ करके अपनी निर्मल कल्याण करनी ही मानुष जनम की उच्चता है, और ऐसा निर्मल यत्न सर्व के वास्ते कल्याणकारी है। यह परम सिद्धि सरूप प्रसंग योग मार्ग का बोध निर्मल चित्त से विचार करके सत् निध्यासन को प्राप्त कर लेना चाहिये। यह अति गुह्य प्रसंग अति सरल भाव में विचार किया गया है, ताकि छोटी से छोटी बुद्धि वाले भी संसार के जीवन को समझ करके अपने निर्मल उधार का प्रयत्न कर सकें, और परम

स्थिति निर्भय पद को प्राप्त हो सकें, सब गुणी पुरुषों को अपनी जीवन उन्नति का सत अनुराग प्राप्त होवे। जिससे निरन्तर सत सरूप आत्मा का बोध प्राप्त करके पूर्ण आशावादी बनें, और परम कल्याण पद को प्राप्त होवें। सब सज्जनों को निर्मल यत्न प्राप्त होवे।

(ख) "सत मार्ग की स्थिति का निर्णय"

(१) सत विचार की दृढ़ता,

(२) सत विश्वास की दृढ़ता,

(३) सत निध्यास की दृढ़ता,

(४) सत तत्व बोध की दृढ़ता,

(५) सत स्थिति,

(१) सत विचार की दृढ़ता से बढ़े हुये शारीरिक विकारों का नाश हो जाता है, और सत कर्म में प्रेम बढ़ता है, और सत विश्वास दृढ़ होता है, और पूर्ण सत गुरु प्राप्ती की तड़प पैदा होती है।

(२) सत विश्वास की दृढ़ता से मलीन वासनाओं का अभाव हो जाता है। क्षमा, दया, धीरज और अनुराग में दृढ़ होकर सत नाम के सत निध्यास को प्राप्त होता है। यानी अखण्ड प्रभु नाम की स्मृति में दृढ़ होने का यत्न करता है।

(३) सत निध्यास की दृढ़ता से शुभ अशुभ कामनाओं का नाश होकर निष्काम भाव में बुद्धि निश्चल होती है। यानी तमाम भोगों से पूर्ण वैराग प्राप्त होता है और ऐसे ही दृढ़ यत्न से यानी पूर्ण अभ्यास से सुरति एकाग्र होकर सत तत्व अविनाशी शब्द को अन्तर में बोध करती है।

(४) सत तत्व की अनुभवता के दृढ़ होने से निष्काम कर्म यानी प्रभु आज्ञा में तमाम कर्मों की समर्पणता की दृढ़ता प्राप्त होती है,

और निर्मल भगती प्रेम को सुरति धारण करके खण्ड शब्द आत्मा में अपने आप को हर वक्त लीन करती है। यह ही अवस्था परम भक्ति है और इससे तमाम स्थूल संसार का मोह नाश हो जाता है और अन्तर में स्थिति प्राप्त होती है।

(५) सत स्थिति से तमाम दुर्मति अन्धकार यानी अहंगभाव अन्तर से नाश हो जाता है और सुरति केवल ज्ञान स्वरूप अखण्ड शब्द आत्मा में लीन होकर ज्ञान स्वरूप हो जाती है। यह ही अवस्था निर्वाण शाँति है--यानी अखण्ड नाद जो सर्व बिघ्न से न्यारा है, उसकी उस्तत अनुभव करके निर्द्वन्द, गुणातीत, अकर्त, अद्वैत, निर्वास, निर्वाण शून्यंग, सर्वज्ञ, समप्रकाश आदि अनेक भावों से बुद्धि निमष-निमष विषे स्वाभाविक स्वरूप से चिन्तन करके अपने आपको निज स्वरूप में नितलीन करती है और मन देह, इन्द्री के द्वन्द्व रूपी दोष से नित ही निर्बन्ध, निर्लेप होकर अकल्प निर्भय स्वरूप में स्थिर होती है। यह ही अवस्था परम पद अखण्ड शाँति है। इस पद को प्राप्त हो करके ही आवागवन के चक्र से छुटकारा मिलता है। इस वास्ते नित ही सत यत्न और सत भावना से आन्तरिक अभ्यास की दृढ़ता से इस परम पद को प्राप्त करना ही परम कर्तव्य मानुष जीवन का है।

जो जो गुणी सत मार्ग में दृढ़ होने का प्रेम रखते हैं, उनके वास्ते ऐसी स्थितियों को अन्तर में धारण करना चाहिये। तब ही इस महा विकराल रूप वासना के दीर्घ रोग से छुटकारा प्राप्त हो कर एक अखण्ड आनन्द स्वरूप परम तत्व में स्थिति प्राप्त होती है। हर वक्त अधिक उत्साह और सत यत्न की जरूरत है। क्योंकि मार्ग बड़ा कठिन है। अधिक श्रद्धावान ही इस मार्ग में कामयाब हो सकता है जिसको गुरु बचन पर पूर्ण विश्वास होवे।

(ग) "परम कल्याण बोध"

बचन १. शरीर रूपी संसार को धारण करके हर एक जीव अपनी कल्याण की खातिर अधिक से अधिक यत्न करता हुआ शरीर की यात्रा को व्यतीत करता है, मगर अन्त को अधिक संकट लेकर शरीर से जुदा होता है। असली शाँति को प्राप्त नहीं हो सकता है। यह ही अद्भुत संसार का चक्र है। सत विचार और सत निश्चय के बग़ैर इस भयानक काल चक्र में निर्भय शाँति को प्राप्त होना अति कठिन है।

बचन २. पाँच तत्वों का शरीर धारण कर बुद्धि पाँच कर्म इन्द्रियों और पाँच ज्ञान इन्द्रियों के भोगों में अति आसक्त होकर नाना प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल कर्म करती है। चूँकि इन्द्रियों के भोग क्षण भंगुर हैं, इस वास्ते इन में निर्भय शाँति के बजाये अधिक खेद-वान रहती है। यानी बुद्धि इन्द्रियों के भोगों को परम सुख रूप जान करके अधिक-से-अधिक दिव्य भोग प्राप्त करने का यत्न करती है और प्राप्त करके भी नित्य ही अधीर और क्लेशवान् रहती है। यह ही भयानक दुख रूप संसार है।

बचन ३. सार निर्णय यह है, कि बुद्धि नाशवान दुख रूप इन्द्रियों के भोगों में अविनाशी सुख प्रतीत करती हुई नित्य ही इन्द्रियों के भोगों में आसक्त होकर के नाना प्रकार के भोग भोगती है। मगर नित्य ही अशाँत और भयभीत रहती है। आख़िर शरीर विनाश को प्राप्त होता है और बुद्धि अधिक संकट लेकर इस शरीर से जुदा होती है। फिर

वासना अनुसार दूसरे शरीर को धारण करती है, इसी तरह शारीरिक भोगों की आसक्ति को धारण करके अनेक योनियों में विचरती है और दुख-सुख में भ्रमती रहती है। यह ही आवागवन रूप संसार है।

बचन ४. ऐसी काल चक्र रूप जीवन यात्रा को सही समझना और फिर सही यत्न करना ही मानुष जन्म का उत्तम कर्त्तव्य है। यानी इन्द्रियों के भोगों का अन्त अति संकट रूप जानना और उनमें मर्यादा पूर्वक विचरना ही मनुष्य जीवन की उच्चता है।

बचन ५. परम दुख रूप इन्द्रियों के भोगों की वासना से छूटने के वास्ते केवल साक्षी स्वरूप आत्मा के विश्वास और निध्यास की दृढ़ता ही कल्याण के देने वाली है। इसी को सत मार्ग कहा गया है। यानी परम कल्याण, परम पवित्रता, परम आनन्द, नित्य स्वरूप, सर्वमयी, पूर्ण-अखण्ड शाँति, एक आत्म स्वरूप को ही जानना और नित्य ही उस परम तत्व के परायण होना ही इन्द्रियों के भोगों की आसक्ति से छुटकारा देने वाला यत्न है—और इसी निश्चय को **आस्तिकवाद** कहते हैं। यानी एक आत्मा के बग़ैर सब संसार प्रपंच का अन्त परम दुःख और भय स्वरूप जानकर अधिक-से-अधिक यत्न करके सत तत्व की खोज में दृढ़ होना ही **आस्तिकपन** है।

बचन ६. शारीरिक भोग नाशवान् होने के कारण नित्य अशाँति और अधिक वासना के खेद को प्रगट करने वाले हैं, जो परम दुख स्वरूप है। ऐसी शारीरिक यात्रा को समझ करके नित्य ही जीवन रूप परम तत्व आत्मा का विश्वासी और निध्यासी होना ही परम कल्याण के देने वाला निश्चय है।

बचन ७. जब तक इन्द्रियों के भोगों का अन्त दुःख रूप समझ में न आवे और न ही परम तत्व आत्मा की परम प्रधानता निश्चय में दृढ़ होवे, तब तक बुद्धि मदवाद को धारण करके नास्तिकपन में विचरती है और अधिक वासना के खेद को धारण करके इन्द्रियों के भोगों की अति

चेष्टा में मलीन होकर के नित ही विकारों की अग्नि में जलती रहती है। यह ही महा विकराल परम दुख रूप जीवन का स्वरूप है। यानी इन्द्रियों के भोगों की अति आसक्ति में दृढ़ हो करके नित ही प्रतिकूल कर्म करके अपने आपकी घातक बनी रहती है। ऐसा जीवन ही परम अन्धकार और परम दुःख स्वरूप है।

बचन ८. वास्तव में इन्द्रियों के भोगों की वासना ही परम अशाँति के देने वाली है और मत स्वरूप आत्मा में श्रद्धा और प्रेम की नेहचलता के नाश करने वाली है। मगर अज्ञानवश हुई हुई बुद्धि केवल इन्द्रियों के भोगों को ही परम सुख प्रतीत करती हुई मत स्वरूप आत्मा के निश्चय से हीन होकर के परम दुःख जाल में विचरती है। येह ही भव दुस्तर मार्ग है।

बचन ९. इस अधिक दुस्तर जीवन यात्रा को समझ करके नित्य ही इन्द्रियों के भोगों में निर्मल मर्यादा धारण करके मत स्वरूप का पूर्ण विश्वासी होना ही निर्मल कल्याण के देने वाला मत यत्न गुरमुख मार्ग है।

बचन १०. अधिक निर्मल बुद्धि से इस नाशवान जीवन यात्रा के सही स्वरूप को समझ करके एक अविनाशी स्वरूप के परायण होना ही यथार्थ यत्न है; जो इस भयानक कर्म जाल से छुटकारा दिलाने वाला और निर्भय शाँति के देने वाला है।

बचन ११. अधिक इन्द्रियों के भोगों से अधिक वासना का जाल बढ़ता है; जो तीन काल अशाँति और भय के देने वाला है। ऐसा निश्चय होना ही श्रेष्ठ बुद्धि का लक्षण है। मत स्वरूप के विश्वास से हीन होकर के इन्द्रियों के भोग ही केवल सुख स्वरूप जानने और इनमें दृढ़ निश्चय से विचरना ही असली मूढ़ता है, जो तीन काल संताप के देने वाली है।

बचन १२. इन्द्रियों के भोगों की अधिक वासना ही काल स्वरूप

है जो पलक पलक में बुद्धि को भरमाती है और नित ही विलक्षण कर्म करने की खातिर मजबूर करती है। ऐसे जीवन के भेद को जिसने नहीं जाना है, वह पशु से भी नीच है।

बचन १३. बुद्धि केवल इन्द्रियों के भोगों की वासना में आसक्त होकर के अधिक भोग प्राप्त करने में यत्न प्रयतन करती है और इसी में असली शाँति प्रतीत करती है। मगर ऐसे अन्धकारमयी यत्न में शाँति प्राप्त होनी जानना एक निहायत मूढ़ता है, क्योंकि जो नाश होने वाली वस्तु है, वह अपने आप में अशाँत स्वरूप है। उसकी प्राप्ती से बजाय शाँति के अधिक अशाँति प्राप्त होती है। ऐसा निश्चय करना ही **निर्मल विवेक** है।

बचन १४. जब बुद्धि शरीर और इन्द्रियों के भोगों की विनाश प्रतीत करती है और इस में केवल खेद ही जानती है तब सत परायण होने के यत्न में दृढ़ होती है; यानी तमाम आंतरिक दोषों से पवित्र होने का यत्न धारण करके एक अखण्ड अविनाशी स्वरूप के परायण होती है। ऐसे निश्चय को ही **निश्चयात्मक बुद्धि** कहा गया है।

बचन १५. जब दृढ़ निश्चय से शरीर और शरीर के सुख नाश रूप प्रतीत होने लगते हैं, तब बुद्धि संसार की मलीन कामनाओं का त्याग करके केवल अखण्ड भावना से सत विश्वास और सत अनुराग में दृढ़ होती है। ऐसी भावना वाले को ही असली **जिज्ञासु** कहते हैं।

बचन १६. अज्ञान अवस्था में बुद्धि अनन्य भावना करके शरीर और शारीरिक भोगों की कल्पना में दृढ़ रहती है और एक पलक मात्र भी भोग वासना से विलग नहीं होती है। ऐसे ही जब बुद्धि शरीर और शारीरिक सुखों को क्षणभंगुर जान लेती है। उस वक्त अखंड भावना करके सत् स्वरूप के परायण होने का यत्न करती है। यानी शारीरिक सुखों का लोभ त्याग करके केवल अविनाशी सुख अन्तर

स्वरूप आत्मा में नेहचलता धारण करती है। ऐसे यत्न को ही **अभ्यास** कहते हैं।

बचन १७. जब बुद्धि तमाम कर्मों के द्वन्द्व फल को सत स्वरूप के समर्पण करती है, यानी तमाम कर्म फल को प्रभु आज्ञा में देखती है। उस वक्त भयानक वासना के जाल से पवित्र हो करके निमित्तमात्र कर्म निष्काम स्वरूप में करती हुई केवल एक अखण्ड स्वरूप के परायण होती है। ऐसे निश्चय को ही **ईश्वर भक्ति** कहते हैं।

बचन १८. बुद्धि कर्त्तापन को धारण करके कर्म और कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति में दृढ़ होकर के नित ही इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा में चलायमान होती रहती है, और यह ही अज्ञानमयी जीवन है। इस भ्रम अन्धकार से पवित्र होने की खातिर केवल सत परायणता की दृढ़ता ही है। यानी शरीर और शारीरिक कर्म केवल सत आधार में ही देखने और अपने आपके कर्त्तापन का त्याग करना। ऐसे निश्चय की दृढ़ता को ही **सत्याग्रह** कहते हैं।

बचन १९. ज्यों ज्यों बुद्धि कर्त्तापन का त्याग करती हुई तमाम शारीरिक कर्म प्रभु आज्ञा में समर्पण करती है, त्यों त्यों तमाम वासना के जाल से पवित्र होकर के निर्वास स्वरूप आत्म आनन्द में नेहचल होती है। ऐसी स्थिति को ही **योग** कहते हैं।

बचन २०. जब बुद्धि केवल एक अविनाशी नाम के परायण हो करके असत् नाम रूप कल्पना का त्याग करती है और अखंड भावना करके एक अविनाशी स्वरूप को ही कर्त्ता हर्त्ता जान करके सत सिमरण में नेहचल होती है, उस वक्त अन्तर से नाम रूप संकल्प रूपी संसार का अभाव हो जाता है और एक अखण्ड अविनाशी शब्द का अन्तर में बोध प्राप्त होता है। जो परम आनन्द स्वरूप है, वासना और कर्म से पवित्र है।

बचन (२१) जब अन्तर में सत स्वरूप का अनुभव होता है, तब बुद्धि तमाम शारीरिक कर्मों से निर्बन्धन हो कर के नेहःकर्म स्वरूप आत्मा में नेहचल होती है। यह ही स्थिति परम सुख का स्वरूप है, जिस में वासना और कर्म का खेद नहीं है। ऐसी स्थिति को प्राप्त कर के बुद्धि परम शाँति को प्राप्त होती है। जो वास्तविक पूर्ण स्वरूप है।

बचन (२२) सार निर्णय यह है, कि बुद्धि कर्त्तापन त्रिगुण अहंकार को धारण कर के नाना प्रकार के कर्मफल भोग की आसक्ति में नित ही चलायमान होती रहती है। यह ही खेद युक्त जीवन अवस्था है। इस से पवित्र होने की खातिर एक आत्मा का विश्वासी और अभ्यासी होना ही परम साधन है। ऐसे निश्चय से ही जो गुणी सत् स्वरूप परायण होता है, यानी तमाम शारीरिक शक्ति और शारीरिक दुख व सुख केवल अविनाशी स्वरूप अखण्ड शब्द आत्मा के आधार ही देखता है, और परम पवित्र भावना से अनन्य स्वरूप करके अन्तर में आत्म चिन्तन में दृढ़ होता है। ऐसे दृढ़ अनुराग के बल से द्वन्द्व रूपी खेद से निर्मल हो कर के बुद्धि सत पद में विश्राम पाती है। जो परम कल्याण-मयी अवस्था है।

बचन (२३) हर वक्त शारीरिक यात्रा को समझते हुए केवल सत्-परायण होने का यत्न करना ही मानुष जन्म की उच्चता है। यानी तमाम शारीरिक भोगों में निर्मल मर्यादा धारण करके सादगी, सत्य, सत् सिमरण, सत्संग और सत्सेवा में अपने आप को दृढ़ करते हुए तमाम मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करनी चाहिये। जो परम पद अखण्ड शाँति के देने वाली है।

बचन (२४) एक सत् स्वरूप की दृढ़ परायणता से तमाम मानसिक दोष नाश को प्राप्त होते हैं। ऐसा निश्चय धारण करके नित स्वरूप अविनाशी शब्द की अन्तर में परम सूझ प्राप्त करनी चाहिये, क्योंकि आत्मा ही निर्वास नित स्वरूप और नेहःकर्म है। शरीर नित ही नाश स्वरूप

वासना और कर्म संयुक्त खेद स्वरूप है। ऐसे यथार्थ निर्णय को धारण करके शरीर मद का त्याग करके केवल सत् परायण होना ही तमाम दुखों से छुटकारा हासिल करने वाला मार्ग है।

बचन (२५) सत् अनुराग के बल से तमाम मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करनी, यानी काम, क्रोध, लोभ, मोह, व अहंकार जो वासना का स्वरूप हैं। इन पर विजय प्राप्त करनी ही परम पवित्रता और परम उच्चता है। यानी सत्नाम की दृढ़ता से तमाम शारीरिक कर्मफल प्रभु आज्ञा में समर्पण करने से तमाम इन्द्रियों के भोगों से उपरामता प्राप्त होती है, जो सरब दोषों को नाश करने वाली और परम पवित्रता आत्म स्थिति के देने वाली है।

बचन (२६) बुद्धि दृढ़ सत परायणता से परम शुद्धि को प्राप्त होती है, और मन इन्द्रियों के तमाम विकारों पर विजय हासिल कर लेती है, और अपने आप में सावधान हो कर के निर्द्वन्द्व स्थिति को प्राप्त होती है। यानी परम तत्त्व आत्म शब्द में लीन हो जाती है। यह ही अवस्था जीवन उद्धार का असली स्वरूप है।

बचन (२७) इन्द्रियों के भोगों में उपरामता हासिल करनी और सत् पुरुषों के सत् विचार द्वारा अपनी बुद्धि को निर्मल करके सत् स्वरूप के दृढ़ परायण होना ही अपने आप का सही समझना है, और ऐसे यत्न-प्रयत्न करते-करते तमाम दुमति जाल का अभाव हो जाता है, और बुद्धि केवल ज्ञान स्वरूप में नेहचल होती है। जो अकथ स्वरूप परम शांति है।

बचन (२८) जीवन यात्रा में परम धन, परम खोज, परम सुख, परम यत्न, परम आसरा, परम उच्चता, परम विद्वता केवल एक अविनाशी स्वरूप जीवन शक्ति आत्मा के दृढ़ परायण हो कर के तमाम मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करनी ही है--जो परम उद्धार के देने का साधन है। जो गुणी पवित्र निश्चय से ऐसे कल्याणकारी मार्ग में दृढ़ हुआ है उसका जीवन धन्य है। दूसरों के वास्ते एक आदर्श स्वरूप है।

बचन (२९) अंतर निश्चय में केवल सत्नाम का निध्यासन करना और शरीर द्वारा निष्काम भाव यानी अकर्त्ता भाव से दूसरे जीवों की सेवा करनी ही तमाम मानसिक दोषों से पवित्रता के देने वाली हैं। ऐसे सत् यत्न में नित ही प्रवीण रहना गुणी पुरुषों का धर्म है। क्योंकि शरीर विनाश की तरफ जा रहा है। इस से सत् अर्थ परम पद को प्राप्त कर लेना ही नाशवान शरीर का यथार्थ लाभ है।

बचन (३०) नित ही जीवन यात्रा में सत पद प्राप्ति का सत् यत्न धारण करते रहना परम उच्च स्थिति है। यानी अधिक से अधिक पवित्र अहार, व्यवहार और अपने आप में अधिक सादगी को धारण कर के और तमाम नुमायशी और अय्याशी जीवन यात्रा से परहेज़ करना और सत् स्वरूप प्राप्ति का अधिक अनुराग प्राप्त करना चाहिये, जिससे तमाम मिथ्याकार वासना का नाश होता है, और शीघ्र ही सत् पद की प्राप्ति होती है। ऐसे अधिक यत्न से मानसिक दोषों से पवित्रता प्राप्त कर के अपने आप का सही रक्षक बनना ही परम शूरबीरता है।

बचन (३१) इस जीवन स्वरूप संसार मार्ग में पूर्ण पवित्र बुद्धि से इस यात्रा को समझ करके अखण्ड प्रतीत से एक सत तत्व के परायण होना चाहिये, और नित ही हृदय में उस परम तत्व का सिमरण करना चाहिये, जो जीवन स्वरूप शरीर को प्रकाश कर रहा है, और आनन्दस्वरूप है। तमाम शारीरिक कर्म उस महाप्रभु की आज्ञा में समर्पण करने का निश्चय दृढ़ करना चाहिये और नित ही मन, बचन और कर्म करके दूसरे जीवों की सेवा की भावना को दृढ़ करना चाहिये, और शारीरिक विनाश को निश्चय करके अधिक से अधिक उद्यम धारण करके निर्द्वन्द्व स्वरूप अविनाशी तत्व का बोध प्राप्त करने में स्वतन्त्र रहना चाहिये। यह ही अवस्था परम धाम है।

बचन (३२) यथार्थ लाभ इस शरीर का यह है, कि निश्चय में प्रभु भक्ति और शरीर द्वारा पर-उपकार निष्काम भाव सहित धारण किया

जावे, तब ऐसे सत यत्न से ही जीव परम पद को प्राप्त कर सकता है। तमाम गुणी पुरुषों का आदर्श जीवन विचार करके अपने जीवन को नित ही सत मार्ग में दृढ़ कर के अपने आपका निर्मल बोध प्राप्त कर लेना चाहिये, जो परम शान्ति स्वरूप है।

बचन (३३) इस त्रिषावन्त संसार में सत् शान्ति को प्राप्त करना ही असली जीवन का ध्येय है। मगर अज्ञानवश हो करके अविनाशी स्वरूप को भूल करके बुद्धि नाशवान शरीर में परम सुख अविनाशी की तलाश करती है। ऐसे अज्ञानमयी जीवन से जागृत हो कर के नाशवान शरीर के मद को त्याग करके, नित ही सत श्रद्धा सहित अपने आपको एक अविनाशी स्वरूप के परायण कर के, नित ही शरीर द्वारा सत निष्काम को धारण करना चाहिये, जो परम सिद्धि निर्भय पद के देने वाला है।

बचन (३४) केवल सत स्वरूप के परायण होकर तमाम संसार उसी एक परम तत्व अखण्ड आत्म स्वरूप का चमत्कार जान करके सब जीवों की निष्काम भाव से यथाशक्ति सेवा की दृढ़ता को धारण करते हुए और हृदय में एक उस अखण्ड शब्द आत्म स्वरूप का चिन्तन करते हुए जो जीवन यात्रा व्यतीत करते हैं। वह ही महा गुणी परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं, और उनका जीवन तमाम विश्व के वास्ते कल्याणकारी है, और वो ही निर्मल उद्धार के स्वरूप के बोधक होकर के आदर्श स्वरूप हुए हैं। उनका जीवन अति दुर्लभ है।

बचन (३५) बुद्धि कर्तापन की आसक्ति में जो अति आरूढ़ हुई २ है—इस अवस्था को प्रकृतिवाद--असत्‌वाद--अहंकारवाद--नास्तिकवाद और भ्रमवाद आदि नामों करके पुकारा जाता है, यानी कर्तापन की आसक्ति को धारण करके त्रिगुणी वासना के ज़ोर असर होकर के नाना प्रकार के कर्म और कर्म फल द्वन्द्व संकल्प रूपी संसार को कल्पती हुई सूक्ष्म स्थूल तात्त्विक सृष्टि में भ्रमती है—और असंग शांति की खातिर अधिक-से-अधिक यत्न करती है। मगर कर्तापन जो संसार का बीज

स्वरूप है—इससे पवित्र होने के बग़ैर कर्म और कर्म फल द्वन्द्व के राग द्वेष में नित ही चलायमान होती रहती है—यह ही अवस्था परम दुःख का स्वरूप है।

बचन (३६) इस कर्त्तापन अन्धकार के नाश करने के वास्ते सेहज़ उपाय यह ही है, कि सत् स्वरूप आत्म तत्त्व जो घट घट प्रकाश कर रहा है उसको कर्त्ता हर्त्ता जान कर के अपने कर्त्तापन अभिमान का त्याग करे। यह ही भावना आस्तिकवाद, सत्वाद, ईश्वरवाद और ज्ञान वाद का स्वरूप है।

बचन (३७) ज्यों-ज्यों बुद्धि परम पवित्र निश्चय से सत् स्वरूप आत्मा को कर्त्ता-हर्त्ता जान करके अति प्रेम से सिमरण में दृढ़ होती है, त्यों-त्यों कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति से निर्मल होती जाती है, और सत् अनुराग के बल से तमाम शारीरिक विकारों से पवित्रता को प्राप्त होती है। ऐसी भावना को ही समर्पण बुद्धि कर्मयोग या भक्तियोग आदि नामों करके उच्चारण किया गया है।

बचन (३८) तमाम कर्म वासना की जड़ कर्त्तापन ही है। इस वास्ते बुद्धि सत् परायणता के बल से अपने कर्त्तापन को त्याग करके केवल सत् स्वरूप आत्मा को ही कर्त्ता जब निश्चय करके जानती है— उस वक्त तमाम भोग वासना से पवित्रता को प्राप्त होकर के कर्मफल द्वन्द्व से असंग हो जाती है। यह ही अवस्था जीवन मुक्त पद है।

बचन (३९) अधिक दृढ़ निश्चय से कर्त्तापन अन्धकार से पवित्र होने का सत् यत्न धारण करना ही गुरमुख मार्ग है। इस वास्ते परम प्रयत्न से जब बुद्धि एक ईश्वर शक्ति को ही कर्त्ता हर्त्ता जानती है—उस वक्त तमाम वासना से पवित्र होकर के अपने अन्तर में सत् स्वरूप के बोध को प्राप्त होती है, यानी निराकार, अजन्मा, अकर्म, निर्वास निर्द्वन्द्व, अखण्ड, सर्वज्ञ, सर्व असंग और नित स्वरूप अविनाशी शब्द को अनुभव (कर के) तमाम शारीरिक वासना से

निर्बन्धन हो जाती है, और अपने आप में अकर्त्ता स्वरूप हो कर के विराजती है। यह ही अवस्था परम सिद्धि का स्वरूप है। ऐसी निर्मल अवस्था को जब बुद्धि प्राप्त होती है, तब पूर्ण तृप्ति पूर्ण शाँति, पूर्ण अनुभवता, पूर्ण विज्ञान को अनुभव करके उसी परम तेज स्वरूप में लीन हो जाती है। ऐसी अवस्था को ही निर्वाण शाँति कहा गया है। ऐसे परम बोध जीवन के सही निर्णय को समझ कर के नित ही सत पद प्राप्ति का यत्न करते हुए अपने मानसिक दोषों से पवित्रता हासिल करनी ही सत् मार्ग की दृढ़ता है। इस वास्ते तमाम गुणी पुरुष अपने जीवन उन्नति के सही चाहतक होकर के परम दृढ़ निश्चय से सत् परायण होने का यत्न करें। जिस कर के मानुष जन्म की सही सफलता निर्भय शाँति प्राप्त होवे। ईश्वर सुमति देवे।

—:०:—

(घ) "सदाचार और नाम सिमरण का निर्णय"

सत आचार यानी सदाचार के उलट दुराचार यानी मिथ्याचार है। सत केवल ईश्वर यानी जीवन शक्ति ही है। इस वास्ते सत निश्चय के बग़ैर जो कुछ सोचना या करना है। वह दुराचार की बुन्याद ही है। बग़ैर प्रभु परायण होने के और नाम चिन्तन के सदाचारी होना अति मुश्किल है, यानी प्रभु परायणता ही सदाचार का स्वरूप है। जब तक बुद्धि देह परायणता में नेहचल रहती है, तब तक निर्मल सदाचार को कभी भी प्राप्त नहीं हो सकती है। बुद्धि का काम है, जैसा निश्चय करती है, ऐसी ही आगे सृष्टि कायम करती है। अगर प्रभु परायणता या प्रभु चिंतन को बुद्धि निश्चय में धारण नहीं करती है, तो असत् निश्चय के ज़ेर असर होकर सूक्ष्म रूप में नाना प्रकार के विकारों को कल्पित करती रहती है, और कभी कभी वह सूक्ष्म विकार स्थूल रूप में भी कर्म स्वरूप होकर के प्रगट हो जाते हैं। इस वास्ते बग़ैर सत परायणता के और सत नाम चिंतन के कभी भी कोई सही रूप में सदाचारी नहीं हो सकता है। जो प्रभु परायणता को छोड़ कर वैसे सदाचार का ढोल पीटते हैं, उन अनजानों को अभी सदाचार का पता ही नहीं है। जब तक पाँच विकारों की वासना शुद्ध न होवे, तब तक सदाचार होना अति कठिन है और जब तक सत स्वरूप ईश्वर का पूर्ण विश्वास और सत निध्यास न प्राप्त होवे, तब तक इन विकारों की अग्नि शाँति नहीं होती है, ख़्वाहे कितना भी यत्न क्यों न करे। इस वास्ते इन विकारों की वासना का निरोध होना ही निर्मल सदाचार है। जो आजकल के लोगों ने सदाचार का स्वरूप माना है, वह वास्तव

में कपट आचार है। इम्तिहान होने पर पता लगता है, कि कौन किस जगह खड़ा है। इस वास्ते इस प्रकृति के चक्र में वोह ही मानुष पूर्ण रूप में साबित कदम रह सकता है, जिस में अति सत विश्वास और सत निध्यास की दृढ़ता होती है। सदाचार यानी सत में आचरण करना तब ही हो सकता है, जब केवल सत स्वरूप ईश्वर को ही सत करके निश्चय में धारण किया जावे, और तमाम प्रकृति जाल को असत स्वरूप में देखा जावे—तब मानसिक विकारों से निरोध प्राप्त होता है और बुद्धि निर्मल होकर के तमाम शारीरिक कर्मों में पवित्र स्वरूप से विचरती है। इस वास्ते अति प्रभु की याद करो—वह ही एक निर्विकार शक्ति है, और परम आसरा और परम धीरज है। इसके बगैर तमाम स्थूल आकार विकार स्वरूप है। सत परायणता के बगैर बुद्धि नित अधीर और विकारमयी रहती है। यह थोड़ा सा विचार लिखा जाता है अच्छी तरह से विचार कर लेवें, और सत असूलों में पूर्ण निश्चय से दृढ़ होवें। यह दुनियाँ बड़ा इम्तिहान है, बगैर सत परायणता के इस में से सही कल्याण प्राप्त करनी अति कठिन है। सत्संग एक लाजमी असूल है। इस में सब को हाजिर होना चाहिये और सतसंग के वास्ते प्रेरणा करना भी अच्छा है। शायद किसी वक्त किसी की बुद्धि ठीक हो जावे—यह एक सेवा ही है। ईश्वर सत बुद्धि देवे।

(ङ) "ईश्वर प्रेम"

संसार में मोहवश होकर हर वक्त जीव जलता रहता है—किसी सूरत में भी असली खुशी को प्राप्त नहीं हो सकता। बड़े से बड़ा यत्न करने पर भी, यानी कई तरीका की उपासना यज्ञ, दान आदिक धारण करने से भी असली प्रसन्नता प्राप्त नहीं होती—जब तक ईश्वर का खालिस प्रेम (अन्तःकरण) में प्रगट न होवे। प्रेम ही को भक्ति कहते हैं, प्रेम ही को योग कहते हैं, प्रेम ही का नाम ज्ञान है, प्रेम ही ईश्वर शक्ति का यथार्थ स्वरूप है, तप-जप उपासना का फल यही है, कि मन में एक ईश्वर का प्रेम प्रगट होवे। ईश्वर प्रेम के प्रगट होने से मोह की अग्नि नाश हो जाती है और अपने अन्तर विषे सर्व शक्तिमान नाद स्वरूप ईश्वर का अनुभव होता है। यही हालत असली अबदी सरुर यानी परम आनन्द की है। मानुष जन्म को धार कर इसी अवस्था को हासिल करने की कोशिश करनी यथार्थ लाभ है। चूँकि मन बड़ी उपाधि और व्याधि में गिरफ़तार रहता है—इस वास्ते ईश्वर प्रेम और ईश्वर विश्वास को अन्तर में निश्चय से हासिल नहीं कर सकता। लाखों पुस्तकों के मुताल्य (अध्यन) से और तीर्थ व्रत कई नियमों के धारण करने से भी ईश्वर का खालिस प्रेम प्रगट नहीं होता। अहंकार यानी देह का मद हर वक्त जीव को कामना की अग्नि में जलाता रहता है। जिस वक्त निर्मल बुद्धि सत्संग और सत्गुरु उपदेश द्वारा हो जावे, उस वक्त निर्मान भाव चित्त में स्थित होता है और ईश्वर शक्ति का प्रेम और विरह अन्तर में प्रगट होते हैं, जिससे जीव सब पापों से छूटकर अपने सत पुरुषार्थ से ईश्वर के

स्वरूप में लीन हो जाता है। उसी अवस्था का नाम असली प्रेम यानी अनन्दमयी जीवन है। इस अवस्था को जिस ने हासिल किया उसको गुरु, पीर, अवतार, और पैग़म्बर कहते हैं। ईश्वरीय प्रेम में जब जीव मुस्तगर्क़ (लीन) होता है, तब समता रुपी आनन्द हालत अन्तर में जारी हो जाती है। माया का द्वन्द्व स्वरूप यानी कर्मों का फल सुख, दुख, लाभ-हानि, खुशी-ग़मी, मित्र-शत्रु, सर्दी-गर्मी, में एक निश्चय धारण कर लेता है। यह ही अवस्था जीवन मुक्त और अखण्ड प्रेम का सागर है।

जिस मानुष ने यह निश्चय हासिल किया है वह कुल संसार में अपनी आलाज़ात (सत्स्वरूप) को देखता है, और अपने आप में जाते-आलाह (सत्स्वरूप) का सरूर हर वक्त हासिल करता है। तमाम कर्मों के अज़ाब यानी आवागवन से रिहाई पाकर अपने सत् स्वरूप में लीन हो जाता है। इस अवस्था को हासिल करना ही मानुष ज़िन्दगी का परम धर्म है। हर एक प्रेमी को चाहिये कि बादविवाद, कपट, पाखण्ड, को छोड़कर हर वक्त ईश्वर का सच्चा प्रेम प्राप्त करे। जिससे तसव्वरेफानी यानी आवागवन के अज़ाब (दुख) से छूट कर आनन्द स्वरूप ईश्वर में मिल जावे।

(च) "ममवाद विज्ञान"

बचन १. ममवाद रूपी त्रिगुण अहंकार कर्त्तापन को बुद्धि धारण करके अनन्त प्रकार के कर्म और अनन्त प्रकार के कर्म फल की वासनाओं में अति आसक्त होकर सूक्ष्म स्थूल शरीर रूप संसार में नित भयभीत और चलायमान होती रहती है। यह ही हालत **असली अशाँति और परम दुख का स्वरूप** है।

बचन २. बुद्धि अनन्य भाव से कर्त्तापन मूल संसार को कल्पकल्प कर नाना प्रकार की वासनायें और नाना प्रकार के कर्म फल द्वन्द्व धारण करके शरीर रूपी संसार में निर्भय शाँति चाहती हुई इस प्रत्यक्ष ब्रह्मांड में वासनाओं के जाल को पूर्ण करने की खातिर नाना प्रकार के प्रयत्न धारण करती है। इसी यत्न को ही **सांसारिक जीवन** कहते हैं।

बचन ३. बुद्धि क्षण-क्षण विषे कर्त्तापन त्रिगुण संसार को सिमरती हुई अथा वासना के जाल को फैला कर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, आदि प्रधान वासनाओं की लहरों में हर वक्त चलायमान होकर इन्द्रियों के भोगों में अति आसक्त रहती है। इसी अवस्था को अज्ञान्-असतवाद, भ्रम और आसक्ति कहा गया है। तमाम स्थावर, जंगम, संसार इसी कर्त्तापन त्रिगुण माया का बिस्तार है।

बचन ४. बुद्धि कर्त्तापन में अति आसक्त होकर कर्म फल द्वन्द्व में नित ही चलायमान रहती है, और किसी हालत में भी नेहचल नही हो सकती है। मगर कर्म फल द्वन्द्व के मोह में इस क़दर गिर-

फ़्तार रहती है, कि एक लमह भर भी इस कर्म फल द्वन्द्व की तबदीली को न परम दुख रूप विचार करती है, और न ही इससे छूटने का उपाय सोचती है। इस हालत को जड़ता और मूर्खता कहा गया है।

बचन ५. कर्त्तापन की अधिक दृढ़ता की आसक्ति को बुद्धि अपना निज स्वरूप जानकर कर्म फल द्वन्द्व के ग्रहण और त्याग के यत्न में नित ही विचरती है, और नाना प्रकार के शरीर धारण करके कर्म फल द्वन्द्व को भोगती है, और जन्म मरण के चक्र में फिरती है। इसी को **आवागवन** कहते हैं।

बचन ६. कर्त्तापन का स्वरूप चूँकि त्रिगुण रूप है। इस वास्ते बुद्धि शुभ-अशुभ वासनाओं के जे़र असर होकर शुभ-अशुभ कर्म करती है, और दुख सुख की महसूसात में नित ही भ्रमती हुई जिन्दगी के ऊंचान और निचान भावों को अनुभव करती है। यह ही चक्र संसार की विचरत लीला है।

बचन ७. जब तक बुद्धि कर्म फल द्वन्द्व को दुख रूप निश्चय करके नहीं जानती है—तब तक कर्त्तापन त्रिगुण भ्रम रूपी वासना के जाल से छुटकारा हासिल नहीं कर सकती है, और न ही जन्म-मरण के चक्र से छूट सकती है। यह ही त्रिगुण माया का अद्भुत विस्तार है।

बचन ८. ऐसी संसार की विचरत हालत में, यानी कर्त्तापन और कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति में, मतवाद का दृढ़ निश्चय होना अति कठिन है। इस वास्ते ही आम मानुष बराये नाम ही मतवादी या ईश्वरवादी होते हैं, और निश्चय से कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति में चलायमान होकर नित ही विकराल कर्म करके अपने आपको नाश करते रहते हैं।

बचन ९. सार निर्णय यह है कि कर्त्तापन ही कारण संसार या शरीर है और कर्म फल द्वंद्व ही कारज (कार्य) रूप स्थूल तत्वों का

शरीर और प्रत्यक्ष ब्रह्माण्ड है। जब तक बुद्धि ऐसे अनुभव को नहीं जान सकती है, तब तक संसार के असली भेद को नहीं जान सकती है, और न ही इसके मोह से छूट सकती है।

बचन १०. जिस वक्त बुद्धि कर्म फल द्वंद्व को दुख रूप जानती है, निश्चय करके, और उससे उपरामता को प्राप्त करने में यत्न करती है—ऐसे निश्चय को जब प्राप्त होती है, तब उसी को **जिज्ञासू बुद्धि** कहा गया है।

बचन ११. जब तक बुद्धि कर्म फल द्वंद्व को परम दुख स्वरूप न जाने, तब तक इस मोह जाल से छूट नहीं सकती है। इस वास्ते इस जीवन यात्रा को सही समझ करके अपने आप को सत पद प्राप्ति के मार्ग में निश्चित करना ही मानुष जीवन का **प्रधान कर्तव्य** है।

बचन १२. कर्म फल द्वन्द्व को जब बुद्धि निश्चय करके परम दुख जानती है। उस वक्त निर्मल वैराग को प्राप्त करके तमाम भोग वासनाओं का निरोध करने का यत्न करती है। ऐसा यत्न ही सत शाँति के देने वाला है। और इस को **सत मार्ग** कहा गया है।

बचन १३. जब बुद्धि कर्म फल द्वन्द्व के खेद को निर्मल स्वरूप से जान लेती है, तब अपना आप जो कर्त्तापन रूप निश्चय किया हुआ है—उसके बढ़ते हुये वेग को सतवाद की दृढ़ता से त्यागने का यत्न करती है—यानी अधिक श्रद्धा, प्रेम, सेवा, नम्रता और सही त्याग के जज़बात में दृढ़ होकर अकर्त स्वरूप जो अविनाशी शब्द है, उसकी खोज में दृढ़ होती है। ऐसी दृढ़ता को ही **भक्ति या गुरमुख निश्चय** कहा गया है।

बचन १४. जब तक कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति नाश नहीं होती है, तब तक कर्त्तापन त्रिगुण अहंकार से बुद्धि निर्मल नहीं हो सकती है, और न ही अकर्त समवाद शाँति को प्राप्त हो सकती है। ऐसा भेद जानना ही निर्मल सार है।

वचन १५. कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति से निर्मल होने की खातिर सतवाद या ईश्वरवाद का निश्चय ही परम कल्याण के देने वाला है—यानी अपने कर्त्तापन अभिमान को मन परायणता के बल से त्यागना और कर्म फल द्वंद्व के चक्र को प्रभु आज्ञा में समर्पण करना। ऐसा निश्चय ही असली त्याग भक्ति और निष्काम कर्म का स्वरूप है।

वचन १६. जब बुद्धि कर्त्तापन अभिमान को त्यागने की खातिर अकर्त शक्ति अविनाशी तत्व को निश्चय में कर्त्ता जानती है—और कर्म फल द्वन्द्व उस महा शक्ति के आधार पर त्याग करके अपने आप को केवल अविनाशी नाम के परायण करती है, तब अन्तर से तमाम वासना और कल्पना के जाल से निर्मल होकर एकाग्र होती है। ऐसी स्थिति ही **परम पवित्रता** है।

वचन १७. जब बुद्धि निश्चय करके ईश्वर को कर्त्ता जानती है, और कर्म फल द्वन्द्व उसकी आज्ञा में समर्पण करती है, और लमह ब लमह एक अविनाशी नाम के आधार में दृढ़ होती है। ऐसी अखण्ड तपस्या को धारण करके अपने आप नेहचल होकर अकर्त स्वरूप अविनाशी शब्द को अनुभव करके परम शाँति को प्राप्त होती है। ऐसी साधना को ही **परम-भक्ति** कहा गया है।

वचन १८. सार विचार यह है, कि कर्त्तापन से निर्बन्धन होना ही परम शाँति और तत्व बोध अवस्था है। और जब तक कर्म फल द्वन्द की आसक्ति को त्याग नहीं सकता है—तब तक कर्त्तापन से निर्वन्धन होना अधिक कठिन है।

वचन (१६) सत् परायणता के दृढ़ निश्चय से ही कर्त्तापन और कर्मफल द्वन्द्व को त्याग कर के सम्वाद अकर्त्त-अविनाशी तत्व को बोध कर सकता है। इस वास्ते जो गुणी सत् भाव सहित यत्न करता है, वोह ही अकर्त्त स्थिति परम सिद्धि को प्राप्त होता है।

बचन (२०) बुद्धि कर्त्तापन को अधिक दृढ़ निश्चय से सिमरती है। एक लमह भी इस अविद्या से विलग नहीं होती है। ऐसे ही जब बुद्धि अधिक दृढ़ निश्चय से इस कर्त्तापन अंधकार को दूर करने की खातिर अविनाशी नाम गुरु उपदेश को दृढ़ निश्चय से सिमरती है, तब तमाम वासना के जाल से विलग हो कर सत् स्वरूप अविनाशी शब्द को बोध करके उसमें सावधान होती है। ऐसी साधना को ही **नाम सिमरण की महिमा** कहा गया है।

बचन (२१) कर्त्तापन अज्ञान को दूर करने की ख़ातिर अकर्त्त शक्ति का अनुभव करना ही परम सिद्धि और स्थिति है। अकर्त्त शक्ति को अनुभव करने की ख़ातिर केवल एक अविनाशी नाम के परायण होना ही यथार्थ यत्न है। ऐसे नाम की यथार्थ साधना को अभ्यास कहा गया है—यानी सत् नाम के दृढ़ अभ्यास से असत् नाम रूप आदि कल्पना का नाश हो जाता है, और बुद्धि निर्विकल्प हो कर अविनाशी स्वरूप में नेहचल होती है।

बचन (२२) ज्यों-ज्यों सत् नाम में दृढ़ता बुद्धि को प्राप्त होती है, त्यों-त्यों कर्त्तापन का अभाव होता जाता है, और ज्यों-ज्यों कर्त्तापन का नाश होता है, त्यों-त्यों वासना जाल का अभाव होता जाता है, और ज्यों-ज्यों वासना का नाश होता है, त्यों-त्यों बुद्धि अविनाशी स्वरूप समवाद में नेहचल होती है। ऐसी नेहचलता को ही **ध्यान** कहा गया है।

बचन (२३) जब बुद्धि कर्त्तापन से विलग होकर अपने साक्षी स्वरूप अविनाशी शब्द में नेहचल होती है, और उस शब्द को अनुभव द्वारे अधिक दृढ़ता से चिन्तन करती है, कर्त्ताभाव और कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति से निर्बन्धन रहती है। ऐसी स्थिति को ही **समाधि या योगारूढ़ अवस्था** कहा गया है। यानी द्वन्द्व खेद से निर्लेप हो कर एक अखण्ड अविनाशी तत्व में अधिक नेहचलता प्राप्त करके बुद्धि समरूप हो जाती है। यह स्थिति ही **निर्वाण शाँति** है।

बचन (२४) कर्त्तापन रूपी मूल संसार का अभाव कर के बुद्धि अकर्त्त स्वरूप में नेहचल हो करके नित ही अपने आप में स्वतंत्र और निर्भय स्थिति को प्राप्त होती है, और केवल अविनाशी तत्व ही सर्वमूल अनुभव करके परम आनन्दित होती है। यह ही अवस्था ब्रह्म स्वरूप है। जो इस स्थिति को प्राप्त हुआ है, यानी कर्त्तापन और कर्म फल द्वन्द्व से निर्बन्धन हुआ है, वह ही परम ज्ञानी—ब्रह्म ज्ञानी तत्व ज्ञानी और सर्व बोध पद को प्राप्त हुआ है। वह ही पुरुष सर्व कल्याण का स्वरूप है।

बचन (२५) सार निर्णय यह है, कि जब तक बुद्धि कर्त्तापन से विलग नहीं होती है, तब तक कर्म वासना से छूट नहीं सकती है, जो जन्म मरण का कारण है।

बचन (२६) कर्त्तापन को मूल भ्रम जानना और उसकी निवृत्ति का यत्न करना ही यथार्थ यत्न है। सत् परायणता की अधिक दृढ़ता और अधिक सत्नाम की स्मृति को दृढ़ करने से ही कर्त्तापन का अभाव होता है। ऐसे सत् यत्न को ही **योग** कहा गया है।

बचन (२७) कर्म फल द्वन्द्व के त्यागने से असली त्यागी होता है, और कर्त्तापन के त्यागने से निर्वास होता है। इस वास्ते प्रभु आज्ञा में तमाम कर्मफल त्यागने और अनन्य प्रेम से सत्नाम का सिमरण करना—ऐसे ही सत् यत्न को जो धारण करते हैं, वह ही परम भक्त परम पद अकर्त्त सम्वाद शाँति को प्राप्त होते हैं।

बचन (२८) जब तक बुद्धि कर्त्तापन में आरूढ़ है, तब तक अकर्त्त शक्ति आत्मा को कर्त्ता करके सिमरण करना और तमाम कर्मफल उस की आज्ञा में त्यागने ही परम कल्याणकारी निश्चय है।

बचन (२९) जिस वक्त कर्त्तापन अभिमान का अभाव हो जाता है, उस वक्त बुद्धि अकर्त्त स्वरूप आत्मा में लीन हो जाती है, और कर्म फल द्वन्द्व से निर्लेप हो जाती है—तब सर्व स्वरूप अपना आप ही पहचान करती है—यह अवस्था ही असली **सम्वाद विज्ञान** है।

वचन (३०) जब तक कर्त्तापन की गिरफ़्तारी में बुद्धि जकड़ी हुई है, तब तक कर्म फल द्वन्द्व में अति आसक्त है। इस वास्ते जो महज़ कथनी ज्ञानी हैं और अन्तर से कर्त्तापन अभिमान धारण किया हुआ है, और कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति में चलायमान होते रहते हैं, और कथनी में अपने आप को ब्रह्म स्वरूप कहते हैं, वह महज़ अति मूर्ख और सत् पद के निश्चय के नाशक हैं, यानी उनका कथनी ज्ञान उनके अपने आप के वास्ते कल्याणकारी नहीं है, दूसरों को क्या कल्याण हो सकती है।

वचन (३१) ज्ञान का केवल विचार करना ही असली कल्याण नहीं दे सकता है—जब तक कि कर्त्तापन रूपी अज्ञान का सत् यत्न द्वारा अभाव न किया जावे। इस वास्ते निर्मल यत्न से अपने आप को इस पवित्र अंधकार से पवित्र करना ही असली ज्ञान का जानना है।

वचन (३२) सब से प्रथम सत् वाद के निश्चय को धारण करके अपनी मलीन वासनाओं का त्याग करना और सत् कर्म आचारी होना कल्याण स्वरूप साधन है।

वचन (३३) सत् कर्म आचारी होकर सत् परायणता में दृढ़ता धारण करनी और तमाम कर्म फल प्रभु आज्ञा में समर्पण करने—ऐसे सहज यत्न करते-करते तमाम बाधक वासनाओं का अभाव हो जाता है, और अन्तर में वैराग प्राप्त होता है। तब प्रभु भक्ति का निर्मल स्वरूप बोध होता है।

वचन (३४) जब तमाम बाधक वासनाओं से निवृत्ति प्राप्त होती है, तब बुद्धि सत् स्वरूप को बोध करने में समर्थ होती है, और सत् यत्न को धारण करके अपने आप को निर्बन्धन करती है।

बचक (३५) जब सत् परायणता में अधिक दृढ़ता प्राप्त होती है, तब कर्म फल द्वन्द्व की आसक्ति का नाश हो जाता है—और बुद्धि परम प्रेम और श्रद्धा से सत् स्वरूप सम्वाद अत्मा में अपने आप को एकाग्र करती है, यानी निर्मल योग को प्राप्त होती है।

बचन (३६) जब बुद्धि आत्मानन्द को अनुभव करती है, और वासना के जाल से निर्बन्धन हो जाती है, तब अपने आप को केवल परम पद में ही नेहचल करके आनन्दित होती है। यह ही समवाद ोध अवस्था है।

बचन (३७) मानुष जीवन की उच्चता इसी में है, कि इस काल रूप संसार में आकर अपने आप को सत परायणता में दृढ़ करके अपनी सही उन्नति धारण की जावे, यानी कर्त्तापन अभिमान से निवृत्ति हासिल करके समवाद सत पद अविनाशी स्वरूप को बोध कर लिया जावे। यह ही परम धाम शाँति पद है।

बचन (३८) कर्त्तापन अभिमान ऐसा भयानक जाल है, कि इस से छूटने की बजाये इस अंधकार को बढ़ाकर के बड़े से बड़े परिश्रम करते हुए बड़े चतुर बुद्धि आखिर इस संसार से परम दुख को प्राप्त करके ही जाते हैं।

बचन (३६) ऐसे आदि और अंत को प्राप्त होने वाले शरीर या संसार को पहचान करके केवल अपने आप को सत परायण बनाना और सत नाम निध्यासन में दृढ़ करना ही असली कल्याण के देने वाला यत्न है।

बचन (४०) बड़े से बड़ा यत्न करके इस कर्त्तापन अभिमान को त्याग करके केवल सत स्वरूप का दृढ़ निध्यासी होना और तमाम कर्म फल की आसक्ति से निर्बन्धन होना ही अधिक शूरवीरता है। जो कि मानसिक दोषों से पवित्रता के देने वाली और अखण्ड शब्द स्वरूप समवाद आनन्द को प्रकाशने वाली है। तमाम सज्जन इस संसार की सही यात्रा को समझ करके अपने अन्तःकरण में केवल सत् तत्त्व निध्यास को दृढ़ करके अपने आपकी सही कल्याण करें—जो तमाम सत पुरुषों का जीवन आदर्श है। तमाम गुरमुखों को सत सत् बोध प्राप्ती की भावना दृढ़ होवे।

[छ] "आत्म चिन्तन"

बचन १. बुद्धि अहंग भाव की मलीनताई को धारण करके असत् नाम, रूप गुण, कर्म, आदि अनात्म पदार्थों का पलक-पलक विषे चिंतन करती रहती है। यह मूढ़ अवस्था ही तमाम संसार का वास्तविक रूप है। ऐसे अनात्म पदार्थों के चिंतन करने से ही नाना प्रकार की भोग वासना में आसक्ति को प्राप्त करके अनुकूल व प्रतिकूल भोगों की प्राप्ति और अप्राप्ति के यत्न में बुद्धि अति चञ्चल होकर खेद युक्त रहती है—यह ही परम दुख रूप संसार है।

बचन २. इस अज्ञानमयी जीवन से निर्बन्ध होने की खातिर केवल एक आत्म स्वरूप का चिंतन ही है। जो कि सरब अन्तर प्रकाश कर रहा है। यानी पाँच तात्विक शरीर मन और बुद्धि आदि अन्तःकरण से तीन काल विलग और शुद्ध स्वरूप चैतन्य प्रकाश आदि अंत रहित जो जीवन शक्ति है—वोह ही सिमरण और ध्यान करने योग है।

बचन ३. अधिक निर्मल विवेक से—अधिक शारीरिक बल से—अधिक सत श्रद्धा से आत्म स्वरूप अविनाशी शब्द का दृढ़ चिंतन और निध्यासन करना ही परम शुद्धि और परम शाँति के देने वाला है।

बचन ४. तमाम शारीरिक जन्तर कर्म सहित-वासना सहित-आदि अन्त सहित द्वन्द स्वरूप है, जो कि नित ही भय रंज का सागर है। इस में बुद्धि आसक्त हो करके नाना प्रकार के कर्म भोग द्वारा अपनी संतुष्टि चाहती है—मगर वास्तव में जब तमाम शरीर ही खेद युक्त है, तो पूर्ण तृप्ति और निर्भयता कैसे प्राप्त हो सकती है। इस में तो

सिर्फ अनुकूल और प्रतिकूल भोग पदार्थों की प्राप्ति में राग द्वेश की भयानक अग्नि प्रचण्ड रहती है, जो नित ही अधीर करती है। ऐसी शारीरिक भोग क्रीड़ा के अंजाम को समझते हुये हर वक्त अपने पवित्र निश्चय को केवल आत्म परायण बनाना ही परम उन्नति और शाँति के देने वाला यत्न है।

बचन ५. आत्म शक्ति नित अकर्म, नित निर्वास-नित प्राप्त,-नित निर्खेद,-नित परिपूर्ण,-नित अखण्ड, और नित कल्याण स्वरूप है। ऐसे परम तत्व ज्ञान स्वरूप के परायण हो करके अपने तमाम दोषों को पवित्र करना ही परम श्रेष्ठ कर्त्तव्य है।

बचन ६. जब तक बुद्धि में कर्त्तापन कर्म और कर्म फल की आसक्ति मौजूद रहती है—तब तक आत्म शक्ति को शरीर का कर्त्ता हर्त्ता जानकर के नित ही तमाम शारीरिक दुख व सुख जो कर्म फल स्वरूप हैं—केवल आत्म स्वरूप परमेश्वर के समर्पण करने और शारीरिक राग द्वेप से असंग होना ही आत्म चिंतन का प्रथम साधन है, यानी शारीरिक कर्म भोग की अनुकूलता और प्रतिकूलता को केवल आत्मा के ही समर्पण करते हुये बुद्धि को सत स्वरूप के चिन्तन में लमह ब लमह नेहचल करना ही परम तप है।

बचन ७. ऐसे सत यत्न से बुद्धि कर्म फल द्वन्द की आसक्ति से निर्बन्धन हो करके केवल आत्म स्वरूप में नेहचल होती है—और आत्मान्द जो कर्म और वासना से बिल्कुल पवित्र है, उसको अनुभव करके तमाम शारीरिक खेद से परम शाँत को प्राप्त होती है, यह हालत ही परम प्रसन्नता की है।

बचन ८. जिस वक्त बुद्धि अनात्म पदार्थों के संयोग वियोग के राग से द्वेष से पवित्र हो जाती है—उस वक्त सत स्वरूप आत्मा में पूर्ण रूप से नेहचल होती है, यानी तमाम इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा से असंग हो करके केवल एक अविनाशी आत्म ज्ञान

में लीन रहती है, और कर्त्ता कर्म और कर्म फल की आसक्ति से निर्बन्धन होकर के सदैव काल एक आत्म स्वरूप में स्थिर होती है, जो कि अकर्म, निर्वास, और निर्खेद पद हैं। इस को प्राप्त करना ही मानुष जन्म का परम उत्तम कर्त्तव्य है।

बचन ९. अति अहंकार की दृढ़ता से जो अति मलीन वासनायें पैदा होती हैं—और अति मलीन कर्म करवाती हैं, उनका त्याग करके केवल आत्म परायण अपने आपको बनाना ही पूर्ण आस्तिकवाद है।

बचन १०. आत्म परायण होकर नित ही शुद्ध वासना द्वारा शुद्ध कर्त्तव्य को धारण करना ही श्रेष्ट आचरण है—यानी एक आत्मा के परायण होकर के तमाम शारीरिक क्रिया को खेद स्वरूप और क्षण भंगुर जानते हुये अधिक लोभ, अधिक मोह, अधिक क्रोध, अधिक काम, और अधिक अहंकार के वेग को नित पवित्र करने का यत्न करना ही असली मानुषपन है—और सतवादी जीवन का लक्ष्य है। ऐसा पवित्र निश्चय और पवित्र निध्यासन ही आत्म चिंतन में नेहचल करता है।

बचन ११. जब अति शुद्ध वासना में बुद्धि नेहचल होती है। तब शारीरिक स्वार्थ से निबन्धन होकर के परमार्थ में दृढ़ होती है—ऐसी निर्मल परमार्थ की धारा में अपने आपको नेहचल करके तमाम शारीरिक कर्मों का फल जो दुख व सुख का स्वरूप है—एक आत्म शक्ति के ही समर्पण करती है—यानी कर्मों का होना और न होना एक आत्मा के ही आधार जान करके अन्तर से शुद्ध वासना का भी त्याग कर देती है—और सिर्फ क्षणकारी वासना में विचरती है। ऐसी स्थिति को ही **निष्काम कर्म** कहा गया है।

बचन १२. ऐसे निष्काम कर्म की दृढ़ता से बुद्धि तमाम शारीरिक दोषों से परम पवित्र हो करके एक आत्म स्वरूप अविनाशी नाद में नेहचल होती है, जो कि अक्षय और निर्वास पद है—यह ही

अवस्था आत्म चिंतन का पूर्ण स्वरूप है—यानी अनात्म पदार्थों के चिंतन से पूर्ण रूप से पवित्र होकर के केवल आत्म चितन में आत्म स्वरूप ही हो जाती है—यह ही निर्भय पद है।

बचन १३. मानुष जीवन का उन्नत स्वरूप यह ही है, कि नित ही मलीन वासनाओं और मलीन कर्मों का त्याग करना और सत आचारी होना—मानुष में अधिक शिरोमणि और देवता होना, ऐसे ही हो सकता है कि तमाम स्वार्थ वासनाओं को त्याग करके केवल सत स्वरूप के परायण होकर के तमाम जीवों की कल्याण चाहनी और सत यत्न करना निष्काम स्वरूप में। ऐसे सत यत्न से ही आत्म चिंतन में पूर्ण नेहचलता प्राप्त होती है, जो परम शाँत स्वरूप है।

बचन १४. तमाम जूनियों में मानुष जन्म की उच्चता इसी में है, कि तमाम मानसिक विकारों से अपने आपको पवित्र करे और सत ग्रही भावना में अति दृढ़ता धारण करे—रोजाना जिन्दगी का परम कर्त्तव्य यह ही है, कि आत्म चिंतन द्वारा अपने आपको भ्रम अन्धकार से जागृत करे, और परम प्रसन्नता निर्वास पद प्राप्ति का यत्न करे।

बचन १५. परम उन्नति, परम खोज,-परम सूझ,-परम बोध, परम मुक्त, परम तृप्ति,-परम ज्ञान,-परम विज्ञान,-परम निर्भयता, परम शूरवीरता, परम पवित्रता, परम जागृत इस मानुष जन्म में केवल एक आत्म चिंतन से ही है। यानी अन्तर मुख हो करके सत युक्ति द्वारा तमाम मानसिक विकारों से विजय हासिल करके एक आत्म साक्षातकार पद को प्राप्त होना है—और केवल यह ही महा कारज इस जीवन में है। दुर्लभ उसका जीवन है, जिसको ऐसी साधना और स्थिति में सफलता प्राप्त हुई है। तमाम प्रेमी इस विचार को गौर करके अनुभव करने का यत्न करें, और अपने आप को नित ही निर्मल आत्म चिंतन अभ्यास में नेहचल करें। ऐसी साधना ही से इस भ्रष्टाचार के जमाने में शाँति

प्राप्ति हो सकती है। अभ्यास से लापरवाई करनी अपनी मूल बरबादी करनी है। इस वास्ते अधिक से अधिक कोशिश करके अपने आपको सत मार्ग में जागृत करें, और गुरू कृपा के महांरस को प्राप्त करके परम कल्याण पद को प्राप्त होवें। ऐसा ही सत यत्न तमाम गुरमुखों के वास्ते अधिक लाज़मी है। ऐसा सत पुरुषार्थ सब प्रेमियों को प्राप्त होवे। ईश्वर सुमति देवे।

(ज) "सत स्वरूप चिंतवन की भावनायें"

(i) सम्बन्ध कर्म योग या भक्ति योग—

तूं कर्त्ता, तूं हर्त्ता, सर्व तेरी आज्ञा, तूं नित रक्षक, तूं नित सहायक, तूं दीन दयाल, तूं नित बख्शनहार, जो तेरी आज्ञा, तूं नित पतित पावन, तूं नित सब आधार, तूं नित संग वासी, तूं ही अविनाशी, तूं ही सर्व आद, तूं ही नित अनाद, तूं ही परम पिता, तूं ही जगदीश्वर, तूं ही गोबिन्द, तूं ही गोपाल, तूं ही मंगलदाता, तूं ही अनन्त, तूं ही बे अन्त, तूं ही अपार, तूं ही दयाल, तूं कर्त्ता तूं कर्त्ता, तूं कर्त्ता, सर्व तेरी आज्ञा, जो तेरी कृपा, सर्व तूं ही, सर्व तूं ही, सर्व तूं ही, आद अन्त मध्य तूं ही, तूं ही सत, तूं ही अगम, तूं ही अवगत, तूं ही स्वामी, तूं ही अन्तर्यामी, तूं ही कल्याण, तूं ही जीवन, तूं ही विधाता, तूं ही अन्तर, तूं ही बाहिर, तूं ही दीनानाथ, तूं ही ज्ञान, तूं ही विज्ञान, तूं ही अगोचर, तूं ही नारायण, आदि अनन्त प्रकार की भावनाओं से मनोवृत्ति को सत नाम में दृढ़ करना ही समर्पण बुद्धि, कर्म योग, भक्ति योग, अनासक्ति योग, सगुण वृत्ति योग, करके संतों ने ब्यान किया है। ऐसे दृढ़ निश्चय से तमाम अहंकार की मलिन और वासना का नाश हो जाता है। बुद्धि निरअहंम अवस्था को प्राप्त हो करके तमाम मानसिक दोषों से अलेप्ट हो जाती है, और अखण्ड अविनाशी शब्द में अन्तर विषे नेहचल होती है। यह ही अवस्था परम स्थिति और परम सिद्धि है। अज्ञान अवस्था में यह भावना सुगम और सहज मानसिक दोषों को नाश करने वाली है, और आत्म अनुभवता को प्रकाशने वाली है।

(iii) सम्बन्ध ज्ञान योग—

मैं आत्मा निर्देह हूँ, मैं आत्मा इन्द्रियातीत हूँ, मैं आत्मा नित अकर्ता हूँ, मैं आत्मा शुद्ध चैतन्य हूँ, मैं आत्मा नित अखण्ड हूँ, मैं आत्मा नित अछेद हूँ, मैं आत्मा नित अभेद हूँ, मैं आत्मा सरब असंग हूँ, मैं आत्मा नित अद्वैत हूँ, मैं आत्मा नित अजन्मा हूँ, मैं आत्मा नित निर्वास हूँ, मैं आत्मा सर्व स्वरूप हूँ, मैं आत्मा नित निर्वाण हूँ, मैं आत्मा सर्व ब्रह्म हूँ, मैं आत्मा नित शून्य हूँ, मैं आत्मा गुणातीत हूँ, मैं आत्मा नित नेहकर्म हूँ, मैं आत्मा निर्द्वन्द्व हूँ, मैं आत्मा सम स्वरूप हूँ, मैं आत्मा नित अकाल हूँ, मैं आत्मा सच्चिदानन्द हूँ, मैं आत्मा वीतराग हूँ, मैं आत्मा नित निराकार हूँ, मैं आत्मा परम आनन्द हूँ, मैं आत्मा सर्व आद हूँ, मैं आत्मा नित अलोक हूँ, मैं आत्मा नित अगेह हूँ, मैं आत्मा सर्वाधार हूँ, मैं आत्मा निज स्वरूप हूँ, मैं आत्मा सर्व जीवन हूँ, मैं आत्मा सर्व साक्षी हूँ, ऐसी अनन्त प्रकार की भावनाओं से सत स्वरूप में अन्तर विषे लीन होना ही ज्ञान योग, सांख्य योग, निर्गुण वृत्ति योग का निश्चय कहा गया है—और ऐसे ही दृढ़ निध्यासन से अन्तर बाहिर जब बुद्धि केवल अखण्ड नाम परायण होती है, तब देह मद से निर्मल होकर के परम एकाग्रता को अनुभव करती है—और अन्तर में विज्ञान स्वरूप अविनाशी शब्द में स्थित को प्राप्त होती है। यह ही अनुभवी ज्ञान समाधि की अवस्था है—तब बुद्धि तमाम आकार मंडल संसार के खेद से असंग और अलेप हो जाती है। यह ही परम सिद्धि का धाम है—मगर चिरकाल तक कर्म योग के निध्यासन से आत्म अनुभव अवस्था जब प्राप्त होती है—तब ऐसा ज्ञान विज्ञान खुद बखुद ही अन्तर बोध हो जाता है।

(iii) खास चेतावनीः—

कर्म योग तथा ज्ञान योग की भावनाएं—हर एक अनुभवी पुरुष के अन्दर विशाल रूप में मौजूद रहती हैं, और इन ही भावनाओं के बल से शारीरिक दोषों से असंग (हो करके) नित स्वरूप अविनाशी तत्त्व आत्मा में बुद्धि निश्चल होती है—इन दो स्थितियों को या भावनाओं को भिन्न भिन्न करके जानना नासमझ और अन्ध विश्वासी कथनी ज्ञानियों का मत है। वास्तव में यह दोनों भावनायें हर एक सिद्ध पुरुष के अन्तर मौजूद रहती हैं—और प्रकृत दोषों के नाश करने में दोनों भावनायें परम सहायक होती हैं—यह ही सिद्धसिद्धों का सिद्धांत है। अपनी अपनी बुद्धि के मुताबिक हर दो निश्चय से दुर्मत भ्रम का नाश हो जाता है—और यह बुद्धि अहंकार की मलिन से शुद्ध होकर के अन्तर में अखण्ड अविनाशी शब्द में लीन हो जाती है—जो अगोचर और निर्भय स्थिति है। समतावाद में यह दोनों भावनायें कल्याणकारी और एक ही परिस्थिति की प्राप्ति की परम सहायक मानी गई हैं—जो निर्वाच और अकथ पद है—सब साधकों का ऐसा निश्चय होना चाहिये।

(भ) "आत्म सिद्धि विचार"

(१) प्रथम संसार से वैराग   (२) आत्म बिरह

(३) आत्म अभ्यास   (४) आत्म अनुभवता

(५) आत्म स्थिति   (६) आत्म लीनता

पहली पाँच अवस्था में अपने आपको गुप्त रखना चाहिये।

(१) वैराग की नाशः—इन्द्रियों के भोगों की चेष्टा का उत्पन्न होना।

(२) आत्म बिरह की नाशः—लोक यश कीर्ति चाहना।

(३) आत्म अभ्यास में असिद्धिः—आहार, व्यवहार, विचार का अशुद्ध होना और संयम रहित होना। पूर्ण श्रद्धा और दृढ़ निध्यासन के बग़ैर अभ्यास में कामयाबी होनी अति कठिन है।

(४) आत्म अनुभवता की नाशः—सिमरण, तप, त्याग का अभिमानी होना और विद्या के मद में आकर लोगों को प्रभावित करके आडम्बर रचना।

(५) आत्म स्थिति से गिरावटः—लोक यश के मद में आकर वर, सराप (शाप) देना और रिद्धि-सिद्धि को प्रगट करना।

(६) आत्म लीनताई अवस्था मुकम्मिल हैः—यानी गुणातीत स्थिति में बुद्धि नेहःचल होकर के ब्रह्म स्वरूप में लीन हो जाती है।

''समाप्तम्''

समता साहित्य

(हिन्दी)

		रु०	आ०	पा०
१.	ग्रंथ समता प्रकाश (वाणी) (जिलद वाला)	१०	०	०
२.	ग्रंथ समता प्रकाश (वाणी) (बिना जिल्द)	६	०	०
३.	ग्रंथ समता प्रकाश (पाँच भागों में) (प्रति भाग)	२	०	०
४.	समता विलास (वचन)	२	४	०
५.	समता विज्ञान योग	१	८	०
६.	योग मार्ग बोध	०	२	०
७.	समता आनन्द सागर	०	३	०

(उर्दू)

१.	ग्रंथ समता प्रकाश (स्फेद कागज़)	५	०	०
२.	,, ,, ,, (न्यूज़प्रिन्ट)	२	८	०
३.	समता विलास (पहला भाग)	२	४	०
४.	,, ,, ,, (दूसरा भाग)	१	०	०
५.	समता दर्पण का शाँति अङ्क (१९५३)	०	८	०
६.	,, ,, ,, पवित्र जीवन अङ्क (१९५४)	०	८	०
७.	,, ,, ,, श्रद्धाँजलि (१९५४) (महाराज जी के चित्र सहित)	०	७	०
८.	,, ,, ,, सत उपदेशाँक (१९५६)	१	४	०
९.	,, ,, ,, (१९५७) (दूसरा भाग)	०	१२	०

नोटः—ये पुस्तकें डाक द्वारा मंगवाने पर डाक खर्च अलग लगेगा

मिलने का पताः—

(i) प्रबन्धक
समता योग आश्रम
जगाधरी (ज़ि० अम्बाला),

(ii) समता दर्पण,
एफ-२६९, न्यु राजेन्द्र नगर,
न्यु दिल्ली।